कथा , गीत , गाथा , कहावत , मुहावरा ,
धर्म , देवी-देवता , त्यौहार, नाट्य , चित्र ,
मूर्ति आदि लोकात्मक कलाओं का मासिक पत्र

लोक संस्कृति

वर्ष ८ अंक ३

संपादक

कोमल कोठारी , विजयदान देथा

अनुक्रम

लोक गीतों का प्रसार



राजस्थान की लोकगीतात्मक परम्परा को हम दो मुख्य रूपों में प्रयुक्त होते हुए देख रहे हैं। एक रूप में तो उनका संग्रह एवं प्रकाशन हो रहा है और साहित्यिक भावावेशपूर्ण आलोचन-विवेचन किया जा रहा है। दूसरे रूप में उनका प्रयोग संगीतात्मक दृष्टि से किया जा रहा है। लोक गीतों का संगीतात्मक प्रयोग प्रमुखतया भारतीय आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्र कर रहे हैं। इन दो प्रयोगों के अतिरिक्त लोकगीत का सामाजिक संचरण में जो प्रयोग परम्परा से चला आ रहा है, वह अपनी गति से चल रहा है किन्तु धीरे धीरे सामाजिक परिवेश के परिवर्तन के साथ धीमी गति से उनके विलुप्त होने का क्रम भी प्रारंभ हो गया है।

अर्थात् एक ओर लोकगीतों की विलुप्ति का क्रम और दूसरी ओर उनके संरक्षणात्मक एवं आनन्दात्मक रूप के प्रयोग में अभिवृद्धि हो रही है। लोक गीतों की संगीतात्मकता को आज राज्य और सामाजिक संस्थाओं के स्तर पर पुनः प्रतिष्ठित करने के प्रयत्न चल रहे हैं। लोक गीतों के सुन्दर एवं प्रभविष्णु संगीत की धुनों से आनंद ग्रहण करने की प्रवृत्ति भी बढ़ रही है। यही कारण है कि एक ओर आकाशवाणी के केन्द्र लोकगीतों के गायकों को निमंत्रित कर रहे हैं और दूसरी ओर संगीत की संरक्षणात्मक, सरकारी और निजी क्षेत्र की संस्थाएं लोकगीतों के गेय पक्ष को जीवित रखने के प्रयत्न कर रही हैं। लोकगीतों को सीखने एवं उन पर अनुसंधान करने के लिए विभिन्न छात्रवृत्तियां प्रदान की जाने लगी हैं और शास्त्रीय संगीत के सम्मेलनों की भांति लोकगीतों के सम्मेलन भी आमंत्रित किये जाने लगे हैं।

लोकगीतों के विवेचक इस तथ्य से भली भांति परिचित हैं कि लोकगीतों का उद्गम सामूहिक जीवन-प्रणाली, सामाजिक अनुष्ठान और जन-समाज के विश्वासगत कार्यकलापों में निहित है। ऐसे लोकगीतों को अपनी पृष्ठभूमि से विच्छिन्न करके, केवल संगीतात्मक आनंद ग्रहण करने या उसके सौन्दर्य में अनुरंजित होने या उसके अध्ययन की प्रेरणा से कार्य करने के कारण एक नवीन डायमेन्शन पैदा हो रहा है। अर्थात् जिस प्रेरणा से लोकगीतों का सामाजिक प्रसार-प्रचार रहा, अब उसका प्रेरणा स्रोत बदल रहा है। यह क्रम बहुत धीरे धीरे प्रारंभ हुआ है लेकिन देखते ही देखते इसका प्रयोगात्मक रूप काफी महत्वपूर्ण बनता जा रहा है। यह एक नव शिक्षित समाज की अपनी कलापूर्ण अभिरुचि को संतुष्ट करने का साधन भी बनता जा रहा है।

सामाजिक नवीनता के आग्रही अथवा आधुनिकीकारण के पक्षधर उत्साही कलाप्रेमी नवयुवक , अपने सामान्य व्यवहार में भी तथा-कथित परंपराओं से आत्ममुक्त होकर जीवन के परंपराहीन मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नशील दिखाई देते हैं। किंतु उनके प्रयत्नों को गहराई से देखने पर सहज ही ज्ञात होता है कि वे किसी न किसी समाज की परंपरा के ही छोर को पकड़ कर बढ़ना चाहते हैं , वह छोर चाहे आदिम संस्कृति के तत्वों में हो अथवा मनुष्य के अत्यंत विकसित समाज व्यवस्था के मुक्त जीवन में सन्निहित हो । भूतकाल में परिणत होने वाले प्रत्येक गत-क्षण के आधार पर ही परंपरा में वर्तमान का नव-क्षण जन्म लेता है और गत-क्षण के प्रभाव व प्रक्रिया से वह किसी तरह विच्छिन्न नहीं हो सकता ।

किन्तु , नये प्रयासों को सामाजिक उपयोगिता का अथवा सुन्दरता का आधार भी दिया जा सकता है । लोकगीतों के संगीतात्मक प्रयोग में अब एक ऐसा ही प्रश्न मुख्य बन गया है। लोकगीतों को उन संगीतात्मक प्रवृत्तियों से पृथक रखना पड़ेगा जिन्हें हम एक ओर शास्त्रीय अथवा अर्धशास्त्रीय संगीत कहते हैं और दूसरी ओर लोक प्रिय संगीत के नाम से जानते हैं । लोक प्रिय संगीत का प्रमुख उद्बोधक है—फिल्म संगीत । लोकगीत को जब लोकगीत कह कर गाया जाय तो उसे निपट लोकगीत ही होना चाहिये ।

आकाशवाणी के केन्द्रों से प्रसारित होने वाले लोकगीतों की संगत में उपयोग किये जाने वाले वाद्य शास्त्रीय संगीत शैली के वाद्य हैं यथा तानपुरा , सारंगी एवं तबला अथवा इसी प्रकार के अन्य वाद्य । कभी कभी संपूर्ण वृंद-वादन का समर्थन भी दिया जाता है । इस प्रयास के कारण लोकगीत अपनी आत्ममुक्तता और सौन्दर्य से च्युत हो जाते हैं । यदि इस सांगीतिक प्रयोग के अविवेक को देखना चाहें तो वह भी स्पष्ट हो सकता है । शास्त्रीय संगीत के द्वारा मान्य स्वर-सप्तक का संभवतया लोकसंगीतात्मक रूप से स्थापित स्वर सप्तक से पूरी तरह मेल नहीं है । किन्तु शास्त्रीय संगीत के अभ्यस्त वादक लोक गायक को अपने स्वर-सप्तक के साथ मिला लेने में सफल हो जाते हैं । यह तथ्य लोकसंगीत के ताल अथवा लय पक्ष पर भी लागू होता है । लोकसंगीत हमारे भारतीय शास्त्रीय संगीत की तालानुवृत्ति तक विकसित नहीं हुआ है । उसमें केवल लयानुवृत्ति है । सम , खाली एवं भरी की कल्पना लोकसंगीत में नहीं है । किंतु जब गायन के साथ इन ताल के तत्वों का निदर्शन होता है तो निश्चय ही धुनात्मक रूप में अचेतन रूप से परिवर्तन आ जाता है । उसकी आत्ममुक्तता को खो देने का प्रमुख कारण भी यहीं प्राप्त होता है ।

आवश्यकता इस बात की लगती है कि लोकगीतों की संगत में मुख्यतया लोकवाद्यों का ही प्रयोग किया जाय और उन्हीं की सीमा में लोकगीतों की धुनों में आवर्तन-परिवर्तन आने दिया जाय। उस पर अन्य शैली के संगीत का आवरण नहीं चढ़ने दिया जाय । इस स्वस्थ परम्परा के द्वारा हम लोकवाद्यों को भी जीवित रखने में समर्थ हो सकेंगे । — संपादकीय

ग्राम्य साहित्य

मू. ले. रवीन्द्रनाथ ठाकुर | अनु. अनुराधा बनर्जी

सावन मास के अंतिम दिनों में एक बार नाव पर पावना - राजशाही में भ्रमण कर रहा था। मैदान घाट सब एक होकर पानी में डूबे हुए थे। छोटे छोटे ग्राम जलचर जीवों की तरह बीच बीच में दिखाई दे रहे थे। किनारा कहीं दिखाई नहीं देता था, केवल पानी ही पानी। इसी के बीच सूर्यास्त होने से ठीक पहिले दिखा कि दस बारह आदमी मिलकर एक छोटी नाव में आ रहे हैं। वे सब मिलकर उच्च कण्ठ से एक गीत गा रहे थे और डांड के स्थान पर एक एक बांस लेकर गाने की ताल पर झपाझप खेते जा रहे थे। गीत के शब्द पकड़ने के लिए मैंने कान लगाया, अन्त में बार बार उन्हें दुहराते सुन जितना अंश उद्धार कर पाया वह है —

युवती, क्यान् बा कर मन भारी
पावना थ्याहे आन्ये देब ट्याहा-दामेर मोटरि

युवती, तुम मन क्यों उदास करती हो। मैं तुम्हारे लिए पावना से रुपये दाम वाली मोटरी [कोई अलंकार] ला दूंगा !

भरी वर्षा के प्लावन के बीच जब सूर्य निशब्द अस्त हुआ जा रहा हो, यह गान ठीक उस समय के उपयुक्त है या नहीं इस पर पाठकों को संदेह होना स्वाभाविक है। किन्तु गीत की इन दो पंक्तियों में उस जल राशि के बीच से सारे गांव ही जैसे बोल उठे। मैंने देखा यहां इस चौपाल के पास, इस बेर के पेड़ की छाया में, यहां भी युवती अपना मन भारी करती है और उसके रोषपूर्ण कुटिल कटाक्षपात से ग्राम्य कवि की कविता छन्द में, सुर में, ताल में, मैदान में, घाट में, जल और थल में — सभी जगहों पर जगने लगती है।

जगत में जितने भी प्रकार की विपत्तियां हैं, उनमें युवती चित्त का विमुख होना सर्व-प्रधान है — उस दुराग्रह की शांति के लिए कविगण छन्दों की सृष्टि करते हैं और प्रिय-सुख वंचित हतभागे प्राण देने के लिए प्रस्तुत रहते हैं। किन्तु जब उस गाने में सुना कि 'मैं पावना से तेरे लिए एक रुपये की मोटरी ला दूंगा' तो मेरे हृदय को कुछ क्षण के लिए बड़ी शांति मिली। मोटरी ठीक कौनसी वस्तु है, यह मैं नहीं जानता, किन्तु कवि ने उसका मूल्य एकदम स्पष्ट कर दिया है — एक रुपया। दुनिया के एक कोने में पावना जिले में एक ऐसा स्थान है जहां प्रतिकूल-प्रणयिनी के लिए असाध्य-साधन करने की जरूरत नहीं पड़ती; पावना से अपेक्षाकृत दुर्गम स्थान में जाने की और 'मोटरी' की अपेक्षा दुर्लभ पदार्थ संग्रह करने की आवश्यकता नहीं होती, यह सोच कर भवयत्रणा अपेक्षाकृत कम मालूम होती है। कालिदास, भवभूति इत्यादि प्रथम श्रेणी के कवि ऐसी जगह पर अवश्य ही मानसरोवर का स्वर्ण कमल, आकाश के तारे एवं नन्दन कानन के पारिजात का वर्णन अम्लान मुख से कर देते। और उज्जयिनी की प्रथम श्रेणी की युवतियां शिखरिणी व मंदाक्रांता छन्द में ऐसे दुसाध्य कार्यों के प्रस्ताव-मात्र सुन कर प्रसन्न हुए बिना नहीं रहतीं।

कम से कम काव्य पढ़ कर कुछ ऐसा ही भ्रम होता है। किन्तु अविश्वासी गद्य जीवी लोग कविता में इतना विश्वास नहीं करते। केवल मात्र मंत्र पाठ द्वारा भेड़ों के एक झुण्ड को मारा जा सकता है या नहीं, इस प्रश्न के उत्तर में वाल्तेयर ने कहा है कि मारा तो जा सकता है, किन्तु उसके साथ यथेष्ट मात्रा में आर्सेनिक विष का होना भी आवश्यक हैं। उदास युवती के लिए आकाश के तारे, नन्दन वन का पारिजात व प्राण समर्पण का प्रस्ताव संतोषजनक तो हो सकता है, किन्तु अधिकांश स्थलों पर उनके साथ बाजूबन्द अथवा चरण चक्र की भी आवश्यकता पड़ती है। इसका उल्लेख कवि नहीं करते, वे प्रमाणित करना चाहते हैं कि केवल मंत्र बल से, केवल छन्द व भावावेग से ही कार्य सम्पन्न हो सकता हैं — अलंकार का प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, किन्तु केवल काव्यालंकार का। इधर हमारे पावना की जनपद-वासिनी काव्य के आडम्बर को बाहुल्य समझती है और उनके चिरानुरागी ग्रामीण कवि मंत्रतंत्र की बात छोड़ सीधी रुपये की कीमत वाली मोटरी की बात छेड़ देते हैं; समय नष्ट नहीं करते।

परन्तु फिर भी छन्द व सुर तो जरूर ही चाहिये। जगतप्रान्त में इस पावना जिले के तालाब के किनारे भी उसका प्रयोजन होता है। इससे उस 'मोटरी' की कीमत एक रुपये से अधिक हो जाती है। उस 'मोटरी' को वे छन्द, सुर, रस और भाव की स्पर्श-मणि छुआ देते हैं। गीत की उन दोनों पंक्तियों को बिना सुर के गद्य में कहने से उसमें जो दीनता आ जाती है, छन्द व सुर-संयोजना से वह दीनता क्षण भर में ही अदृश्य हो जाती है; प्रति-

दिन के सांसारिक धूलिस्पर्श से वे दो चार तुच्छ बातें भाव के आवरण में आवृत्त हो जाती हैं।

मनुष्य को इसकी बड़ी आवश्यकता है। जिन सांसारिक परिस्थितियों द्वारा वह सदा घनिष्ठ रूप से घिरा हुआ है, उसे वह छंद लय में ढाल कर उसके ऊपर सौंदर्य का रश्मिपात करके देखना चाहता है।

इसीलिए लोकालय में जिस प्रकार खेती-बाड़ी हो रही है, नाव चल रहे हैं — वहां लुहार के घर में हल की नोक, बढ़ई के घर में ढेंकी और सुनार के घर में रुपये भर की 'मोटरी' बन रही है, उसी प्रकार अन्दर ही अन्दर साहित्य का गठन कार्य भी चल रहा है; उसको कोई विश्राम नही। प्रतिदिन जो विक्षिप्त विच्छिन्न खंड खंड रूप से सम्पन्न हो रहा है, साहित्य उसे एक सूत्र में पिरोकर नित्यकाल के लिए प्रस्तुत करने की चेष्टा कर रहा है। गांव में प्रतिदिन के विचित्र कार्य भी हो रहे हैं और उसी के मध्य में एक चिरकालिक रागिनी बज उठने की चेष्टा में लगी हुई है।

पद्मा नदी में नाव खेकर जाते हुए झाड़ियों के बीच चकोर-चकोरी का कलरव सुनाई देता है तो उसे कोई भी भ्रमपूर्वक कोकिल की कुहुतान नही समझ बैठता। यह निश्चित है कि उसमें पंचम या मध्यम, तीव्र या कोमल कोई भी सुर ठीक प्रकार नहीं लगता, किन्तु तब भी इसे पद्मा तीर का गान कहना जरा भी असंगत नहीं होगा। क्योंकि इसमें सुर बेसुर जो भी लगता हो, उसके साथ नदी की निर्मल हवा में, जाड़े की धूप में, असंख्य प्राणियों के जीवन-सुख-संभोग की आनन्द ध्वनि अवश्य अनुनादित है।

ग्राम्यसाहित्य में कल्पना की उड़ान हो न हो आनन्द का वह सुर अवश्य है। ग्रामवासी जिस प्रकार का जीवन प्रतिदिन बिताया करते हैं, उस जीवन को जो कवि छंद व ताल में बांध देता है; वह कवि सारे ग्राम के हृदय को भाषा प्रदान करता है। पद्मा तीर के चकोर गीत जैसा ही वह विशुद्ध सुर-ताल की अपेक्षा नहीं रखता। मेघदूत के कवि अलकापुरी तक पहुंच गये हैं, वे उज्जयिनी राज सभा के कवि जो ठहरे। हमारे आख्यात गांव के कवि बड़ी मुसीबत में पड़कर भी पायना शहर से आगे नहीं जा सके; यदि वे ऐसा कर पाते तो गांव के लोग उनका साथ छोड़ देते। कल्पना की संकीर्णता के द्वारा ही वह अपने प्रतिवेशियों को एक घनिष्ठ सूत्र में बांध पाये हैं और यही कारण है कि उसके गीत में केवल एक कल्पना प्रिय कवि का ही नहीं; बल्कि समस्त ग्राम का हृदय अभिव्यंजित हो उठा है।

इसीलिए बंगाल के गांवों में जो लोकगीत व कथा साहित्य ग्रामवासियों के मन को सहज ही भुला देता है उसे काव्य रूप में स्वीकार करने पर उसके साथ साथ सारे गांव, समस्त लोकालय को भी ग्रहण करना पड़ेगा, ये सब मिलकर ही इन टूटे-फूटे छन्द व अपूर्ण मेल को

अर्थ व प्राण प्रदान करते हैं। ग्रामसाहित्य बंगाल के गांव की छवि व स्मृति की अपेक्षा करता है; इसीलिए बंगाली के पास इसका एक विशेष माधुर्य है। वैष्णवी जब 'जय राधे' कह कर भिक्षा लेने अंतःपुर के आंगन में आ खड़ी होती है तब कौतुहली गृहस्वामिनी व अवगुंठित बहुएं वहां गीत सुनने के लिए उत्सुक हो उठती हैं। प्रवीण पितामही, कहानी, गीत व 'छड़ा' से आकण्ठ परिपूर्ण हैं — कितनी बार शुक्लपक्ष की चांदनी रातों में और कृष्ण पक्ष के उज्वल सितारों की रोशनी में जिन्हें तंग करके बालक-बालिका, युवक-युवती एकाग्र मन से कितने ही वर्षों से सुनते आ रहे हैं, बंगाली पाठकों के पास उनका रस अक्षय एवं अमिट है।

पेड़ की जड़ जैसे मिट्टी के साथ सम्बन्धित है और उसका ऊपरी भाग आकाश की ओर सिर उठाये हुए है उसी प्रकार सर्वदा ही साहित्य का निम्न अंश स्वदेश की मिट्टी से ही बहुत कुछ गुंफित होकर ढका रहता है; यह विशेष रूप से, अपने संकीर्ण रूप में स्थानीय व देशी है। वही केवल देश के जनसाधारण के समझने व उपभोग करने के लिए है। वहां बाहर के लोग प्रवेशाधिकार नहीं पा सकते। साहित्य का जो अंश सार्वभौमिक है वह इस प्रदेश के सामान्य स्तर पर खड़ा है। इस प्रकार से लोक साहित्य व उच्च साहित्य में परस्पर एक अन्यान्योश्रित सम्बन्ध है। जो अंश आकाश में है उसके फल-फूलों, डाल-पत्तों के साथ धरती के नीचे आच्छादित जड़ की कोई तुलना नहीं हो सकती, फिर भी तत्ववेत्ता की दृष्टि से उनका सादृश्य व सम्बन्ध ओझल भी नहीं हो सकता।

निम्न के साथ ऊपर का यह संयोग, प्राचीन वंग साहित्य की आलोचना करने पर स्पष्ट दिखाई देता है। अन्नदामंगल व कविकंकण के कवि यद्यपि राजसभा व धनी सभा के कवि हैं, और दोनों पंडित व संस्कृत साहित्य के विशारद हैं, फिर भी वे प्रचलित साहित्य को छोड़कर अधिक दूर नहीं जा पाये हैं। अन्नदामंगल व कुमारसंभव के आख्यानों में भेद अधिक नहीं, किन्तु अन्नदामंगल कुमारसंभव के सांचे में नहीं ढाला गया। उसके देवी देवता बंगाल के ग्रामीण हर-गौरी हैं। कविकंकण में चंडी, धर्म मंगल, मनसा का विसर्जन, सत्यपीर की कथा ये सभी ग्राम-कहानी को अवलम्बित कर रचे गये हैं। इन ग्राम्य 'छड़ों' व लोकगीतों का परिचय पाने पर ही भारतचंद्र-मुकुंदराम रचित काव्यों का यथार्थ परिचय मिल सकता है। राजसभा के काव्यों में छन्द, मेल व काव्य कला सुसम्पूर्ण है, इसमें कोई सन्देह नहीं, किन्तु लोकगीतों से उनका कोई मर्मगत प्रभेद भी नहीं है।

मैंने जिन लोकगीतों का संग्रह किया है वे अपेक्षाकृत पुरातन हैं या नूतन, यह मैं निसंदेह नहीं बता सकता। परंतु एक सौ अथवा दो सौ साल इधर उधर होने से इनकी

आयु में अधिक अंतर नहीं आयेगा। आज से पचास वर्ष पूर्व ग्राम कवि ने जिस लोकगीत की रचना की है उसे मुकुन्दराम के समय का भी कहा जा सकता है, क्योंकि गांव का हृदय जहां ढका रहता है, कालस्रोत की लहरें वहां अधिक आघात नहीं पहुंचा सकतीं। ग्राम की जीवन यात्रा और उस जीवन यात्रा का संगी साहित्य दोनों बिना परिवर्तन के एक ही धारा में बहुत काल तक बहते चले जाने में समर्थ हैं।

केवल हाल ही में कुछ दिनों से 'आधुनिक काल' सुदूर बसे नये दामाद की तरह नये लिबास व नये हाव भाव ग्रहण करके ग्रामीण समाज के अंत:पुर में घुस आया है। गांवों में भी परिवर्तन हो रहा है। इसलिए गांवों के लोकगीतों को संग्रहीत करने का जिन्होंने भार लिया है वे मुझे लिखते हैं —

'वृद्धाओं के सिवाय आजकल की लड़कियों से इस प्रकार की कविता सुनने की कोई आशा नहीं है। वे यह सब नहीं जानतीं और न जानने की इच्छा ही रखती हैं। वृद्धा स्त्रियों की संख्या कम है। उनमें भी कई इन गीतों को नहीं जानतीं हैं। दो एक वृद्धाओं के सिवाय कोई कुछ बता नहीं पाती। अतएव पांच लोकगीतों को संग्रहीत करने के लिए पांच गांवों की पांच वृद्धाओं का आश्रय लेना पड़ता है। इस देश की पुरातन वैष्णवियों में दो एक कभी कभी इस प्रकार की कविता गाकर भिक्षा मांगती हैं। वे सारी कविताएं राधा-कृष्ण के प्रेम से संबधित हैं। ऐसी वैष्णवी सदा-सर्वदा नहीं मिलती और मिलने पर भी उनकी कविताएं एक ही प्रकार की हुआ करती हैं। ऐसे स्थान पर एकाधिक लोकगीत को संग्रह करने के लिए बहुत सी वैष्णवियों की सहायता अपेक्षित है। किन्तु शस्य श्यामला मातृभूमि की कृपा से प्रति सप्ताह कम से कम एक दो सुदूर-वासिनी नई वैष्णवी की 'जय राधे' सुनाई देना कुछ आश्चर्य का विषय नहीं है।'

पहिले ये ग्राम्य लोकगीत गांवों की उच्च-वंशीया स्त्रियों की साहित्य रस-तृष्णा मिटाने के लिए भिखारिनियों व दादियों द्वारा घर घर पहुंच जाया करता था। अब वे सभी पढ़ने-लिखने लगी हैं। बंगाल के छापेखाने का साहित्य उनके हाथों में आ गया है। अब वे ग्राम्य लोकगीत समाज के अत्यंत निम्न स्तर में उतर चुके हैं।

इन लोकगीतों के विषयों को दो मोटे भागों में बांटा जा सकता है। एक हर-गौरी विषयक, दूसरे राधा-कृष्ण विषयक। हर-गौरी की कथाओं में बंगाली के घर की बात और कृष्ण-राधा की कथाओं में उसके भाव व्यक्त हुए हैं। एक ओर सामाजिक दाम्पत्य बन्धन है, दूसरी ओर सामाजिक बन्धन से अतीत प्रेम है।

दाम्पत्य संबंध में एक विघ्न भी है—दरिद्रता। उस दारिद्र्य पर्वत को वेष्ठित कर हर-

गौरी की कहानी नाना प्रकार से तरंगित हो उठी है। कभी सास ससुर का स्नेह उस दारिद्र्य पर आघात कर रहा है, कभी स्त्री-पुरुष का प्रेम उस दरिद्रता के ऊपर प्रतिहत हो रहा है।

बंगाल के कवि हृदय ने इस दरिद्रता को महत्व व देवत्व प्रदान कर उसे समुच्च शिखर पर ला खड़ा किया है। वैराग्य व आत्मविस्मृति के द्वारा दरिद्र की हीनता दूर कर कवि ने उसे ऐश्वर्य की अपेक्षा बहुत बड़ा कर दिखाया है। भोलानाथ ने दरिद्रता को अंग का गहना बनाया था, दरिद्र सामाज के लिए इससे अधिक आनन्दमय आदर्श और कुछ भी नहीं। 'मेरे पास धन नहीं' ऐसा कहने वाला ही गरीब है। 'मुझे आवश्यकता नहीं' ऐसा कह सकने वाले के पास क्या अभाव ? शिव तो उसी के आदर्श हैं।

दूसरे देशों की तरह भारत में धन की प्रतिष्ठा नहीं है। कम से कम पहिले नहीं थी। जिस वंश अथवा घर में कुलशील सम्मान है, उस वंश या घर में धन नहीं है, ऐसे उदाहरण हमारे देश में कम दिखलाई नहीं पड़ते। इसीलिए हमारे देश में धनी व निर्धन में वैवाहिक सम्बन्ध सर्वदा हुआ करते हैं।

किन्तु सामाजिक आदर्श जैसा भी हो, धन से एक स्वाभाविक गर्व आ जाता है। धन के गौरव में धनी व्यक्ति दरिद्र के प्रति कृपा दृष्टि से देखता है। जहां सामाजिक ऊंच-नीच नहीं है, वहां धन की विषमता विप्लव खड़ा कर देती है, इस प्रकार का तंत्र ही दाम्पत्य संबंध के विवाद का मूल कारण है। जब धनी ससुर अपने गरीब दामाद की अवज्ञा करता है और धनी कन्या दरिद्र पति व अपने अदृष्ट से तंग हो जाती है तब गृह-शांति कंपायमान हो उठती है।

दाम्पत्य का यह दुराग्रह किस प्रकार कम हो जाता है, हर-गौरी की कथा में यही बताया गया हैं। उसका एक उपादान है सती स्त्री की अटल श्रृद्धा और दूसरा उपादान है दरिद्र द्वारा हीनता का मोचन, दारिद्र्य महत्व-कीर्तन। उमापति दरिद्र होने पर भी हीन नहीं और श्मशान-वासी की पत्नि, पति गौरव से इन्द्र की इंद्राणी से अपेक्षाकृत श्रेष्ट है।

दाम्पत्य-बंधन का एक और बड़ा विघ्न है—पति का वार्धक्य एवं उसकी कुरूपता। हर-गौरी के सम्बन्ध में इसकी भी पराजय हुई है। विवाह सभा में वृद्ध जामाता को देख कर जब मेनका आक्षेप करने लगीं तभी अलौकिक प्रभाव से वृद्ध वर का रूप-यौवन व वस्त्रा-भूषण आलोकित हो उठे। यह अलौकिक रूप-यौवन प्रत्येक वृद्ध स्वामी में है, यह उसकी पत्नी के प्रेम व उसकी आंतरिक भक्ति पर निर्भर करता है। ग्राम के भिक्षुक, कथक व गायक हर-गौरी की कथा में द्वार द्वार पर बार बार उसी भक्ति का उद्रेक करते घूमते हैं।

गांव की कवि-प्रतिभा यहीं पर नहीं थम गई। शिव को उन्होंने गांजा भांग इत्यादि

के नशे से भी उन्मत्त किया है। केवल इतना ही नही, असभ्य स्त्रियों के प्रति उनकी आसक्ति का भी प्रचार किया है। कालिदास के अनुत्तरंग समुद्र व निर्वात निष्कम्प दीपशिखावत योगीश्वर बंगाल के ग्राम में आकर ऐसी दुर्गति को प्राप्त हुए हैं।

किन्तु स्थूल रूप से हर-गौरी की कथा, छोटे बड़े समस्त विघ्नों के ऊपर दाम्पत्य की विजय कथा है। हर-गौरी प्रसंग में हमारे एकांत पारिवारिक-समाज की मर्मरूपिणी रमणी का एक सजीव आदर्श प्रतिष्ठित हुआ है। पति दीन, दरिद्र, वृद्ध, कुरूप जैसा भी हो रूप-यौवन, भक्ति-प्रीति, क्षमा-धैर्य, तेज-गर्व से समुज्वल है। पत्नी ही दरिद्र का धन है, भिखारी की अन्नपूर्णा है, रिक्त गृह की सम्मान-लक्ष्मी है।

हर-गौरी का गान जैसे समाज का गान है, राधा-कृष्ण का गान वैसे ही सौन्दर्य का गान है। इसमें जो अध्यात्म तत्व है उसे हम छोड़ रहे हैं। क्योंकि तत्व जब रूपक का वेश धर कर साधारण की दृष्टि को आकर्षित करने का प्रयास करता है तब वह अपना तत्व रूप गुप्त रखता है। जन साधारण का हृदय वह अपने बाह्य रूप से ही आकर्षित करता है। राधा-कृष्ण के रुपक में एक ऐसा पदार्थ है जो बंगाल के वैष्णव, अवैष्णव, तत्व ज्ञानी व मूढ़ सभी के लिए समान रूप से उपभोग्य है। इसीलिए वह लोकगीतों में, ग्राम्य नाटकों की कथाओं में परिव्याप्त हो सका है।

सौन्दर्य सूत्र से नरनारी के प्रेम का आकर्षण सभी देशों के साहित्य में प्रचारित है। केवल सामाजिक कर्त्तव्य बंधन में ही यह समाया हुआ नहीं है, समाज के बाहर भी इसका शासन विस्तृत है। पंचशर की गति सर्वत्र है और वसन्त अर्थात जगत का यौवन व सौन्दर्य इनके नित्य सहचर हैं।

नरनारी के प्रेम में यह जो मोहिनी शक्ति है, जिस शक्ति बल से वह मुहूर्त मात्र में जगत के चंद्र, सूर्य, तारे, पुष्प, कानन, नद-नदी सभी को एक सूत्र में खींच लाकर मधुर भाव से, उज्वल रूप से अपने चारों ओर सजा लेता है, जिस प्रेम की शक्ति अपने आकस्मिक, अनिवर्चनीय आविर्भाव के द्वारा इतने दिन के विच्छिन्न, विक्षिप्त, उपेक्षित विश्व-जगत को एक पल में सम्पूर्ण रूप से कृत कृत्य कर देती है — उस शक्ति को युग युग में, देश देश में मनुष्य ने अध्यात्म शक्ति का रूपक कहकर अनुभव व व्यंजित किया है। उसका प्रमाण सोलोमन, हाफिज व वैष्णव कवियों की पदावली देती है। दो व्यक्तियों के प्रेम में ऐसी विश्व-व्यापकता है कि आध्यात्मिक भाव संपन्न लोगों को लगता है कि उस प्रेम का सम्पूर्ण अर्थ उन दोनों में पर्याप्त नहीं है, वह इंगित मात्र से जगत व जगदीश्वर के मध्यवर्ती अनन्तकाल का सम्बन्ध व असीम व्याकुलता का ज्ञापन कर रही है।

काव्य के लिए यह विषय दूसरा नहीं है। यह एक ही साथ सुन्दर व विराट, अंतरतम व विश्वग्राही, लौकिक व अलौकिक है। यद्यपि स्त्री पुरुष के प्रकाश्य मिलन व स्वाधीन वरण के अभाव से भारतवर्ष के समाज में यह प्रेम लांछित हो गुप्त रूप से विचरण करता है, तथापि भारतवर्ष के कवियों ने नाना छल व कौशल द्वारा इसे अपने काव्य में व्यंजित किया है। प्रकाश्य रूप से समाज का अपमान न कर इन्होंने काव्य की स्थापना समाज के बाहर ही की है। मालिनी नदी के तीर पर, तपोवन में, सहकार-सनाथ वन-ज्योत्सना कुंज में, नव यौवना शकुन्तला समाज-कारावासी कवि हृदय का कल्पना-स्वप्न है। दुष्यंत-शकुन्तला का प्रेम समाज का अतीत है, यहां तक कि वह समाज विरोधी है। पुरूरवा की प्रेमोन्मत्तता समाज के बन्धनों को तोड़ कर नदी, पर्वत, वन में मदमस्त जंगली हाथी की तरह उन्मादित होकर घूमती फिरी थी। मेघदूत विरह का काव्य है। विरहावस्था में, दृढ़बद्ध दाम्पत्य सूत्र में किंचित् व्यवच्छेद से मनुष्य पुनः स्वतंत्रतापूर्वक प्रेम करने का अवसर पाता है। स्त्री पुरुष के बीच में जहां यह व्यवधान आता है, हृदय की प्रबल गति वहां अपने आप स्वाधीन रूप से प्रवाहित होने लगती है। कुमारसंभव में कुमारी गौरी यद्यपि प्रचलित समाज-नियमों के विरुद्ध शैल-तपोवन में अकेली महादेव की सेवा न करती तो तृतीय सर्ग जैसे अतुलनीय काव्य की सृष्टि क्योंकर संभव होती ? एक ओर वसन्त पुष्पों से सजी हुई शिरीष-कोमला उमा, दूसरी ओर योगासीन महादेव का अगाध-स्तंभित समुद्र-सा विशाल हृदय—लोकालय के नियम प्राचीर में विश्वविजयी प्रेम का ऐसा महान सुयोग कहां से मिलता ?

जो भी हो, मानव रचित समाज अपने आप में सम्पूर्णतया परितृप्त नहीं है। जो शक्ति समाज को समाज के बाहर की ओर खींचती है उस प्रेम की शक्ति को मानस लोक में स्थापन कर, कल्पना के द्वारा उपभोग किये बिना मनुष्य रह नहीं सकता। पार्थिव समाज में यदि उसमें बाधाएं उत्पन्न होती हैं तो दुगुनी तीव्रता के साथ आध्यात्मिक भाव में उसे प्राप्त करने की चेष्टा करता है। वैष्णव गान जो देखते ही देखते सारे भारतवर्ष में छा गया है उसका प्रधान कारण यही है। वैष्णव गान स्वाधीनता के गान हैं। वह जाति-कुल नहीं मानता। किन्तु यह उच्छृंखलता सौंदर्य-बन्धन द्वारा, हृदय-बंन्धन द्वारा नियंत्रित है। वह केवल अन्ध इन्द्रियों की उद्भ्रांत उन्मत्तता ही नहीं है।

हर-गौरी की कथाओं में दाम्पत्य बन्धन संबंधी जिस प्रकार कुछ बाधाओं का वर्णन है, वैष्णव गाथा के प्रेम प्रवाह में भी वैसे ही एक प्रबल बाधा का उल्लेख है—वह बाधा है समाज। समाज अकेला ही सौ के बराबर है। वैष्णव पदावलियों में उस समाज-बाधा के चारों ओर

प्रेम की उत्ताल तरंगे उद्वेलित हो उठी हैं। यहां तक कि वैष्णव काव्य शास्त्रों में परकीया प्रेम का चित्रण बड़े गौरव के साथ किया गया है। यह कहना व्यर्थ है कि वह गौरव समाज-नीति के अनुकूल नहीं हुआ। वह केवल प्रेम के निमित्त घटित हुआ है। इसमें जो आत्म-विस्मृति, विश्वविस्मृति, निन्दा, भय, लज्जा, शासन की ओर से सम्पूर्ण उदासीनता, कठिन कुलाचार, लोक व्यवहार के प्रति अचेतनता पाई जाती है, उसके द्वारा प्रेम की प्रबल शक्ति, दुर्बोध रहस्य, उसकी बन्धन-विहीनता, समाज-संस्कार, स्थान-काल-पात्र एवं युक्ति-तर्क-कार्य-कारण के प्रति एक महत् भाव स्पष्ट हो उठता है। इस कारण से विश्व समाज में जिसकी सर्वत्र निन्दा है, उस अभ्रभेदी कलंकचूड़ा पर वैष्णव कवियों ने उसके वर्णित प्रेम की स्थापन कर उसकी अभिषेक— क्रिया सम्पन्न की है। इस सर्वनाशी, सर्वत्यागी, सर्व-बन्धनच्छेदी प्रेम को आध्यात्मिक अर्थ में ग्रहण न करने पर काव्य के हिसाब से कोई नुकसान नहीं है, समाज-नीति के हिसाब से हो सकता है।

इस प्रकार के प्रेमगीतों का प्रचार साधारण मनुष्यों के लिए विपदाजनक तथा समाज के लिए अहितकर हो सकता है। किन्तु वास्तव में वह सम्पूर्ण सत्य नहीं है। मानव-प्रकृति को समाज एकदम उन्मूलित नहीं कर सकता। वह काम-काजों में, कल्पना में, इधर-उधर की बातों में अपने-आप को व्यक्त कर देता है। वह एक ओर से प्रतिहत होकर दूसरी ओर प्रवाहित होता है। मानव-प्रकृति को अत्यधिक रूप से एवं सम्पूर्णतया रोकने पर समाज की ही हानि संभव है। उस अवस्था में वह रुद्ध प्रकृति जब किसी एक रूप में बाहर निकलने का उपाय ढूंढ लेती है, तभी आशंका कम हो सकती है। हमारे देश में जब बन्धन-हीन प्रेम का समाज द्वारा अनुमोदित स्थान कहीं भी नहीं हैं, सदर दरवाजा उसके लिए जब एकदम ही बन्द है, अथच शास्त्र की दुहाई देकर उसे कब्र में सुलाने पर भी वह जब भूत बनकर आधी रात को बंद द्वार के छिद्रों में होकर दुगुने बल से लोकालय में पर्यटन करता रहता है, तब विशेष रूप से हमारे समाज ही में वह कुलमान-ग्रासी कलंक-अंकित प्रेम स्वाभाविक रूप से गुप्त स्वरूप धारण कर स्थान पाने के लिए वाध्य है। वैष्णव कवियों ने उस बन्धन-नाशी प्रेम के गंभीर दुर्निवार आवेग को सौंदर्य क्षेत्र में, आध्यात्मलोक में प्रवह-मान कर उसे संसार-पथ से अधिक मानस-पथ की ओर प्लावित कर दिया है; हमारे समाज के उस चिरक्षुधातुर प्रेत की पवित्र गंगा में पिण्डदान की व्यवस्था कर दी है। उन्होंने काम-वासना को प्रेम में परिणित करने के लिए विविध प्रकार की छन्दोबद्ध कल्पना की स्पर्शमणि का प्रयोग किया है। यह नहीं कहा जा सकता कि उनकी रचनाओं में इन्द्रिय विकार को कोई स्थान ही नहीं। किन्तु वृहत् श्रोतस्विनी नदी में जैसे असंख्य दूषित व मृत पदार्थ प्रतिक्षण

अपना संशोधन करते रहते हैं, वैसे ही सौंदर्य व भावावेग से सारे विकार सहज ही शोधित होते चले जाते हैं। बल्कि विद्यासुन्दर के कवि समाज के विरुद्ध यथार्थ अपराधी हैं। समाज की अट्टालिका के नीचे उन्होंने हंस हंस कर सुरंग खोदी है। उस सुरंग में पवित्र सूर्यालोक व उन्मुक्त वायु का प्रवेश पथ नहीं है। तथापि इस विद्यासुन्दर काव्य व विद्यासुन्दर यात्रा का क्यों हमारे देश में इतना आदर है ? यह अत्याचारी कठोर समाज के प्रति मानव - प्रकृति का निपुण परिहास है। वैष्णव कवि ने जिन चीजों को भाव के छायापथ पर सुन्दर रूप से अंकित कर दिया है इन्होंने समाज की पीठ पर उन सभी को दाग बना कर लगा दिया है; जो कोई भी देख रहा, वही कौतुक का अनुभव कर रहा है।

जो भी हो, मोटी बात यह है कि हर-गौरी व राधा-कृष्ण को लेकर हमारा ग्राम्य साहित्य सर्जित हुआ है। उसमें हर-गौरी की कथा हमारे घर की बात है। उस कथा में बंगाल के घरों का मार्मिक चित्रण हैं। कन्या हमारे गृह में एक बहुत बड़ी जिम्मेवारी हैं। कन्यादान जैसा कोई अन्य दान नहीं। 'कन्यापितृत्व खलु नाम कष्टम् !' सामाजिक अनुशासन के अनुसार हम निर्दिष्ट आयु व संकीर्ण मंडली के भीतर कन्या का विवाह करने को बाध्य हैं। इसलिए उस कृत्रिम ताड़नावश वर की कीमत बहुत बढ़ जाती है, उसके रूप-गुण, अर्थ-सामर्थ्य का उतना प्रयोजन नहीं रहता। अयोग्य पात्र के हाथों कन्या का समर्पण तो हमारे समाज में प्रतिदिन की दुर्घटना है। इसे लेकर दुश्चिंता, अनुताप, अश्रुपात, जामाता परिवार के साथ विरोध, पितृकुल व पति कुल की मध्यवर्तिनी बालिका की मर्म वेदना, सर्वदा घर घर में दिखाई देती है। एकान्त परिवार में हम दूर व निकट के, यहां तक कि नाम मात्र के आत्मीय जनों को बांधकर रखना चाहते हैं, केवल कन्या को ही अलग करना पड़ता है। जिस समाज में पति पत्नी को छोड़ पुत्र कन्या इत्यादि सभी विच्छिन्न हो जाते हैं, वे हमारी इस असह्य-नीय व्यथा की कल्पना भी नहीं कर सकते। हमारे मिलनधर्मी परिवार में यही एकमात्र विच्छेद है। इसलिए घूम फिर कर इसी क्षत वेदना पर हाथ पड़ जाता है। हर-गौरी की कहानी बंगाल के एकान्त परिवार की उसी अतुल्य वेदना की मर्म-कथा है। शरत सप्तमी के दिन सारी बंगभूमि की भिक्षुणी-वधु कन्या मातृगृह में आगमन करती है और विजया के दिन जब वह भिक्षुक-घर की अन्नपूर्णा अपने पतिगृह को लौट जाती है तब सारे बंगाल की आंखों में जल भर आता है।

इसी कारण हर-गौरी सम्बन्धी ग्राम्य लोक गीत वास्तविक भावों से ओतप्रोत हैं। वह रचयिता व श्रोताओं की अपनी बात है। उस काव्य में जामाता की निन्दा, स्त्री पुरुष का कलह व गृहस्थ का जो भी वर्णन है, उसमें राज-भाव अथवा देश-भाव किंचित भी नहीं हैं।

उसमें बंगाल के ग्राम्य कुटीरों की दैनिक दीनता व क्षुद्रता सभी प्रतिबिम्बित है। उसमें कैलाश व हिमालय हमारे घर की पोखरी के सामने प्रतिष्ठित हैं और उनके शिखर हमारे आम की बगिया को छोड़ ऊंचे नहीं उठ सके हैं। यदि वे अपनी अपनी अभ्रभेदी मूर्ति धारण करने की चेष्टा करते तो बंगाल के गांवों में उन्हें स्थान ही नहीं मिलता —

शरत काले रानी बले बिनय बचन –
अर शुनेछ गिरिराज निशार स्वपन ?

शरत काल में रानी विनय पूर्वक कहती है — हे गिरिराज मैंने जो स्वप्न देखा वह सुनो।

इसी स्वप्न से कथा का आरम्भ होता है। समस्त आगमनी गान की यह भूमिका है। प्रत्येक वर्ष शरत काल में भोर की हवा जब शिशिर सिक्त होती है और धूप का रंग कच्चे सोने सा निखर आता है तब गिरिरानी सहसा एक दिन अपनी श्मशान-वासिनी स्वर्ण प्रतिमा गौरी को स्वप्न में देखती है और कहती है —

आर शुनेछ गिरिराज निशार स्वपन ?

गिरिराज यह स्वप्न हमारे पितामह व प्रपितामह के काल से ललित-विभास व रामकली रागिनी में सुनते आ रहे हैं, किन्तु प्रत्येक वर्ष वे इसे पुनः नवीन रूप में ही सुनते हैं। इतिवृत्त के किस वर्ष की यह बात है, यह नहीं मालूम, पर हर-गौरी के विवाह के पश्चात प्रथम बार जिस शरत-ऋतु में मेनका रानी स्वप्न देख कर जाग उठी थी, वही प्रथम शरत उस प्रथम स्वप्न को लेकर प्रत्येक वर्ष लौट लौट आता है। जल में, थल में और आकाश में एक वृहत वेदना बज उठती है, जिसे दूसरे के हाथ में सौंपा है, मेरा वह अपना धन कहां है!

वत्सर गत हयेछे कत, करछे शिबेर घर।
जाओ गिरिराज, आनते गौरी केलाश शिखर ।।

[जाने कितने वर्षों से वह शिव के पास है। गिरिराज, अब गौरी को लाने कैलाश जाओ।]

अब, गिरिराज नितान्त लघु व्यक्ति नहीं है। चलने फिरने में, यहां तक कि शोक, दुख, चिंता अनुभव करने में भी उन्हें स्वभावतः किंचित् देर लगा करती है। अपनी उस सर्वांगीण जड़ता व उदासीनता के कारण, गृहिणी से कुछ तीव्र तिरस्कार वाक्य सुनकर तब वे अंकुशाहत हस्ती की तरह चिघाड़ करते हैं —

शुने कथा गिरिराजा लज्जाय कातर
पंचमीते जात्रा करे शास्त्रेर विचार।
ता शुनि मेनकारानी शीघ्रगति धरि
खाजा मंडा मनोहरा दिलेन भाण्ड भरि॥
मिश्रिसांच चिनिर फेनि क्षीर तक्रि सरे
चिनिर फेना एलाचदाना मुक्ता थरे थरे।
भांगेर लाडु सिद्धि ब'ले पंचमुखे दिलेन।
भाण्ड भरि गिरिराज तखनि से निलेन॥

[तिरस्कृत वाक्य सुनकर गिरिराज लज्जा से कातर हो उठे और शास्त्र देखकर पंचमी में यात्रा का विचार किया। यह सुनकर मेनकारानी शीघ्र उठी और उन्होंने थाली में सजाकर तरह तरह के मिष्ठान्न दिये। गिरिराज तब उन्हें लेकर चले।]

किन्तु दौत्यकर्म में जिस निपुणता की आवश्यकता है, हिमालय के निकट उसकी आशा नहीं की जा सकती। कैलाश में कन्या के साथ अनर्थक झगड़ा कर उन्होंने अपनी स्थूल प्रकृति का परिचय दिया। अभिमानिनी कन्या का कसूर यही था कि—

कह बाबा निश्चय, आर कब पाछे—
सत्य करि बलो आमार मा केमन आछे।
तुमि निठुर हये कुठुर मने पासरिला झि,
शिवनिन्दा करछ कत आर बलब की॥

[पिता, और बातें तो पीछे होती रहेंगी, पहिले तुम सही बताओ कि मेरी मां कैसी है? तुमने निष्ठुर होकर मुझे अपने मन से भुला दिया और अब शिव निन्दा कर रहे हो।]

जब दोषारोपण सत्य हो, तब उसका ठीक उत्तर न दे सकने पर और भी गुस्सा आता है। गिरिराज शिव निन्दा का अवसर पाने पर उसे छोड़ते नहीं, इसका प्रतिवाद न करने पर रुष्ट हो कह उठे—

मा, तुमि बल निठुर कुठुर, शम्भु बलेन शिला।
छार मेनकार बुद्धि शुने तोमाय निते एलाम॥
तखन शुनु कथा जगतमाता कांदिया अस्थिर।
पाढ़ा मेघेर वृष्टि जेन प'ल एक रीत॥
नयनजले भेसे चले, आकुल हल नन्दी—

कैलासेते मिलल झरा, हल एकटि नदी ।।
कॅदो ना मा, कॅदो ना मा, त्रिपुरसुन्दरी ।
काल तोमाके निये जाव पाषाणेर पुरी ।
सन्देश   दिये छिलेन मेनकारानी, दिलेन दुर्गार हाते ।
तुष्ठ हये नारायणी क्षान्त देलेन ताते ।।
उमा कन शुन बाबा, बोसो पुनर्बार
जलपान करिते दिलेन नाना उपहार ।।
यत्न करि महेश्वरी रातुन करिला ।
श्वशुर जामाता दोंहे भोजन करिला ।।

[मां, तुम मुझे निष्ठुर और कठोर कह रही हो, कठोर कह रही हो, और शम्भु मुझे शिला कहते हैं। यह सुन जगत माता [गौरी] ऐसे रो पड़ी जैसे पानी भरे बादलों में से पानी बरस गया हो। नंदी यह देख कर आकुल हो उठे, कैलाश में जैसे एक नदी बह चली। नंदी ने कहा — मां त्रिपुरसुन्दरी ; तुम रोओ नहीं। मैं कल तुम्हें पाषाण पुरी ले जाऊंगा। मेनका ने जो सन्देश दिया था वह उन्होंने उमा के हाथ में दिया, उसे पाकर वह कुछ शांत हुई। तब उन्होंने पिता को बैठाया। यत्न सहित भोजन बनाया और श्वसुर जामाता दोनों ने बैठ कर खाया।]

ये लोकगीत जिनके लिए रचित हैं, वे यदि इसके छंद व मेल के विरुद्ध कोई आपत्ति न करते हों तो हमें कुछ कहना नहीं है, किन्तु जामाता के गृह में समागत पिता के सहित कन्या का मान-अभिमान व उसकी शांति और उसके बाद आहार अभ्यर्थना का यह चित्र जैसे सजीव हो उठा है। नंदी एक कोने में खड़ा था, बीच में ही वह भी आकुल हो गया। श्वसुर जामाता दोनों भोजन कर रहे है। यह चित्र मन में अंकित हो कर रह गया।

शयन काले दुर्गा बले आज्ञा देह स्वामी ।
इच्छा हय जे बापेर बाड़ि काल जाइब आमि ।।
शुन गौरी, कैलासपुरी तुच्छ तोमार ठांइ ।
देखछि तोमार कांगाल पितार घर-दरजा नाइ ।।

[शयन काल में दुर्गा कहती है — स्वामी मुझे आज्ञा दो। मेरी इच्छा है कि कल पिता के घर जाऊं। शिव ने कहा — कैलाशपुरी तुम्हारे रहने के लिए तुच्छ है। मैंने देखा है कि तुम्हारे कंगाल पिता के घर-दरवाजे नहीं हैं।]

शेष दो पंक्तियों को समझने में जरा कठिनाई होती है। इसका अर्थ यही है कि तुम्हारे निवास के लिए तो कैलाशपुरी ही तुच्छ है, ऐसे स्थल में तुम्हारे कंगाल पिता तुम्हें स्थान दे सकें ऐसा उनमें सामर्थ्य कहां ?

पति को लेकर पिता के साथ विवाद करना पड़ता है। और पिता को लेकर पति का विरोध करना पड़ता है — उमा की ऐसी अवस्था है।

गौरी कन, आमि कइले मिछे दन्देज हबे।
सेइ-जे आमार कांगाल पिता भिक्षा मांगछेन कबे ।।
तारा राजार बेटा, दालान-कोठा अट्टालिकामय।
यागयज्ञ करछे कत, श्मशानवासी नय ।।
तारा नाना दानपूण्यवान देवकार्य करे।
एक दफाते कांगाल वटे, भांग नाई तार घरे ।।

[गौरी कहती है — मैं अगर कुछ कहूं तो बेकार में झगड़ा होगा। मेरे कंगाल पिता तुमसे भिक्षा कब मांग रहे हैं। वे राजा के पुत्र हैं, उनकी अट्टालिका है, बड़े बड़े कोठे हैं। वे कितने हीं यज्ञ कर रहे हैं। श्मशानवासी नहीं हैं। वे नाना प्रकार के दान-पुण्य व देव कार्य करते हैं। केवल एक बात में वे कंगाल जरूर हैं, क्योंकि उनके घर में भांग नहीं है।]

किन्तु कड़ी बात में बात नहीं सधती। तर्क में परास्त होने पर शरीर में जोर ज्यादा हो जाता है। इसे समझ कर दुर्गा ने तब

गुटि पांच-छः सिद्धिर लाडु यतन क'रे दिलेन।

[पांच छः भांग के लड्डू दिये]

दाम्पत्य युद्ध में भांग के इन छः लड्डूओं ने तोप के छः गोलों का काम किया, भोलानाथ एक बार में पराभूत हो गये। सहसा पिता, जामाता व कन्या का बड़ा घनिष्ठ मिलन हो गया। वाक्य-हीन नन्दी सकौतुक भक्ति के साथ द्वार के पास खड़ा हो मन ही मन हंसने लगा।

संभ्रमे संभाषण करि वसलेन तिन जन।
दुर्गा, मर्तें जेये की आनिबे आमार कारण ।।
प्रतिबारे केवल मात्र बिल्वपत्र पाई।
देवी बललेन, प्रभु छाड़ा कोन् द्रव्य खाइ ।।

सिंदुर-फोंटा अलकछटा मुक्ता गांथा केशे ।
सोनार झांपा कनक चांपा शिव भुलेछेन जे वेशे ॥
रत्नहार गले तार दुलछे सोनार पाटा।
चांदनि रात्रिते जेन विद्युत दिच्छे छटा ॥
ताड़ कंकन सोन् पेंछि शंख बाहुमूले ।
बांक-परा मल सोनार नूपुर, आंचल हेले दोले ॥
सिंहासन, पट्टवसन परछे भगवती ।
कार्तिक गनेश चललेन लक्ष्मी सरस्वती ॥
जया विजया दासी चललेन दुई जन ।
गुप्तभावे चललेन शेषे देव पंचानन ॥
गिरिसंगे परम रंगे चललेन परम सुखे ।
षष्ठी तिथित् उपनीत हलेन मर्तलोके ॥
सारि सारि घट वारि आर गंगाजल ।
सावधाने निज मने गाच्छेन मंगल ॥

तखन —

गिरिरानी कन बानी चुमो दिये मुखे,
कओ तारिणी, जामाइ-घरे छिले केमन सुखे ॥

[एक दूसरे को सादर संभाषण कर तीनों जने बैठे। शिव ने दुर्गा से पूछा—दुर्गा, मर्त्य में जाकर मेरे लिए क्या लाओगी। प्रत्येक बार मुझे केवल बिल्व-पत्र ही मिलते हैं। दुर्गा ने कहा—मैं प्रभु को छोड़ कौनसी वस्तु मुंह में लगाती हूं। उसके बाद दुर्गा का शृंगार शुरू हुआ। ललाट पर सिंदूर, तिलक, वेश में मुक्ता सजा कर दिये, सोने का फूल लगाया, जिस वेश में शिव भूले थे, वही वेश बनाया उन्होंने। गले में रत्न-हार ऐसा शोभित हो रहा था जैसे चांदनी रात में बिजली चमक रही हो। ताड़, कंकण, पहुंची, शंख हाथों में पहिने, पांव में सोने का बांका नूपुर पहिना। भगवती ने उसके बाद पट्टवास धारण किया। उनके साथ कार्तिक, गणेश, लक्ष्मी और सरस्वती भी चले। जया विजया दो दासियां भी साथ चलीं। अंत में गुप्त रूप से देव पंचानन भी साथ हो लिये। षष्टी की तिथि में वे मर्त्यलोक में जा पहुंचे। वहां गंगाजल से भरे घड़ों की पंक्तियां लगी हुई थीं। स्त्रियां मंगल गीत गा रही थीं।]

तब—

[गिरिरानी कन्या का मुंह चूम कर उससे पूछती हैं—कहो बेटी, जमाई के घर कैसे सुख में रही।]

यह लोक गीत यहीं पर समाप्त होता है—इससे अधिक कहने को और कुछ भी नहीं है। इधर विदा का समय भी आ पहुंचा। कन्या को लेकर ससुराल वालों के साथ पिता के घर-वालों का कुछ ईर्ष्या का भाव रहता है। बहू को अधिक समय तक पितृगृह में रखना ससुराल वालों को अच्छा नहीं लगता। बहुत काल बाद माता-कन्या का तृप्तिपूर्वक मिलन होने से पूर्व ही ससुराल से तकाजा शुरू हो जाता है, वरना लग जाता है। स्त्री-विच्छेद के कारण पति की अधीरता उसका कारण नहीं। कुछ भी हो, बहू दूसरे घर से आती है, बड़ी चेष्टाओं के बाद ससुराल के साथ उसका जोड़-तोड़ बैठता है। वहां के नये नये कर्त्तव्य, अभ्यास व परिचय-बंधन से विच्छिन्न कर उसे बाल्य काल के स्वाभाविक आश्रय स्थल में बार बार जाने देने से अथवा दीर्घकाल तक रहने देने से उस जोड़-तोड़ में विघ्न पड़ता है। विशेषकर पिता के घर विवाहिता कन्या का केवल कर्त्तव्यहीन आदर है, ससुराल में उस पर कर्त्तव्य का शासन रहता है, ऐसी अवस्था में दीर्घकाल तक पितृगृह की हवा श्वसुर-वर्ग वाले वधू के लिए वांछनीय नहीं समझते, इन सब कारणों से पिता के घर कन्या की गति-विधि के सम्बन्ध में ससुराल का विधान कुछ कठोर हुआ करता है। कन्या के पिता के लिए यह भी एक कष्ट है। विजया के दिन बंगाल देश के ससुराल के उस कड़े तकाजे को लेकर शिव मेनका के द्वार पर उपस्थित होते हैं। मातृस्नेह का स्वाभाविक अधिकार समाज शासन के विरुद्ध वृथा ही सिर पटकता रहा —

नाहि काज गिरिराज, शिव के बलो जेये।
अमनि भाबे फिरे जाक से, थाकबे आमार मेये।

[गिरिराज तुम शिव को जाकर कहो — वह जैसा आया है वैसा ही लौट जाये, मेरी लड़की पीहर ही रहेगी।]

तब ससुराल में दुर्गा को जितने भी दुख हैं, सब माता को याद आने लगे। शिव के भण्डार में जितना अभाव है, उसके आचरण में जितनी त्रुटी है, चरित्र में जितने दोष हैं, सब उसके निकट जाज्वल्यमान हो उठे। उन्होने अपात्र को कन्यादान किया है, अब जितना हो सके उसे संशोधित करने की इच्छा होने लगी, गौरी को मातृक्रोड़ में वापिस लौटा लेने की लालसा होने लगी। दूर से कई बार श्वसुर गृह के आचार-विचार पितृगृह की तुलना में कठोर मालूम होते हैं, और पितृपक्षीगण स्नेह के आवेश में कन्या के समक्ष ही उसकी कटोर समालोचना किया करते हैं। मेनका ने भी वही करना शुरू किया। और शिव उस अन्यायपूर्ण

आचरण से विक्षिप्त होकर सतेज ससुराल के अनुशासन का प्रचार करने लगे —

मर्त्ते आमि पूर्वकथा भुलछ देखि मने ।
बारे बारे निषेध तोमार करछि ए कारणे ।।
मायेर कोले मत्त हये भुलछे देखि स्वामी ।
तोमार पिता केमन राजा ताई देखब आमि ।।
शुने कथा गिरिराजा उद्यायुक्त हल ।
जय-जोगाड़े अभयारे जात्रा करे दिल ।।
जे निबे से क'ते पारे, नइले एमन शक्ति कार ।
जाओ तारिणी हरेर घरे, एसो पुनर्वार ।।

[मर्त्यलोक में आकर पहिले की बात भूल गई — ऐसा लगता है — इसीलिए मैंने तुम्हें शुरू में बार बार मना किया था । मां की गोद में आकर तुम अपने स्वामी को भी भूल गई हो । तुम्हारे पिता कैसे राजा हैं, मैं यह देख लूंगा । यह बात सुनकर गिरिराज गरम हो उठे । जुगाड़-जंतर करके उन्होंने अभया को विदा दी । उन्होंने यात्रा के समय कहा—जिसने लड़की को लिया वही ऐसी बात कह सकता है, नहीं तो यह शक्ति और किस में हो सकती है । तारिणी मां, तुम अब पति के घर जाओ, लौटकर फिर आना]

अनुग्रह की संकीर्ण अवधि समाप्त हो गई, कन्या पतिगृह लौट गई ।

अब जिस लोकगीत की आलोचना करूंगा उसमें देवदेवी के घर की एक गुप्त कथा का वर्णन है —

शिवसंगे रसरंगे वसिये भवानी ।
कुतूहले उमा बलेन त्रिशूलशूलपाणि,
तुमि प्रभु तुमि प्रभु त्रैलोक्येर सार —
इन्द्र चंद्र कुबेर वरुण तोमारि किंकर ।।
तोमार नारी हये आमार साध नाहि पोरे ।
जेन वेन्या पतिर कपाले प'ड़े रमणी भोरे ।।
दिव्य सोनार अलंकार ना परिलाम गाय ।
शामेर वरण दुइ शंख परते साध जाय ।।
देवेर काछे मरि लाजे हात बाड़ाते नारि ।

बारेक मोरे वाओ शंख तोमार घरे परि ॥

[एक दिन शिव के साथ भवानी बैठी हुई थीं । तब उन्होंने हसी हंसी में कहा — हे त्रिशूल-शूलपाणि प्रभु , तुम त्रिलोक के सार हो । इन्द्र , चन्द्र , कुबेर , वरुण सब तुम्हारे किंकर हैं । और तुम्हारी स्त्री होकर मेरी एक छोटी सी साध नहीं पूरी होती । सोने के अलंकार चाहे न भी पहनूं , पर दो शंख पहनने की मेरी बड़ी साध है । देव , मैं तुम्हारे पास लज्जा के मारे दोनों हाथ बढ़ा भी नहीं सकती । एक बार मुझे शंख पहिना दो ।]

भोलानाथ को कौतुक करने की सूझी । पहिले से ही उन्होंने झगड़ा शुरू कर दिया —

भेबे भोला हेसे कन शुन हे पार्वती ,
आमि तो कड़ार भिखारी त्रिपुरारि शंख पाव कशि ॥
हातेर शिगाटा बेचले परे हबे ना
एकखाना शंखेर कड़ि ,
बलदटा मूल करिले हबे काहनटेक कड़ि ॥
एटि ओटि ठाक ठिकाटि चाओ हे गौरी ,
थाकले दिते परि ।
तोमार पिता आछे बटे अर्थेर अधिकारी
से कि दिते पारे ना दुमुटो शंखेर मुजुरि ॥

[कुछ सोच समझ कर भोलानाथ हंसकर कहने लगे — सुना पार्वती मैं तो भिखारी हूं , शंख के लिए कौड़ी भी नहीं दे सकता । मेरे पास जो सींगी है उससे शंख के लिए भी कौड़ी नहीं मिलेगी । बैल को बेचने पर शायद कुछ मिल जाय । पर तुम्हारे पिता के पास तो बहुत धन है । वह क्या दो शंखों की कीमत भी नहीं दे सकते ।]

धनहीनता का यह ढोंग महादेव की ज्यादती थी । स्त्री जाति के लिए यह स्वभावत: असह्य है । स्त्री जब ब्रेसलेट की प्रार्थना करती है , किरानी बाबू यदि उस समय आय-व्यय का हिसाब लगाकर अपना दारिद्रय प्रमाणित करने बैठें तब कौन धर्मपत्नी उसे चुपचाप सह लेगी ? विशेषकर शिव का दारिद्रय तो केवल बहाना है , वह इन्द्र , चंद्र, वरुण सब को नीचा दिखाने के लिए है , केवल अन्नपूर्णा के साथ कौतुक करने के अभिप्राय से है । कालिदास ने शंकर के अट्टहास की कैलाश शिखर के भीषण तुहिनपुंज के साथ तुलना की है; महेश्वर का शुभ्र-दारिद्रय भी उनका नि:शब्द अट्टहास है । किन्तु देवताओं के कौतुक की भी एक सीमा

है। महादेवी ने इस सम्बन्ध में अपने मन के भाव को अत्यंत स्पष्ट रूप से व्यक्त किया। इसमें इंगित की कोई अपेक्षा नहीं रही —

गौरी गर्जिये कन, ठाकुर शिवाइ
आमि गौरी तोमार हाते शंख परते चाइ
आपनि जेमन युव-युबती अमनि युवक पति हय
तबे से वैरस रस नइले किछुइ नय ॥
आपनि बूड़ो आधबरसी भांगधुतुराय मत्त।
आपनार मतो परके बले मन्द।

[गौरी यह सुनकर गरज कर कहने लगी—शिव ठाकुर, मैं गौरी तुम्हारे हाथ से शंख पहिनना चाहती हूं। युवती के लिए वैसा ही युवक पति हो तभी जीवन में रस मिलता है। तुम बूढ़े भांग-धतूरे ही में मस्त हो। अपनी तरह तुम दूसरों को भी बुरा कहते हो।]

यहीं विवाद का अन्त नहीं हुआ — इसके बाद भी देवी ने क्षोभ में आकर जो दो चार बातें कही हैं, जो महादेव के व्यक्तिगत चरित्र से संबधित हैं, वह आम लोगों के बीच प्रकाश योग्य नहीं हैं। इसलिए उसे हम यहां उद्धृत नहीं करेंगे। किस्सा यहीं पर खत्म नहीं हुआ, स्त्री का क्रोध जहां तक जा सकता है, अर्थात् पीहर तक, वहां गया।

कोले करि कार्तिक हांटाये लम्बोदरे
क्रोध करि हरेर गौरी गेला बापेर घरे ॥

[कार्तिक को गोद मे लेकर और लम्बोदर को पैदल चलाकर क्रोध के मारे गौरी पिता के घर गई।]

इधर शिव ने अपने संकल्पित दाम्पत्य प्रहसन का नेपथ्य विधान शुरू किया।

विश्वकर्मा एने करान शंखेर गठन।

[विश्वकर्मा को बुलाकर उन्होंने शंख बनवाये।]

शंख लेकर शंखारी का वेश धारण कर वे बेचने के लिए निकले—

दुइ बाहु शंख निलेन नाम श्रीराम लक्ष्मण।
कपटभावे हिमालये तलासे फेरेन ॥
हाते शूली कांखे थलि शम्भु फेरे गलि गलि
शंख निबि शंख निबि एइ कथाटि ब'ले ॥

सखीसंगे बसे गौरी आछे कुतूहले ।
शंख देखि शंख देखि एइ कथाटि ब'ले ॥
गौरी के देखाये शांखारि शंख बार क'ल्ल ।
शंखेर उपरे जेन चन्द्र उदय हल ॥
मणि-मुकुता-प्रवाल गांथा माणिक्येर भूरि ।
नब भलके भलछे जेन इन्द्रेर बिजुलि ॥

[दोनों बाहुओं के लिए श्री राम लक्ष्मण नाम के दो शंख लिए । कपट भाव से हिमालय में महादेवी की तलाश में फिरने लगे । हाथ में शूल, कंधे पर थैली लेकर शंभु गली गली 'शंख लेओ, शंख लेओ' की आवाज लगाकर घूमने लगे । इधर सखियों के साथ गौरी बैठी हुई थी । उन्होंने यह आवाज सुनकर शंख देखने की इच्छा प्रकट की । गौरी को दिखाने के लिए जब शंख निकाले तो ऐसा प्रतीत हुआ मानो शंख पर चंद्रमा चमक रहा हो । उसमें विविध प्रकार के मणि-मुक्ता लगे हुए थे । ऐसी चमक थी मानो इन्द्र बिजली चमका रहे हों ।]

देवी ने खुश होकर पूछा—

शांखारि भालो एनेछ शंख ।
शंखेर कत निबे तंक ॥

[शंखारी , तुम तो बड़े अच्छे शंख लाये हो । कितने पैसे लोगे इनके ?]

देवी के लुब्धभाव को देखकर चतुर शंखारी ने पहिले दाम की कोई बात ही नहीं की । कहा —

गौरी , ब्रह्मलोक , बैकुण्ठ , हरेर कैलास , ए तो सबाई कय ।
बूझे दिलेई हय ।
हस्त धुये परो शंख , देरि उचित नय ॥

[गौरी , ब्रह्मलोक , बैकुण्ठ और शिव के कैलाश की बात सभी जानते हैं । तुम जो उचित समझो वही देना । अब हाथ धोकर शंख पहिनो , देरी करना उचित नहीं ।]

शंखारी ने अभी अभी महादेव की स्थावर सम्पत्ति जो गिनाई उससे शंख बड़े सस्ते मिलेंगे , ऐसा सोचना महादेवी को उचित नहीं था ।

गौरी आर महादेवेर कथा हल दड़ ।
सकल सखी बले दुर्गा शंख चेये परो ॥

केउ दिलेन तेल गामछा केउ जलेर बाटि ।
देवेर उरुते हस्त थुये बसलेन पार्वती ।
दयाल शिव बलेन, शंख आमार कथाटि धरो ।
दुर्गार हाते गिये शंख वज्र हये था को ।
शिले नाहि भेंगो शंख खड्गे नाहि भांगो ।
दुर्गार सहित करेन वाक्येर तरंग ।।
ए कथा शुनिया माता मने मने हासे ।
शंख परान जगत्पिता मनेर हरषे ।।
शांखारि भालो दिले शंख मानाये
भांडार भेंगे देइगे तंक लओगे गनिये ।।

[गौरी और महादेव में इस प्रकार की बातें हो रही थीं । तब अभी सखियों ने कहा: गौरी तुम शंख पहिनो । किसी ने तेल लाकर दिया, किसी ने पानी की कटोरी लाकर रखी । महादेव की जंघा पर हाथ रखकर पार्वती बैठी । तब शिव ने मन ही मन कहा— शंख, मेरी बात रखो । दुर्गा के हाथ में जाकर तुम वज्र के सदृश कठोर बन जाओ । पत्थर से नहीं टूटना, खड्ग से भी नहीं टूटना । इधर वे दुर्गा के साथ बातें भी करते जा रहे थे । उन्होंने दुर्गा को शंख पहिना दिया । तब गौरी ने कहा– शंखारी तुमने बड़े अच्छे शंख पहिनाए, मैं भण्डार खोले देती हूं, जितना तुम्हें चाहिये लेलो ।]

तब शंखारी ने उचित समय जानकर कहा —

आमि जदि तोमार शंखेर लब तंक ।
ज्ञेयात-माझारे मोर रहिबे कलंक ।।

[तुम्हारे पास से यदि मैं शंख के दाम वसूल करता हूं तो सारे जाति-बन्धुओं में कलंकित हो जाऊंगा ।]

ये जिस वंश के शंखारी हैं, उनके कुलाचार अलग हैं, उनमें जरा भी विषय-बुद्धि नहीं है; रुपये पैसे के सम्बन्ध में सर्वथा निर्लिप्त हैं, ये जिन्हें शंख पहिनाते हैं उसे पाने पर और किसी प्रकार का दावा नहीं करते । व्यवसाय तो बड़ा उत्तम है !

केमन कथा कओ शांखारि केमन कथा कओ ।
मानुष बूझिया शांखारि ए सब कथा कओ ।।

[शंखारी तुम ऐसी कैसी बातें कर रहे हो । आदमी देखकर बात किया करो ।]

शखारी ने कहा—

ना करो बड़ाइ दुर्गा ना करो बड़ाइ ।
सकल तत्व जानि आमि एइ बालकेर ठांइ ।।
तोमार पति भांगड़ शिव ता तो आमि जानि ।
निति निति प्रति घरे भिक्षा मागेन तिनि ।।
भस्ममाथा ताय भुजंग माथे अंगे ।
निरबधि फेरेन तिनि भूत पेरेतेर संगे ।

[दुर्गा अधिक बड़ाई न करो । इस बालक से मैंने सब कुछ जान लिया है । मुझे मालूम है कि भगेड़ी शिव तुम्हारे पति हैं । रोज घर घर भिक्षा मांगते फिरते हैं । सारे शरीर में उनके भस्मी लगी हुई है, उस पर भुजंग लिपटे हुए रहते हैं । वे दिन रात भूत-प्रेतों के साथ घूमते फिरते हैं ।]

इसी को कहते हैं बदला लेना । अपने सम्बन्ध में जो स्पष्ट बातें महादेव कभी कभी सहधर्मिणी के मुख से सुनते रहते हैं, आज सुयोग पाकर वे सत्य बातें ही उन्होंने उनके सामने कहीं ।

एइ कथा शुनि मायेर रोदन विपरीत ।
बाहिर करते चान शंख ना हय बाहिर ।।
पाषाण आनिल चण्डी शंख ना भांगिल ।
शंखेते ठेकिया पाषाण खंड खंड हल ।।
कोनोरूपे शंख जखन ना हय कर्तन ।
खड्ग दिये हात काटिते देवीर गेल मन ।।
हस्त काटिले शंखे भरिबे रुधिर ।
रुधिर लागिले शंख नाहि लब फिरे ।।
मेनका गो मा,
की कुक्षणे बाड़ाछिलाम पा ।।
मरिब मरिब मा गो हब आत्मघाती ।
आपनार गले दिब नरसिंह काति ।।

[इन बातों को सुनकर जगतमाता ने रोना शुरू कर दिया । वे शंख निकालने की अस-

फल चेष्टा करने लगीं। पत्थर से वह शंख नहीं टूटा, उल्टा पत्थर ही चोट खाकर टूट गया। जब किसी प्रकार शंख नहीं निकला तो देवी ने खड्ग से अपने हाथ काटने की सोची। तब शिव ने कहा — हाथ काटने से शंख रक्त से भर जायेगा, रक्त लगने पर मैं शंख वापिस नहीं लूंगा। गौरी विलाप करने लगी — मां मेनका, किस अशुभ-क्षण में मैंने अपने पांव बढ़ाये थे। मां, मैं आत्मघाती हो जाऊंगी। गले में खड्ग लगाऊंगी।]

अंत में कोई उपाय न देख दुर्गा धूप दीप नैवेद्य लेकर ध्यान में बैठी —

ध्याने पेलेन महादेवेर चरण-दुखान।

ध्यान में उन्हें महादेव के चरण दिखाई पड़े।]

तब सारी बात उनकी समझ में आई। देवता के कौतुक की परिसमाप्ति हुई।

कोथा बा कन्या, कोथा बा जामाता।
सकलेइ देखि जो आपन देवता ॥

[तब कौन कन्या रही, कौन जामाता रहा। सभी अपने देवता से लगे]

यह जैसे ठीक स्वप्न था। एक क्षण भर में ही —

दुर्गा गेलेन कैलासे, शिव गेलेन श्मशाने।
भांग धुतुरा बेंटे दुर्गा बसलेन आसने।
संध्या हले दुइ जने हलेन एकखाने ॥

[दुर्गा कैलाश गईं, शिव श्मशान गये। भांग धतूरा इत्यादि पीस कर दुर्गा आसन पर बैठी। सन्ध्या काल में दोनों मिले।]

यहां चतुर्थ छत्र की अपेक्षा न रख यह लोकगीत यहां समाप्त हो गया।

राधाकृष्ण से सम्बन्धित लोकगीतों की जाति ही स्वतंत्र है। वहां वास्तविकता के कोठे को पार कर मानसिकता में उत्तीर्ण होना पड़ता है। प्रत्येक दिन की घटना, सांसारिक व्यापार, सामाजिक रहस्य को वहां स्थान नहीं मिला है। उस अपरूप ग्वाल-बालक का राज्य ही बंगाली लोकगीतों के रचयिता व श्रोताओं का मानस राज्य है।

स्थाने स्थाने फेरेन राखाल, संगे केई नाइ।
भाण्डीबने धेनु चरान सुबल कानाइ ॥
सुबल बलिछे शुन भाइ रे कानाइ।
आजि तोरे भाण्डीबनबिहारी साजाइ ॥

[ग्वाल-वालक स्थान स्थान पर अकेले घूम रहे हैं । भाण्डीवन में सुबल और कन्हैया भुन , आज तुझे मैं भाण्डीवन-बिहारी बनाकर सजाऊंगी ।]

सजाने के इस प्रस्ताव को सुनते ही निकुंज के जिस कोने में जितने भी फूल थे सभी आग्रह व्याकुल हो उठे ।

कदम्बेर पुष्प बलेन सभा-विद्यमाने
साजिया दुलिब आजि गोविन्देर काने ।।
करबीर पुष्प बलेन , आमार मर्म के वा जाने–
आज आमार राखबेन हरि चुड़ार साजने ।।
अलक-फुलेर कनक दाम बेलफुलेर गांथनि –
आमार हृदये श्याम दुलाबे चूड़ामणि ।।
आनंदेते पद्म बलेन , तोमरा नाना फुल
आमाय देखले हबे चित्त व्याकुल ।।
चरणतले थाकि आमि कमल पद्म नाम
राधाकृष्ण एकासने हेरिब बयान ।।

[सबके सामने कदम्ब का फूल कहता है— मैं आज गोविन्द के कानों में सजूंगा । करबी पुष्प ने कहा— मेरा आदर कौन जानता है , आज मुझे हरि अपने केश में रखेंगे । बेल फूल ने कहा — मेरी माला बना कर श्याम अपने हृदय पर झुलायेंगे । आनन्दित कमल का फूल कहता है — तुम सारे फूलों का हृदय मुझे देखकर व्याकुल होगा । मैं चरण कमल नाम से उनके पांवों के पास रहूंगा । राधाकृष्ण को एकासन में देखूंगा ।]

किसी भी पुष्प को निराश नहीं होना पड़ा उस दिन उनका खिलना सार्थक हुआ —

फुलेरइ उड़ानि फुलेरइ जामाजुरि
सुबल साजाइलि भालो ।
फुलेरई पाग फुलेरइ पोशाक
सेजेछे बिहारीलाल ।
नाना आभरण फुलेरइ भूषण
चूड़ाते करबी फुल ।
कपाले किरीटि अति परपाटि
पड़ेछे चांचर चुल ।

[सुबल ने कृष्ण को बड़ा सुन्दर सजाया है। फूलों के कपड़े हैं, फूलों का ही जामा है। बिहारीलाल ने फूलों की ही पगड़ी व फूलों ही की पोशाक पहनी है। फूलों के ही नाना प्रकार के आभरण हैं, केश चूड़ा में करवी पुष्प है। माथे पर मुकुट है, घुंघराले केश सजे हुए हैं।]

इधर कौतुहली भ्रमर-भ्रमरी, मयूर-मयूरी, खजन-खजनी ने मेला लगा दिया। सुकण्ठ पक्षियों ने आकर सुबल के कला-नैपुण्य की प्रशंसा करनी शुरू की। सस्त्रीक कोकिल आकर कह गया है— किंकिणी किरीट अति परिपाटी —

डाहुक डाहुकी टिया-टूया पाखि
झनकारे उड़िया जाय।

[डाहुक इत्यादि पक्षी झंकार कर उड़ने लगे।]

उन्होने झंकार कर क्या कहा —

सुबल राखाल साजायेछे भालो
विनोदविहारी राय।

[सुबल ने विनोदबिहारी को बड़ा अच्छा सजाया है।]

इधर चातक-चातकी श्याम को मेघ समझ आकाश में उड़ उड़कर 'पानी दे, 'पानी दे' की रट लगाने लगे। वन की शाखाओं में, पल्लवों में, आकाश में और हवा में सर्वत्र एक बड़ा भारी शोर मच गया।

कानाइ बलिछे प्राणेर भाइ रे सुबल
केमने साजाले भाइ बल् देखि बल्।

[कन्हाई कहते हैं — प्राणाधिक सुबल, तूने मुझे कैसे सजाया है, बता तो ?]

कन्हैया जानते हैं कि उनकी सजावट पूरी नहीं हुई। कोकिल-कोकिला और डाहुक-डाहुकी जो भी क्यों न कहें, सुबल की रुचि व नैपुण्य की प्रशंसा करने का अभी समय नहीं हुआ।

नाना फुले साजाले भाई, वामे दाओ प्यारी।
तबे तो साजिबे तोर विनोदविहारी।

[सुबल तूने मुझे नाना प्रकार के फूलों से सजाया है, अब बाई ओर प्यारी राधा को और सजा दे। तभी तो सजावट पूरी होगी।]

वृन्दावन का सर्व-प्रधान फूल तो शेष ही रह गया। वह अभाव पशु-पक्षियों को नजर नहीं आया होगा, पर श्याम को बड़ा अखरने लगा।

कुञ्ज-पाने जे दिके भाई चेये देखि आंखि
सुखमय कुंजवन अन्धकार देखि ॥

[कुंजवन के जिस कोने में आंख उठा कर मैं देखता हूं, मुझे वहीं अंधकार दिखाई पड़ता है।]

सुबल ने तब लज्जित होकर कहा—

एइ स्थाने थाको तुमि नवीन वंशीधारी
खुंजिया मिलाब आन कठिन किशोरी ॥

[बंशीधारी, कुछ देर तुम यहीं रहो। मैं किशोरी को ढूढ़ लाता हूं।]

इधर ललिता-विशाखा सखियों के मध्य राधिका बैठी हुई है।

सुबल के देखिया सबाई हये हरषित—
एसो एसो बोसो सुबल एकी अचरित ॥

[सुबल को देख कर सब हर्षित हो कहने लगी—आओ आओ सुबल बैठो।]

सुबल ने संवाद प्रारंभ किया—

मंद मंद बहितेछे बसन्तेर वा, पत्र पड़े गलि।
कांदिया बलेन कृष्ण कोथाय किशोरी ॥

[वसंत का पवन मंद मंद बह रहा है, विगलित पत्तियां गिर रही हैं। कृष्ण रो रो कर कह रहे हैं—किशोरी राधिका कहां है ?]

कृष्ण के विरहावस्था की बात सुन राधा रो रो कर कहने लगी—

साध क'रे हार गेंथेछि सइ,
हिब कार गले।
झांप दिये मरिब आज यमुनार जले ॥

[सखी, मैंने बड़े जतन से माला गूंथ रखी थी, उसे मैं किसके गले में डालूं। मैं आज यमुना के जल में प्राण विसर्जन कर दूंगी।]

राधिका अनावश्यक ही ऐसा दुःसाध्य दुस्साहसिक काम करने के लिए मुहूर्त भर में ही दृढ़-संकल्प हो उठी। किन्तु अंत में सखियों के साथ मामला साफ करते हुए बोली—

जेइ साजे आछि आमि एइ वृन्दावने ।
सेइ साजे जाब आसि कृष्णदरशने ।।
दांड़ा लो दांड़ा लो सइ बले सहचरी ।
धीरे जाओ फिरे चाओ राधिकासुन्दरी ।।

[मैं यहां वृन्दावन में जो वेश पहिने हूं , उसी वेश में कृष्ण दर्शन को जाऊंगी । सहचरियां कहने लगीं –– अरी सखी , जरा ठहर तो । राधिका जरा मुड़कर तो देख , और धीरे धीरे जा ।]

राधिका ने सखियों से कहा —

तोमरा गो पिछे एसो माथे करे दइ ।
नाथेर कुशल होक, झठित् एसो सइ ।

[तुम सभी सिर पर दही लेकर पीछे आना । मेरे नाथ का कुशल हो , तुम सखियां शीघ्र आना ।]

यद्यपि आवेग में आकर पहिले राधा ने कहा था कि वह जिस सज्जा में है उसी सज्जा में जायेगी । पर वह प्रतिज्ञा रही नहीं ।

हालिया माथार बेणी वामे बांधि चुड़ा
अलका तिलका दिये एंटे परे घड़ा ।
घड़ार उपर तुले निलेन सुवर्णेर झरा ।।
सोनार विजटा शोभे हाते ताड़वाला ।
गले शोभे पंचरत्न तक्ति कण्ठमाला ।
चरणे शोभिछे राइयेर सोनार नूपुर ।
कटिते किंकिणी साजे , बाजिछे मधुर ।।
चिन्ता नाई चिन्ता नाई विशाखा एसे बले ।
धवलीर वत्स एकटि तुले लओ कोले ।।

[सिर की वेणी खोल उन्होंने बायीं ओर चूड़ाकार बनाया । सिर पर सुवर्ण घड़ा रखा । हाथों में उनके सोने की चूड़ियां थीं और गले में कितने ही प्रकार के हार थे । चरणों में सोने के नूपुर शोभायमान हो रहे थे । कटि किंकिणी मधुर शब्दों में बज रही थी । विशाखा ने आकर कहा –– सखी, तुम धवल गाय का एक बछड़ा गोद मे ले लो ।]

सखियां सब दही की मटकियां सिर पर रख और राधिका धवल गैय्या का एक बछड़ा गोदी में ले व्रज के पथ पर श्याम दर्शन को चलीं। कृष्ण तब राधिका का रूप-ध्यान करके अचेतन-से हो रहे थे।

साक्षाते दांड़ाये राई बलितेछे वाणी—
की भाव पड़िछे मने श्याम गुणमणि।
जे भाव पड़ेछे मने सेई भाव आमि।।

[उनके समक्ष खड़ी हो राधा कहने लगी—श्याम तुम क्या सोच रहे हो। तुम जिसका ध्यान कर रहे हो – वह मैं तो यहां हूं।]

राधिका ने सगर्व सविनय कहा—तुम्हारे अन्तर की चिंता मैं बाहर प्रत्यक्ष तो विराजमान हूं।

गाओ तोलो चक्षु मेलो ओहे नीलमणि।
कांदिये कांदाओ केन, आमि विनोदिनी।।
अचलेते छिल माला दिल कृष्णेर गले।
राधाकृष्णेर युगल मिलन भाण्डीरवने।।

[हे नीलमणि, उठो आंखें खोलो, तुम रोकर मुझे भी रुला रहे हो। राधिका ने अपने आंचल की माला कृष्ण के गले में डाली। इस प्रकार राधा-कृष्ण का भाण्डी वन में युगल मिलन हुआ।]

भाण्डी वन विहारी की सज्जा समाप्त हुई, सुबल का काम भी समाप्त हुआ।

इसमें बंगाल का ग्राम्यदृश्य गृहचित्र कुछ भी नहीं है। ग्वालिनें जिस सज्जा में नूपुर किंकिणी बजाकर, सिर पर दही और गोद में बछड़ा लेकर वन पथ से जा रही हैं, वह बंगाल के ग्रामपथ में प्रत्येक दिन अथवा कदाचित देखने में नहीं आता। ग्वाल-बाल वटवृक्ष की छांव में तरह तरह के खेल खेलते हैं, पर फूलों को लेकर उनकी अथवा उनको लेकर फूलों की ऐसी मस्ती की बात कहीं नहीं सुनी जाती। ये सब मन की सृष्टि है। कृष्ण-राधा का विरह मिलन समस्त विश्ववासी के विरह मिलन का आदर्श है; इसमें भारतवर्षीय ब्राह्मण समाज अथवा मनुसंहिता नहीं है, इसमें शुरू से अंत तक ग्वाल-बालकों की लीला है। जहां समाज बलवान है वहां वृन्दावन के गोचारण के साथ मथुरा के राज्य-पालन का एकाकार होना बड़ा असंगत सा लगता है। किन्तु कृष्ण राधा की कहानी जिस भाव-लोक की वस्तु है वहां किसी भी प्रकार की सफाई की आवश्यकता नहीं हैं। यहां तक वहां सारी चिर प्रचलित

सामाजिक प्रथाओं के अतिक्रम को वृन्दावन की गोपालनवृत्ति, मथुरा के राज्य की अपेक्षा अधिक गौरवशाली प्रमाणित हुई है। हमारे देश में, जहां कर्म विभाग, शास्त्र-शासन व सामाजिक उच्च-नीचता का भाव जनसाधारण के मन में बद्धमूल है, वहां कृष्ण राधा की कहानी में इस प्रकार की आचार-विरुद्ध बन्धन-हीनता व भावों की स्वाधीनता कितनी विस्मयकर है, वह हम अभ्यस्त हो जाने के कारण अनुभव नहीं कर पाते।

कृष्ण जब राज्य करने मथुरा गये तब राधिका ने रोकर कहा—

आर कि एमन भाग्य हबे, ब्रजे आसबे हरि।
से गिछे मथुरापुरी, मिथ्ये आशा करि॥

[ब्रज में हरि आवें, ऐसे भाग्य क्या होंगे हमारे? वह मथुरापुरी गये हैं, अब कोई आशा रखना मिथ्या है।]

राजा को फिर से ग्वाला बनाने की आशा दुराशा मात्र है, यही सभी स्वीकार करेंगे। किन्तु वृन्दा वृन्दावन की असली बात समझती है। वह जानती है कि निराश होने का कोई कारण नहीं। वह जानती है कि वृन्दावन-मथुरा में काशी-कांची के नियम ठीक नहीं चलते।

वृन्द बले आमि जदि एने दिते पारि
तबे मोरे की धन दिबे
बलो तो किशोरी॥
शुने वाणी कमलिनी जेन पड़िल धन्दे—
देहप्राण करेछे दान कृष्णपदारविन्दे॥
एक कालेते जांक संपेछि विराग हलेन ताइ।
जम-सम कोनो देवता राधिकार नाइ॥
इहा बइ निश्चय कइ कोथा पाब धन।
मोर केवल कृष्णनाम अंगेर भूषण॥
राजार नन्दिनी मोरा प्रेमेर भिखारि—
बंधुर काछे सेइ धन लये दिते पारि॥
बलछे दूती, शोन् श्रीमती, मिलबे श्यामेर साथे।
तखन बुजनेर दुइ युगल चरण, ताइ दियो मोर माथे

[वृन्दा बोली—किशोरी, मैं अगर श्याम को यहां ला दूं तो मुझे क्या धन दोगी। उसकी बात सुन राधा चौंक उठी। कृष्ण के विरह में वह कातर थी, विलाप करने लगी—

मैंने तो अपना देह-प्राण सब कृष्ण के चरणों में सौंप दिया है। और वे ही आज मुझसे विमुख हो उठे हैं। और यम जैसा कोई देवता मेरे लिए नही है। और फिर मेरे पास धन ही कहां है, मेरे अंगों का भूषण तो केवल कृष्ण का नाम है। राजनंदिनी होकर भी मैं प्रेम की भिखारिन हूं, अपने प्रिय से लेकर वही धन मैं तुम्हें दे सकती हूं। तब वृन्दा बोली—सुनो राधे, श्याम के साथ तुम्हारा अवश्य मिलन होगा, और तब तुम दोनों अपने युगल चरण मेरे माथे पर रखना।]

इस पुरस्कार का वादा ले कर दूती बाहर निकली। युमना पार होकर पथ में—

हास्यरसे एक जनके जिज्ञासिलेन तबे,
कओ देखि कार अधिकारे वसत कर सबे ।।
से लोक बलले तखन राजा कृष्णचन्द्रराय,
मेघेर धारा रौद्र जेमन लागल दूतीर गाय ।।
ननीचोरा राखाल छोंड़ा ठाट करेछे आसि ।
चोर बिने ताके कबे डाकछे गोकुलवासी ।।

[हसी हसी में उसने किसी से पूछा — जरा बताओ तो – कौन है इस राज्य का अधिकारी। उस आदमी ने कहा — यह राजा कृष्णचंद्रराय का राज्य है। दूती ने तब कहा कि उस माखन चोर छोकरे ने यहां आकर बड़ा ठाट बनाया। हम गोकुल-वासी तो उसे चोर कह कर ही पुकारते हैं।]

कृष्ण का यह रायबहादुर खिताब दूती को अत्यंत कौतुकपूर्ण मालूम हुआ। कृष्ण-चंद्रराय नाम तो असली नाम नहीं। मूढ मनुष्यों को भुलाने का यह एक आडम्बर मात्र है। असली नाम वृन्दा को मालूम है।

चललेन शेषे कांगालवेशे उतरिलेन द्वारे ।
हुकम बिने रात्रिदिने केउ ना जेते पारे ।

[तब वह कंगाल वेश में चलने लगी। किन्तु हुक्म बिना वहां रात या दिन में कोई जा नहीं सकता।]

बड़ी मुश्किल से हुक्म ले कर वृन्दा दूती–सभा में गई—

सम्भाषण करि दूती थाकल कतक्षण ।
एकदृष्टे चेये देखे कृष्णेर वदन ।।
धड़ाचूड़ा त्याग करिये मुकुट दियेछ माथे ।

सब अंगे राज-आभरण, बंशी नाइको हाते ॥
सोनार माला, कण्ठहार, बाहुते बाजुबन्ध।
श्वेत चामेर वातास पड़े देखे लागे धन्द ॥
निशान उड़े, डंका मारे, बलछे खबरदार ॥
ब्राह्मण पंडितेर घटा व्यवस्था विचार।
आर एक दरखास्त करि शुन दामोदर।
यमुनाते देखे एलेम एक तरी मनोहर ॥
शून्य हये भासछे तरी ओइ यमुना-तीरे।
कान्तारी अभावे नौका घाटे घाटे फिरे ॥
पूर्वे एक कान्तारी छिल सर्वलोके कय।
से चोर पालालो कोथा ताके धरते हब ॥
शुनते पेलेम हेथा एलेम मथुराते आछे।
हाजिर ना कर जदि जानते पाबे पाछे।
—मेये हये कय कथा, पुरुषेर डराय गा।
सभासुब्ध निःशब्द, केउ ना करे रा॥—
ब्रजपुरे घर बसति मोर।
भाण्ड भंगे ननि खेये पलायेछे चोर ॥
चोर धरिते एइ सभाते आसछे अभागिनी।
केमन राजा विचार कर जानब ता एखनि ॥

[राजा को प्रणाम कर दूती कुछ देर चुपचाप रही। वह बिना बोले बड़े ध्यान से कृष्ण को देखती रही। कितना परिवर्तन है। सिर पर मुकुट है। सारे शरीर पर सुन्दर आभरण थे, हाथों में बांसुरी नहीं थी। गले में सोने की माला, कण्ठहार, बाहुओं में बाजूबंध। दास-दासी चंवर डुला रहे हैं। सब कुछ देख कर वह हैरान रह गई। निशान उड़ रहे हैं, डंका बज रहा है, चारों ओर ब्राह्मण पण्डित शास्त्र विचार में लगे हुए हैं। तब उस दूती ने अपनी दरखास्त पेश की—सुनो दामोदर, यमुना तीर पर एक बड़ी सुन्दर नाव देख आई हूं, पर नाव सूनी है। कर्णधार के अभाव में नाव एक से दूसरे घाट पर जा रही है। सब लोग कहते हैं कि पहिले उसका एक कर्णधार था। वह चोर जाने कहां गया, मैं उसी को पकड़ने आई हूं। मैंने सुना है, वह तुम्हारी

मथुरा नगरी में है। अगर तुम उसे उपस्थित नहीं कर सके तो तुम्हारी खैर नहीं। वृन्दा स्त्री होकर भी इस प्रकार निर्भय हो बात कर रही थी, उसे सुन सारे पुरुष घबरा उठे। सारी सभा चुपचाप। वृन्दा फिर बोली — मेरा घर ब्रजपुर में है। घड़ा फोड़ कर, मक्खन खा कर चोर भाग गया है। उस चोर को पकड़ने के लिए मैं यहां आई हूं। देखूंगी तुम राजा होकर कैसा विचार करते हो।]

वृन्दा ने कृष्णचन्द्रराय के राज-सम्मान की रक्षा करते हुए ये सारी बातें कहीं। कम से कम कवि की रिपोर्ट देखकर तो यही लगता है—पर उसमें कुछ स्पर्धा भी थी। वृन्दा ने वृन्दावन के सामने मथुरा को नीचा दिखाने का अवसर नहीं दिया। उसे अगर उपस्थित न कर सको तो तुम्हारी इच्छा ! यह बात बड़े ऊंचे दर्जे की है। सुनकर सारी सभा निस्तब्ध हो गई। मथुरा के महाराज कृष्णचंद्रराय ने कहा—

ब्रजे छिले वृन्दादासी बुझि अनुमाने।
कोन्दिन बा देखा-साक्षात् छिल वृन्दावने।।
तखन **वृन्दा कच्छेन, की जानि ता हबे कदाचित्।**
विषय पेले अनेक भोले महतेर रीत।।

कृष्ण द्वारा वृन्दावन का कुशल-संवाद पूछने पर वृन्दा ने कहा—

हाते ननि डाकछे रानी गोपाल कोथा रय।
धेनु वत्स आदि तब तृण नाहि खाय।।
शतदल भासतेछे सेइ समुद्र-माझे।
कोन् छार धुतुरा पेये एत डंका बाजे।।

[रानी हाथ में मक्खन लेकर बुला रही हैं — मेरा गोपाल कहां है ? तुम्हारे बिना गाय बछड़े तृण नहीं खाते। तुम कैसे हो कि धतूरे के फूल पाकर शतदल के वृन्दावन को भूल बैठे और संसार में उसका डंका बजा रहे हो ?]

मथुरा के राज्य की तुलना वृन्दा ने धतूरे के फूल से की है, उसमें मस्ती होगी पर वृन्दावन का सौन्दर्य व उसकी सौरभ कहां ?

कहना नहीं होगा, इसके बाद वृन्दा का दौत्य व्यर्थ नहीं हुआ —

दूती **कृष्ण लये विदाय हये ब्रजपुरे एल।**
पशुपक्षी आदि जत परित्राण पेल।।

ब्रजेर धन्य लता तमालपाता धन्य वृन्दावन।
धन्य धन्य राधाकृष्णेर युगलमिलन ॥

[दूती कृष्ण को साथ लिए, विदा होकर ब्रज में लौटी। पशु पक्षियों को परित्राण मिला। ब्रज की लताएं धन्य हुईं, तमाल का वृक्ष धन्य हुआ और वृन्दावन धन्य हुआ। धन्य हो राधाकृष्ण का युगल मिलन।]

बंगाल के ग्राम्य गीतों में हर-गौरी व राधा-कृष्ण की कथा के सिवाय सीता-राम व राम-रावण की कथा भी मिलती है किन्तु वह अधिक नहीं। यह बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि पश्चिम में जहां रामायण की कथा का प्रचार अधिक है, वहां पौरुष की चर्चा बंगाल की अपेक्षा अधिक है। हमारे देश की हर-गौरी की कथा में स्त्री-पुरुष व राधा-कृष्ण की कथा में नायक-नायिका का संबंध नाना रूप से वर्णित किया गया है; किन्तु उसका प्रसार संकीर्ण है, उसमें सर्वांगीण मनुष्यत्व को भोजन नहीं मिलता। हमारे देश में राधा-कृष्ण की कहानी में सौन्दर्यवृत्ति और हर-गौरी की कहानी में हृदयवृत्ति की चर्चा हुई है, किन्तु उसमें धर्म-प्रवृत्ति की अवतारणा नहीं की गई। उसमें वीरता, महत्व, अविचलित भक्ति व कठोर त्याग-स्वीकार का आदर्श नहीं है। राम-सीता का दाम्पत्य हमारे देश में प्रचलित हर-गौरी के दाम्पत्य की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ, उन्नत व विशुद्ध है। वह जैसा कठोर, गंभीर है वैसा ही कोमल व स्निग्ध भी है। रामायण की कथा में एक ओर कर्त्तव्य का काठिन्य और दूसरी ओर भाव का अपरिमित माधुर्य दोनों सम्मिलित हैं। उसमें दाम्पत्य, सौभ्रात्, पितृभक्ति, प्रभुभक्ति, प्रजा-वत्सलता इत्यादि मनुष्य के जितने भी प्रकार के उच्च श्रेणी के हृदय-बंधन हैं, उनका श्रेष्ठ आदर्श अभिव्यक्त हुआ है। उसमें सर्व प्रकार की हृदय-वृत्ति को धर्म के कठोर नियम द्वारा संयत कर रखने का शासन प्रचारित किया गया है। सभी तरफ से मनुष्य को मनुष्य बनाने की ऐसी शिक्षा किसी और देश के साहित्य में नहीं पाई जाती। बंगाल की मिट्टी में वह रामायण हर-गौरी व राधा-कृष्ण की कथा के ऊपर नहीं उठ सका, यह हमारा दुर्भाग्य है। राम को जिन्होंने युद्ध-क्षेत्र में व कर्मक्षेत्र में नरदेवता का आदर्श समझ कर ग्रहण किया है उनका पौरुष, कर्त्तव्य निष्ठा व धार्मिक आदर्श हमारी अपेक्षा उच्चतर है।



चौधरन की चतुराई

एक ठाकुर साहब ने तीन मंजिल की हवेली बनवाई। ऊपर की मंजिल पर ऐसे झरोखे झुकाए कि देखते ही बनता। हवेली का नांगल ठाकुर ने बड़ी धूमधाम से कराया। गांव के मोतबिरों को बड़े मान से निमंत्रित किया और बड़ी उमंग से उन्हें सारी हवेली दिखाई। तीसरी मंजिल का कमरा देख कर गांव चौधरी ने अचम्भे से निश्वास फेंका। ठाकुर साहब ने पूछा—क्यों चौधरी, हवेली कैसी लगी ?

चौधरी ने दो तीन बार सिर धुन कर कहा—हवेली तो थुथका डाले जैसी है, कहीं नजर नहीं लग जाय। इसे बड़ी कारीगरी और चतुराई से बनाई है, पर एक बड़ी कसर रख दी। न आपकी नज़र में आई और न कारीगरों की।

ठाकुर साहब मुस्करा कर बोले—वह क्या ? तेरी निगाह में आई हो तो तू बता दे। तू भी गांव चौधरी है, किसी से क्या कम है ?

तब गांव चौधरी टिच् टिच् करता तीसरी मंजिल की गोल सीढ़ियों की ओर इशारा करता हुआ बोला—गजब हो गया, बड़ी कसर रख दी। यदि इस कमरे में सोते सोते आपके प्राण निकल गए तो आपकी अर्थी इस संकड़ी और गोल सीढ़ी से कैसे बाहर निकलेगी ? मुझे इसी बात का सोच है।

बात हंसने जैसी थी पर ठाकुर के डर से कोई हंसा नहीं। चौधरी की पागल बात सुनते ही ठाकुर साहब के एडी से चोटी तक आग आग लग गई। नांगल का सारा उत्सव किरकिरा कर दिया। कालजीभ ने कैसी अपशकुन की बात कह दी। गुस्से में लाल होकर ठाकुर ने नौकरों से कहा—इस गंवार को धक्के देकर इसका मुंह काला करो। जाओ, इस बेवकूफ को तहखाने में डाल दो। तीन दिन भूखा प्यासा रखो, अपने आप अक्ल ठिकाने आ जायेगी। बहुत बरसों से चौधरीपन करते इसका मगज फिर गया है।

ठाकुर का आदेश मिलते ही नौकरों ने चौधरी को तहखाने में पटक

दिया।

बहुत देर होने पर भी चौधरी घर नहीं पहुंचा तो उसका बड़ा लड़का बुलाने आया। पूछने से पता चला कि चौधरी तो तहखाने में बन्द है। उसने ठाकुर के पास जाकर फरियाद की। ठाकुर ने सारी बात बता कर गुस्से से कहा—उसके लच्छन ही ऐसे हैं। बहुत बरसों से चौधराई करते उसकी बुद्धि को जंग लग गया है।

चौधरी का बड़ा बेटा बात सुनकर बोला—पर पिताजी तो एकदम भोले हैं। उनको इस बात की क्या फिक्र कि आपकी लाश कैसे बाहर निकलेगी। कोट की प्रजा लाश को काट-छांट कर बाहर निकाले, उनको इसकी क्या पंचायत पड़ी थी? अक्ल का दाना भी होता तो इस बात का क्यों सोच करते!

ठाकुर साहब को तो यह बात उससे भी अधिक कड़वी लगी। उन्होंने नौकरों को हुक्म दिया कि बाप के साथ इसको भी तहखाने में पटक दिया जाय। ठाकुर को कहते देर लगी और नौकरों ने धक्के देकर उसे तहखाने में डाल दिया।

बहुत देर कोई खोज खबर नहीं आई तो चौधरी का दूसरा बेटा कोट में हाजिर हुआ। सारी बात सुनकर उसने ठाकुर साहब को हाथ जोड़ कर प्रार्थना की—देखो, देखो, उनकी अक्ल पर पत्थर पड़े जो। मैं तो कहता हूं कि पिताजी को इससे क्या लेना देना था? आपकी लाश है, इस कमरे में ही जला लेंगे; उन्हें क्या सोच लगा था कि आपकी लाश कैसे बाहर निकालेंगे? यहां जलाते कौन रोकता है! जिस बात से उनको लेन देन नहीं हो उसमें लप-चप करने की क्या जरूरत?

ठाकुर के क्रोध में एक आंच और लगी। इसकी भी वही दुर्गति हुई। क्रोध के कारण ठाकुर का खून उफनने लगा।

आधा दिन चढ़ने तक चौधरी का पता नहीं चला तो उसका तीसरा बेटा खोजने आया। ध्यान से सारी बात सुनकर वह ठाकुर से कहने लगा—राम, राम, देखो उनकी अक्ल पर पत्थर पड़े हैं, उनकी समझ में इतनी बात भी नहीं आई कि लाश गोल सीढ़ियों से क्या धूल खाने के लिए बाहर निकालेंगे? झरोखे की खिड़की से रस्सी बांध कर नीचे उतारना कितना सरल काम है? पर मैं तो यह पूछता हूं कि इतनी लम्बी चौड़ी प्रजा के रहते आपकी लाश की उनको क्या चिन्ता लगी थी?

जगमगाते अंगारों पर जैसे बारूद का ढेर गिर पड़ा। चौधरी का तीसरा

बेटा भी देखते देखते तहखाने में दाखिल कर दिया गया ।

अब चौधरी का चौथा बेटा ठाकुर के सामने हाजिर हुआ । कहा—मेरे पिताजी ने क्या कसूर किया जो उनको आपने तहखाने में डाल दिया ! ठाकुर साहब ने उसे सारी बात बताई तो वह अपना कपाल ठोंक कर बोला—मुझे तो यह समझ में नहीं आई कि वे फालतू बातों में लपचप क्यों करते हैं ? आपकी लाश कमरे में पड़ी पड़ी सड़ती रहे ! पर उनको क्या लेना देना था कि इस गोल सीढ़ी से लाश कैसे बाहर निकालेंगे ?

जलती आग में जैसे घी गिरा । ठाकुर ने समझा कि यह तो कुए में ही भांग पड़ गई लगती है । किसी का भी दिमाग ठिकाने नहीं । सबकी अक्ल एक एक से बढ़ कर । उसको भी घरवालों के साथ तहखाने में फेंक दिया गया ।

अन्त में चौधरन के कानों में सारी बात पहुंची । वह दिन ढलने पर घास का भारा लेकर ठाकुर साहब के सामने हाजिर हुई । हाथ जोड़कर प्रार्थना की: आपके तहखाने में मेरे पांच बैल बन्द हैं । उनके खाने के लिए चारा लाई हूं । आपकी आज्ञा हो तो दो तीन पूले चरा दूं ।

ठाकुर साहब ने आश्चर्य से पूछा — तेरे बैल तो नहीं, पर तेरे घर के पांच आदमी तो तहखाने में जरूर बन्द हैं । उनको तीन दिन तक नहीं छोड़ूंगा ।

चौधरन ने कहा—ऐसी बेवकूफी की बात करने वाले मनुष्यों की गिनती में थोड़े ही आते हैं ! वे तो बैलों के समान ही हैं । बैलों पर क्रोध करना आपको शोभा नहीं देता ।

ठाकुर साहब चौधरन की बात सुनकर बहुत खुश हुए । चौधरन की चतुराई ने काम निकाला । ठाकुर साहब ने तुरन्त उसके घर के लोगों को तहखाने से बाहर निकालने का हुक्म दे दिया । चौधरन हंसती मुस्कराती घरवालों को साथ लेकर रवाना हुई तो ठिकाने के कर्मचारियों को यह बात सह्य नहीं हुई । विना रिश्वत दिये कोई यों हंसता-मुस्कराता चला जाय तो उन्हें कौन पूछेगा ? पीछे जाकर कामदार के साथ दो तीन कर्मचारियों ने चौधरी के बेटों से फुसफुसाकर मन भर दही की मांग की । चौधरन को भनक पड़ने पर उसने जानना चाहा तो बेटों ने साफ साफ बतला दिया कि वे लोग मन भर दही मांग रहे हैं । चौधरन ने तुरन्त हां भरते हुए कहा—हां हां, दे देंगे, मन भर दही कौन बड़ी बात है, मैं समझूंगी कि रात को कुत्ते ही चट कर गये ।

चौधरन की मंजूरी के बावजूद भी न मालूम क्यों सभी कर्मचारियों के मुंह एक साथ फीके पड़ गये ।

मौके की उपज

एक जाट ने ज्वार की खेती बोई। सोलह आना जमाना तुष्ठमान हुआ। बालिश्त बालिश्त भर सिट्टे बढ़ गए। कौड़ी के जैसे पके हुए दाने चमकने लगे। खेत में चारों ओर एक सी झोला खाती ज्वार का थट्ट लगा हुआ था। जैसे बादलों से पानी के बदले ज्वार बरसी हो।

इधर उधर के पासवाले गांवों में अकाल का पगफेरा हुआ था, इसलिए चौधरी आठों प्रहर खेत की रखवाली करता। गोफन के सटाके मारता वह चारों ओर चौकसी करता, परन्तु तो भी एक दिन ढलती रात में उसे नींद आ गई।

चौदहवीं की चांदनी का निर्मल प्रकाश सिट्टों के पालने में झूल रहा था। ठंडी सुहानी हवा की लहरों से चौधरी नींद में गाफिल हो गया। इस बीच चार चोरों ने पके हुए सिट्टों की चार बड़ी गठरियां बांधली। गठरियां बांध कर वे उठाने वाले ही थे कि चौधरी झिझक कर जग गया। झटपट खड़ा हुआ। एक हाथ में गोफन और एक हाथ में लाठी लेकर वह चोरों के सामने आ डटा, पर सामने चार भरपूर जवान खड़े थे और वह था निपट अकेला। एक साथ चारों से भिड़ गया तो बात बिगड़ जायेगी। यह सोचकर चौधरी ने एक एक से निपटने की युक्ति विचारी। हंसता हुआ चोरों से कहने लगा—खेत में खड़े धान की चोरी, चोरी नहीं कहलाती। यह तो भगवान के समर्पित है। खड़ी साखों को टिड्डी लग जाती है, रोझ चर जाते हैं, अधपकी साख जल जाती है। इन विवशताओं पर किसका जोर चलता है। जबरदस्ती सब्र झेलनी पड़ती है। आप तो मनुष्यों के रूप हैं। मुझे जगा लेते तो मैं खुद अपने हाथों से आपकी गठरियां भर देता।

चौधरी ने देखा कि चारों चोर उसकी बातें सुनकर थोड़ा आश्वस्त हो गए हैं। फिर उसने बात का रुख बदला। बोला—पर छिप कर चोर की तरह गठरी भरने का काम आपने ठीक नहीं किया। मैं यह बात जानना चाहता हूं कि आप सारे सरदार कौन जात के हैं?

एक बोला — मैं राजपूत हूं। दूसरा बोला — मैं साहूकार हूं। तीसरे ने कहा—मैं ब्राह्मण हूं। चौथा बोला—मैं तो जाट हूं।

तब खेत का मालिक राजपूत के सामने देख कर नरमाई से कहने लगा—आप तो मालिक हैं सो हक का लेते हैं। यह साहूकार बोहरे की जात है सो अच्छी बात। पण्डितजी पुण्य का मांगते हैं सो कोई बात नहीं। पर यह जाट क्या माथे मांगता है? तूने साथ में मशक्कत की थी क्या? फिर चोरी किस हिसाब से की? चल, मेरी मां से तुझे उलहना दिलवाऊंगा।

फिर वह उन तीनों से बोला—मां की आज्ञा लेकर आप यहां से पधारना। आपको हाथ जोड़कर मेरी यही विनती है।

बाकी तीनों लोगों ने समझा कि हमारी तो खैरियत है। जाट पकड़ा जाता है तो पकड़ा जाने दो। खेत का मालिक उसकी बांह पकड़कर पास ही अपनी झोंपड़ी में ले गया। जाट के फेंटे से ही उसे एक खेजड़ी से बांध कर जरू कर दिया।

जाट को काबू में करने के बाद चौधरी वापिस वहां आया। धीरे धीरे निश्चित होकर कहने लगा —— मेरी मां ने कहा है—राजपूत हमारे मालिक हैं, वे चाहें तो सारा खेत नष्ट कर सकते हैं और यह साहूकार कभी दुख के दिनों में हमें रुपया पैसा देता है, यह एक गठरी की जगह एक गाड़ी भर कर भी ले जाय तो हमें खटकेगा नहीं, पर इस ब्राह्मण ने किस कायदे से खेत में हाथ डाला? यह तो दिया हुआ दान लेता है, अपने आप चोरी करके गठरी बांधने की यह लाग हमें नहीं पोसाती। चल मेरी मां के पास, वह इजाजत दे तो एक की जगह दो गांठें मैं खुद अपने हाथ से बांध कर दे दूंगा।

फिर राजपूत और साहूकार के सामने देख कर कहा—वापिस आऊं तब तक आप यहीं रहियेगा। मुख्य मार्ग से आपको खेत के बाहर पहुंचा दूंगा। उन दोनों ने देखा कि ब्राह्मण फसता है तो अपने को क्या? अपनी तो खैर मनाओ। ये अपनी अपनी खींचेंगे और तानेंगे।

चौधरी ने तो उसी प्रकार ब्राह्मण को भी उसकी पगड़ी से दूसरी खेजड़ी के बांध कर जरू कर दिया। उसी समय वापिस आकर राजपूत से कहने लगा—मेरी मां ने कहा है कि आप तो मालिक हैं, यह सारी जमीन आपकी ही बख्शीस की हुई है। आप तो मेरे शरीर के टुकड़े टुकड़े कर डालें तो भी आपका फर्ज नहीं उतर सकता, फिर इस ज्वार की क्या बिसात, खेत का सारा धान आपके सिर पर वार कर फेंक दें। आपका तो अधिकार है, पर इस साहूकार ने हमें सात पीढ़ी में भी धान तोला हो तो बताये। यह हमारा कब बोहरा हुआ और मैं कब इसका आसामी बना! इसने खेत में हाथ डाला तो डाला

ही कैसे ? चल मेरी मां के पास, वह इजाजत दे तो तू गठरी ले जा सकता है।

फिर उसने राजपूत के सामने देख कर कहा — ये तीनों गांठें अब आप ही ले पधारना। मैं गाड़ी जोत कर आपको अभी पहुंचा दूंगा। थोड़ी देरी तो होगी, उसकी माफी चाहता हूं।

यह कह कर उसने उस साहूकार को उसकी पगड़ी से तीसरी खेजड़ी के बांध कर काबू कर लिया। फिर फुर्ती से हाथ में एक बड़ी लाठी लेकर आया। राजपूत के पास आकर कड़कती जबान में बोला — किसी के मालिक हैं तो अपने घर में होंगे। यहां क्या मांगत मांगते हैं ? खेतों को उजाड़ने के लिए आपको किसने मालिक बनाया, बोलो जवाब दो।

राजपूत के जवाब देने से पहले ही उसने तो कस कर लाठी चलाई। लाठी के लगते ही राजपूत तो धूल में। फिर उसने उसको भी एक खेजड़ी से बांध दिया। सारे घरवालों ने फिर उन चारों को बेंतों से खूब पीटा। अपने अपने हाथों की ऐंठ निकाली। बेंतें मार मार कर चारों का शरीर हरा ही हरा कर डाला।

आखिर चौधरी ने उनको वापिस खोला। मजाक करता हुआ बोला— गांव वाले पूछें कि ऐसी सुन्दर छापें कहां लगवा कर आए तो कहना कि ठेट द्वारकाजी जाकर रातों रात छापें लगवाई हैं। अब कभी खेत के सामने भी मुंह किया तो ज्वार की जगह बत्तीसी निगलनी पड़ेगी। साजने से सीधे सीधे अपना रास्ता नापो।



ठाकुर का आसन

राज के कोट में बड़ी चौकी पर मकराने के सुन्दर मयूरासन पर ठाकुर साहब बिराजे हुए थे। काश्मीर के सुन्दर गलीचों के नीचे बिछायत की हुई थी। चौकी पर पास में ही एक चौधरी बैठा था। ठाकुर साहब बिना बात ही न जाने क्यों खुश थे ! उन्होंने मूंछों पर हाथ फेरते हुए चौधरी से मजाक मजाक में पूछा—

क्यों रे चौधरी, मैं मयूरासन पर बैठा हूं तो तू नीचे चौकी पर बैठ गया, पर अगर मैं चौकी पर बैठ जाऊं तो तू कहां बैठेगा ?

चौधरी ने हाथ जोड़ कर अर्ज किया — हुकुम , आप अगर चौकी पर बिराजें तो मैं धूल में आंगन पर बैठ जाऊंगा । मुझे तो आपसे नीचे ही बैठना पड़ेगा ।

ठाकुर साहब फिर आगे कहने लगे— क्यों रे चौधरी , तूने नीचे बैठने की बात की तो मुझे इसका ठीक तरह अर्थ बता । यदि मैं नीचे धूल पर बैठ जाऊं तो तू कहां बैठेगा ?

चौधरी ने कहा — आप नीज धूल पर बिराजें । नीचे बैठने जैसे करम तो हमारे ही हैं । आपके तो पिछले जनम की अच्छी करनी की हुई है , इससे आपके नीचे तो सदा आसन ही रहेगा ।

ठाकुर साहब ने कहा — नहीं रे पगले , कभी ऐसा मौका भी आ सकता है । अब तू बात टाल मत । मुझे साफ साफ बता कि यदि मैं जमीन पर बैठूं तो तू कहां बैठेगा ?

चौधरी मुस्कराता हुआ बोला — हुकुम , यदि आप जमीन पर बिराजें तो मैं थोड़ा खड्डा खोदकर नीचे बैठ जाऊंगा ।

ठाकुर साहब ने फिर पूछा— और चौधरी , जो मैं खडडे में बैठ जाऊं तो तू कहां बैठेगा ?

चौधरी सोच में पड़ गया । थोड़ी देर विचार कर बोला—अगर आप खडडे में बिराजें तो मैं चार हाथ गहरा खड्डा खोद कर आपसे नीचे बैठ जाऊंगा ।

ठाकुर साहब ने फिर दिमाग लगाया । बोले — क्यों रे चौधरी , यदि मैं उस गहरे वाले खडडे में बैठ गया तो तू कहां बैठेगा ?

चौधरी बोला— मैं फिर पांच सात हाथ गहरा खड्डा खोद कर नीचे बैठ जाऊंगा । आप तो सदा ऊंचे ही बिराजमान रहेंगे ।

पर ठाकुर साहब को फिर भी सन्तोष नहीं हुआ । बोले—क्यों रे चौधरी , अगर मैं उस गहरे खड्डे में बैठ गया तो तू क्या करेगा ?

चौधरी इस पहेली से काफी परेशान हो गया था । उसे बड़ी झुंझलाहट हुई । कड़वे स्वर में जवाब दिया — मैं तो बार बार यही कहता हूं कि आप ऊंचे बिराजे रहें, पर आपकी मरजी गहरे खड्डे में बैठने की है तो खुशी से बिराजिये । मैं धूल डालकर आप पर एक बड़ी शिला सरका दूंगा ।

राजस्थान के लोक वाद्य — घन वाद्य

कोमल कोठारी

[राजस्थान के लोक वाद्यों पर क्रमिक रूप से लेख छापे जा रहे हैं। दिसंबर, ६७ में डंडिया, घुंघरू, रमझोल एवं भोपों के बड़े घुंघरू तथा जनवरी, ६८ में घंटा, घंटी, टिकोर, थाली, झालर एवं घड़ियाल व अप्रेल ६८ में मंजीरा, ताल, झांझ पर लिखा जा चुका है। इन निबन्धों में वाद्यों के राजस्थान में प्रचलन पर ही मुख्य ध्यान रखा गया है। उनके ऐतिहासिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को केवल पृष्ठ-भूमि के रूप में स्वीकृत किया गया है।]

घोरालिया

घोरालिया बांस की पांच-छह अंगुल की पतली खपच्ची का वाद्य है। इस खपच्ची को इस प्रकार छीला जाता है कि बीच का एक बहुत पतला अंश रींड की तरह निकल जाय। इस रींड के मुंह पर एक धागा बांध दिया जाता है।

घोरालियो को बीच दांतों में दबाकर होठों को ठीक मोरचंग की तरह बंद कर लिया जाता है। फिर फूंक देने और फूंक लेने के क्रम से रीड को ध्वनि दी जाती है। मोरचंग में लोहे के मुड़े हुए हिस्से को आघातित किया जाता है किन्तु घोरालिये में बंधी हुई रस्सी को ढील या तनाव देकर लयपूर्ण ध्वनि उत्पन्न की जाती है। इस वाद्य को बनाने के लिए किसी निश्चित कारीगर की जरूरत नहीं होती। थोड़ी सी चिन्ता से कार्य करते हुए आसानी से यह वाद्य बना लिया जा सकता है।

राजस्थान में घोरालिया वाद्य मुझे मुख्यतया कालबेलिया जाति में प्राप्त हुआ। यह सांपों को पालने वाली जाति है और नृत्य व संगीत की दृष्टि से अत्यंत उन्नत है। इसी जाति

में पुंगी , खंजरी , चंग , डमरू जैसे अन्य वाद्य भी अत्यंत विशिष्टता के साथ बजाये जाते हैं। घोरालिये को ये एक खेल का ही वाद्य मानते हैं। डमरू, पुंगी आदि के साथ भी इसका वादन किया करते हैं। इस जाति के लोगों को पूछने पर ही पता चल सकता है कि उनके पास घोरालिया है या नहीं। उसे यों सामान्यतया अन्य वाद्यों की तरह बजाया नहीं करते। इनका खयाल है कि घोरालिया तो हम यों ही अपने मनोरंजन के लिए बजाते हैं। उसमें ऐसा कोई संगीत भी नहीं है कि उसे सुना जाय। इस दृष्टि से कुछ प्रयत्न करने के बाद ही हमको घोरालिया देखने को मिल सकता है।

घोरालिये एव मोरचंग की ध्वनि में एकदम अन्तर है। मोरचंग की रीड लोहे की होती है और उसमें अन्तरंग तनाव व स्प्रिंग भी अधिक होती है अतः उसके लय-पेटर्न्स में सूक्ष्मता और अधिक स्पष्टता प्राप्त हो सकती है। किंतु लोहे का बना होने के कारण मोरचंग ऊंचे स्वर या श्रुति को व्यक्त करने में अधिक सफल सिद्ध हो जाता है। इसके विपरीत घोरालिये की ध्वनि अत्यंत नीचे स्वरों में अवस्थित रहती है। इस वाद्य से उत्पन्न स्वर में अधिक गंभीरता और काफी समय तक अनुरणित होने वाला रव प्राप्त होता है। मोरचंग की रीड में चंचलता और गति का आभास मिलता है किन्तु घोरालिये में घोष की गंभीरता और स्वर के आम की गंभीरता प्राप्त होती है। मोरचंग में द्रुत लय के पेटर्न्स भी सफलतापूर्वक बजाये जा सकते हैं। किंतु घोरालिये में यह संभावना उतनी नहीं है।

घोरालिये के साथ एक महत्वपूर्ण बात यह भी जुड़ी हुई है कि इसे मुख्यतया कालबेलिया स्त्रियां ही बजाती हैं। इस जाति के पुरुष वर्ग का मानना भी यही है कि घोरालिया जैसा सादा वाद्य औरतों के बस का है और वे आसानी से बजा सकती हैं।

हिन्दी भाषा के माध्यम से यह लेख लिखा गया है इसलिये ' घोराळिया ' शब्द के सही रूप के बारे में लिख देना आवश्यक है। इसका सही उच्चरित नाम ' घोराळियौ ' है। हिन्दी में 'ळ' ध्वनि [मूर्धन्य ल] नहीं है। हिन्दी पाठक इसे मराठी 'ळ' के उच्चारण द्वारा पहिचान सकते हैं। 'घोराळियौ' एक वचन है और घोराळिया उसका बहु वचन। अतः शाब्दिक अथवा वाद्य का भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन करते समय उसके सही उच्चारण का अनुमान होना आवश्यक हो जायेगा। यह वाद्य एकाकी अथवा कुछ अन्य लय वाद्यों की संगत में भी बजाया जाता है।

ज्यूज हार्प , मोरसिंग एवं मोरचंग के विभिन्न स्थलों पर विवरण पढने को मिलते हैं। किंतु सभी जगह यही उल्लेख होता है कि मोरचंग अब लोहे से निर्मित एक वाद्य है। इतिहास के किसी कालक्रम में अवश्य यह बांस का रहा होगा। आज के किसी ऐसे वाद्य का उल्लेख

नहीं मिलता जो बांस का हो और उसका वादन-विधान मोरचंग जैसा हो। अतः इन दोनों प्रकार के वाद्यों को एकदम भिन्न मानना उचित होगा।

संगीत के वाद्यों के अध्ययन में निरंतर इस तथ्य पर ध्यान रखना आवश्यक है कि उसके निर्माण में कौनसी चीजों का प्रयोग हुआ है। निर्माण की वस्तु में परिवर्तन के परिणाम-स्वरूप उसके ध्वन्यात्मक रूप में एकदम फर्क उपस्थित हो जायेगा। और बहुत संभव है कि वस्तु-परिवर्तन के कारण दो स्वतंत्र वाद्य चाहे अस्तित्व में आ जांय — वे एक नहीं हो सकेंगे। मोरचंग एवं घोरालिये को भी इसी रूप में दो पृथक वाद्य मानना उचित होगा।

यह स्पष्ट है कि मोरचंग और घोरालिये का वादन फूंक से होता है। इस वाद्य में लय के अनेकानेक पेटर्न्स व्यक्त करने की क्षमता तो है ही किन्तु साथ ही कुछ श्रुत्यात्मक एवं स्वरात्मक अन्तर लाने की क्षमता भी है। इस प्रकार यह समस्या भी कम महत्वपूर्ण नहीं रहती कि इन वाद्यों को घन-वाद्यों में रखना चाहिये या नहीं। इन्हें सुषिर वाद्य में क्यों नहीं माना जाय? विशेषकर जब वाद्य के साथ अनुनादक के रूप में पूरे मुंह का उपयोग होने लगता है। किन्तु सभी विद्वानों ने इस वाद्य को घन वाद्यों [Autophonic] में ही रखा है। उसका एक ही सहज कारण समझ में आता है कि इन वाद्यों की निर्मिति के समय में ही जो सांगीतिक क्षमता बन जाती है — वही वादन तक कायम रहती है। यह घन वाद्यों का एक प्रमुख तत्व है। इसी आधार पर मैंने भी मोरचंग एवं घोरालिये को घन-वाद्यों के साथ ही लिया है।

मोरचंग

लोहे के गोलाकार ढांचे से निकलती हुई दो छड़ों के बीच में एक पतली लोहे की ही रीड का बना हुआ, यह छोटा-सा वाद्य अद्भुत सांगीतिक सौन्दर्य एवं अनुभव प्रदान करता है। इस वाद्य को राजस्थान में मोरचंग के नाम से पहिचाना जाता है।

मोरचंग का रूप केवल राजस्थान में ही मिलता है सो बात नहीं है। दक्षिण भारत में इसका प्रचुर प्रयोग एवं उपयोग हो रहा है। वहां इस वाद्य को मोरसिंग [Moresing] कहा जाता है। इस वाद्य की बनावट और वादन का तरीका ठीक राजस्थान के मोरचंग के समान ही है। प्रो. सांबमूर्ति ने अपनी अंग्रेजी पुस्तक 'लय-वाद्य' में मोरसिंग के विषय में

लिखा है :

"एक योग्य वादक इस वाद्य पर जाति-स्वर संयोग को सही रूप में बजा लेता है। मोरसिंग का मृदंगम् के साथ वादन किया जाय तो अत्यंत मनोहर एवं आनन्ददायक प्रभाव अनुभव होता है। यह वाद्य अपनी बनावट के रूप में विभिन्न श्रुतियों पर ही निर्मित प्राप्त होता है। वृंद-वादन या गायन के साथ प्रयोग करने की दृष्टि से गायक को वांछित श्रुति का मोरसिंग प्राप्त करना पड़ता है। श्रुति के सही मिलान के लिए कभी कभी जिला पर मोम लगाकर, उसे भारी भी बना लिया जाता है।"

प्रो. सांबमूर्ति के उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि मोरसिंग एक सामान्य लोक वाद्य की कोटि से ऊपर उठकर शास्त्रीय अथवा उन्नत संगीत का भाग भी बन चुका है। राजस्थान में मोरचंग का प्रयोग अपने निपट रूप से केवल लोक सांगीतिक अस्तित्व में ही प्राप्त होता है।

मोरचंग लोहे की गोलाकृत आकृति से दो छड़ों के लंबे निकालने से बनता है और छड़ों के ठीक बीच में एक पतले लोहे की रीड होती है। इस रीड को छड़ों के मुंह पर मुड़ाव दे दिया जाता है। गोलाकृत भाग को बांये हाथ में पकड़ा जाता है और लंबी निकली हुई छड़ों को दांतों के बीच में पकड़ लिया जाता है। होठों की आकृति ऐसी बनाली जाती है जिससे वायु का संचरण केवल रीड के मार्ग से ही हो। इस स्थिति में संपूर्ण मुंह अनुनादक [रेजोनेटर] का स्वरूप ग्रहण कर लेता है।

वादन की इस स्थिति में वाद्य को जमा लेने के बाद फूंक के द्वारा रीड को ध्वन्यात्मक तरंगों के लिए आघातित किया जाता है। अर्थात् गले से फूंक को सहज बल के साथ बाहर फेंका जाता है। इससे रीड तरंगायित होकर ध्वनि देने लगती है। जब यह ध्वनि बनने लगती है तो दाहिने हाथ की तर्जनी अंगुली द्वारा रीड से आगे निकले हुए मुड़ाव को लयात्मक रूप से आघातित किया जाता है। इस प्रक्रिया के कारण एक सुन्दर-ध्वनि प्रधान लय-पेटर्न का सृजन होने लगता है। निश्चय है कि इस छोटे से वाद्य का नाद बहुत सीमित होता है।

मुझे महसूस हुआ कि मोरचंग के वादन में फूंक को केवल बाहर फेंकना ही महत्वपूर्ण नहीं है। वस्तुत: बराबर फूंक बाहर ही बाहर फेंकी जाय, मनुष्य के लिए शारीरिक रूप से यह संभव भी नही है। इस स्थिति में हवा को अन्दर खेंचने की प्रक्रिया भी महत्वपूर्ण बन जाती है। इस खिंचाव के कारण भी मोरचंग की रीड में ध्वनि का संचरण होता है किन्तु उसका ध्वनि-धर्म बदल जाता है और परिणाम स्वरूप नवीन ध्वन्यात्मक पेटर्न बनने की क्षमता भी बढ़ जाती है।

राजस्थान में इस वाद्य का प्रचुर प्रयोग रेगिस्तानी इलाकों में है। इस क्षेत्र की विभिन्न पेशेवर गायक जातियों के लोग एवं चरवाहा जीवन को व्यतीत करने वाले सामान्य व्यक्ति मोरचंग को अत्यंत सुन्दरता के साथ बजाते हैं। मोरचंग स्वतंत्र रूप से एक व्यक्ति द्वारा भी बजाया जाता है और अनेक बार बीस-बीस या उससे अधिक लोग भी सामूहिक वादन करते हैं। इस सामूहिक वादन में मोरचंग का रव निश्चित ही बढ़ जाता है। जैसलमेर-बाड़मेर क्षेत्र की गायक जातियां इस वाद्य को कुछ उन्नत सांगीतिक रूपों में भी प्रयुक्त करती हैं। सतारा नामक सुषिर वाद्य एवं सारंगी जैसे तार वाद्य के साथ भी मोरचंग की लयानुवृत्ति से संगत की जाती है।

अपने वाद्य रूप में मोरचंग विश्व के अनेक भागों में आदिम संस्कृति के साथ जुड़ा हुआ है। योरोपीय देशों में इसे ज्यूज हार्प [Jew's Harp] कहा गया है। इस नाम-करण से ऐसा अनुमान होता है कि ज्यू संस्कृति से संभवतया इसका संबंध है। किन्तु यूरोपीय संगीत विद्वानों का कहना है कि यह वाद्य मात्र 'ज्यू' संस्कृति से संबंधित नहीं हो सकता। एक विद्वान का मानना है कि ज्यूज वस्तुतः जॉ [Jaw] का अपभ्रष्ट रूप है। जॉ का अर्थ जबाड़ा होता है जिसके सहारे कि यह वाद्य बजाया जाता है। किन्तु नामकरण के इस विवरण को भी पूर्णतया नहीं माना जाता। इसी प्रकार इस वाद्य को हार्प [Harp] अर्थात् नखी से बजाये जाने वाले ततवाद्यों के समकक्ष भी नहीं रखा जा सकता। इस संबंध में विद्वानों का मत है कि हार्प से कहीं अधिक सस्ता होने के कारण इसे शायद हार्प के नाम से ही जान लिया गया हो। विलियम गाल्पिन अमरीका के एक महत्वपूर्ण विद्वान हैं और उनका मन्तव्य है कि यूरोप में यह वाद्य संभवतया ज्यू व्यापारियों के साथ पहुंचा हो। वे जबड़े के अपभ्रंश को स्वीकार नहीं करते। इस वाद्य का विपुल उपयोग दक्षिण पूर्वी एशिया, मलेशिया, पोलिनेशिया, साइबेरिया एवं उत्तरी यूरोप में मुख्य-तया पाया जाता है। यूरोपीय संगीत के इतिहास-कारों का मत है कि बारहवीं शताब्दी के बाद ही इस वाद्य को लौह रूप प्राप्त हुआ। उसके पूर्व ज्यूज हार्प बांस का बना होता था। राजस्थान में मोरचंग के वर्तमान प्रयोग तक ही मैं वर्णन सीमित करना चाहता हूं क्योंकि इसके ऐतिहासिक पक्ष पर अभी पूर्ण रूप से कोई विचार नहीं बन पाया है।

'ज्यूज हार्प' के नामकरण के साथ यदि मोरचंग या मोरसिंग को भाषा वैज्ञानिक रूप से देखना चाहें तो वस्तुतः मुंह से बजाने का अर्थ ही महत्वपूर्ण ज्ञात होता है। राजस्थान के अवनद्ध वाद्यों में 'चंग' एक अत्यंत महत्वपूर्ण वाद्य है और उसका प्रयोग भी लय-पटर्न्स के लिए ही किया जाता है। आघात एवं लय ध्वनि की समानता के कारण चंग नामकरण

संभवतया गलत भी नहीं है।

अनेक देशों में यह वाद्य बालकों के खिलौनों के रूप तक पहुंच गया है। राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में भी इस वाद्य को एक खिलौना या आमोद-प्रमोद का साधन ही माना जाता है। इस दृष्टि से देखने पर यही निर्णय निकलता है कि यह वाद्य रूप एक ओर वस्तुतः अत्यंत प्राचीन आदिम संस्कृति से चला आ रहा है और दूसरी ओर इसका विश्वजनीन प्रसार इस बात का द्योतक है कि मानव वंश के ऐतिहासिक काल क्रम में यह निरंतर फैलता ही गया। कर्ट सावस का यह सिद्धान्त निश्चय ही महत्व पूर्ण लगता है कि जो सांगीतिक वाद्य जितने ही फैले हुए विश्व के ओर-छोर को छूता है—वह उतना ही पुराना और आदिम है। उनका यह कहना भी महत्वपूर्ण है कि आदिम या सहज वाद्य धीरे धीरे बालकों के खिलौने के रूप में अपना अस्तित्व बनाये रखते हैं। मोरचंग वस्तुतः संगीत वाद्यों के ऐतिहासिक अध्ययन की एक महत्व-पूर्ण कड़ी सिद्ध हो सकता है!

मैंने यह जानने का प्रयास भी किया है कि राजस्थान में कौन लोग इस वाद्य का निर्माण करते हैं। पता लगा कि सामान्यतया गाडोलिया लुहार ही इस वाद्य को बनाया करते हैं। यह जाति खानाबदोश है और राजस्थान के दूर दूर गांवों में लुहारी का काम करते हुए घूमती रहती है। यह जाति बीसवीं शताब्दी तक पहुंचते हुए भी स्थिर एवं स्थायी रूप से नहीं रहने लगी है। निश्चय है कि मोरचंग का प्रचार-प्रसार इस जाति की यात्राओं के साथ भी होता रहा और चरवाहा जीवन को अंगीकृत किये हुए लोग अपने एकाकी क्षणों को इस सहज वाद्य से आनंदित करते रहे।

शोध-पत्रिका

सम्पादक : डॉ. देवीलाल पालीवाल

यह त्रैमासिक पत्रिका सन् १९४७ से निरन्तर साहित्यिक ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक क्षेत्र में अनुसंधान का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। अद्यावधि इस में अनेक महत्वपूर्ण शोध-निबंध, ताम्र-पत्र, प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ तथा अन्य प्रकार की मूल्यवान् शोध-सामग्री प्रकाशित हुई है।

एक प्रति : तीन रुपये
वार्षिक : दस रुपये

सम्पर्क :

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ,
[उदयपुर राजस्थान]

लोक साहित्य

सम्पादक : डॉ. रामप्रसाद दाधीच

लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन और शोध की हिन्दी में महत्वपूर्ण पत्रिका

वार्षिक शुल्क ८ रुपये
अध्यापकों एवं छात्रों के लिए ६ रुपये

सम्पर्क :

लोक साहित्य केन्द्र, सरदारपुरा
१ ए, जोधपुर [राजस्थान]

हिन्दी नवलेखन की सशक्त मासिकी

लहर

सम्पादक : प्रकाश जैन, मनमोहिनी

नियमित हिन्दी पाठकों के समक्ष कहानियों, कविताओं के अतिरिक्त समसामयिक घटनाओं–समस्याओं पर विचारयुक्त सामग्री प्रस्तुत करती रही है जिसके विशेषांक स्थायी महत्व के रहे हैं

एक प्रति : एक रुपया
वार्षिक : दस रुपया

सम्पर्क :

महात्मा गांधी मार्ग,
पो. बॉ. ८२, अजमेर

अभिनव विचारों का साहित्यिक मासिक

वातायन

साहित्यिक मासिक

प्रति माह
सृजन के सभी पक्ष आप पढ़ेंगे.
समसामयिक साहित्यिक समस्याओं पर गंभीर चिन्तन प्रधान निबन्ध.
साहित्येत्तर समस्याओं पर लेख.
पुस्तकों की सम्यक समालोचना.
एवं अन्य स्थायी स्तम्भ.

एक प्रति : एक रुपया पचीस पैसे
वार्षिक : बारह रुपये

सम्पर्क :

५, डागा बिल्डिंग
बीकानेर [राजस्थान]

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

शोध, सन्दर्भ एवं दुर्लभ्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों का
राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के अंतर्गत प्रकाशन

प्रकाशित ग्रंथों की सूची

संस्कृत - प्राकृत

प्रकाशन का नाम	सम्पादक	मूल्य : रुपये
दशकण्ठवधम्	श्री गंगाधर द्विवेदी	४-००
श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्र	श्री गोपालनारायण बहुरा	३-७५
रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ - संग्रह	पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य	६-२५
स्वयम्भूछंद	प्रो. एच. डी. वेलणकर	७-७५
वृत्तजातिसमुच्चय	,, ,, ,,	५-२५
कविदर्पण	,, ,, ,,	६-००
वृत्तमुक्तावली	स्व. पं. श्री मथुरानाथ भट्ट	३-७५
कर्णामृतप्रपा	पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य	२-२५
पदार्थरत्नमंजूषा	पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य प्रस्तावना — श्रीदलसुख मालवणिया	३-७५
त्रिपुराभारती लघुस्तव	पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य	३-२५
प्राकृतानन्द	,, ,, ,, ,,	४-२५
इंद्रप्रस्थ प्रबन्ध	डॉ. दशरथ शर्मा	२-२५
एकाक्षर नाम कोश संग्रह	पन्यासप्रवर मुनि रमणीकविजय	६-००
वासवदत्ता कथा	जे. एम. शुक्ल	४-५०
वृत्तमौक्तिक	म. विनयसागर	१८-२५
चांद्रव्याकरण	प. वेचरदास दोशी	७-००

पुस्तक विक्रेताओं को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है

[राजस्थान सरकार द्वारा प्रसारित]

सार्वजनिक संपर्क कार्यालय द्वारा प्रसारित — स. । विज्ञा. । डी । ६८ । ८ । ६६–८३ बी.

डाक पंजियिक संख्या जे. ५६४



अन्तर्राष्ट्रीय लोक कथा साहित्य
की अभूतपूर्व परम्परा में

बातां री फुलवाड़ी

कुल बीस भागों में प्रकाशित करने की योजना

नौ वृहत भाग प्रकाशित
प्रति भाग का मूल्य पन्द्रह रुपये

रूपायन संस्थान



अक्टूबर , नवम्बर
१९६८

चित्र सज्जा	शान्ति गोस्वामी
मुद्रक	रूपायन प्रेस
प्रकाशक	रूपायन संस्थान, बोरुन्दा
	बरास्ता — पीपाड़ [जोधपुर]
मूल्य	एक प्रति १ रुपया
	वार्षिक १२ रुपया

कथा , गीत , गाथा , कहावत , मुहावरा ,
मंध , दे-देवीवता , त्योहार, नाट्य , चित्र ,
मूर्ति आदि लोकात्मक कलाओं का मासिक पत्र

लोकसंस्कृति

वर्ष ८ अंक ४

राजस्थानी लोक साहित्य

संपादक

कोमल कोठारी , विजयदान देथा



१

लोक समीक्षण

लोक का अर्थ– वैसे तो सदा से लोक शब्द के बहुत से अर्थ प्रायः मिलते ही हैं– जैसे विश्व, भुवन , स्वर्ग, पृथ्वी , पाताल , विश्व का एक भाग , संसार , भूभाग, लोग , समाज , प्रजा , जनता , समूह , मानवजाति , यश , दिशा , ब्रह्मा , विष्णु, महेश , प्राणी आदि । पर विशेषतः दो अर्थ अधिक प्रचलित हैं । एक है : जिससे लोक परलोक और तीन लोक का ज्ञान होता है [मेरे विषय प्रसंग में यह अर्थ अभिप्रेत नहीं है] दूसरा अर्थ है : प्रजा , जनता , जनसमुदाय । इसी दूसरे शब्दार्थ का वाचक लोक शब्द साहित्यालंकार है । प्राचीन भाषा में लोकायत दर्शन हमारी उक्त बात की पुष्टि करता है–लोकेषुआयतः लोकायत् । अतः कहना पड़ता है कि लोक , मानवजाति का वह एक समूह है जो ग्रामीण - संस्कार , अनुन्नत सभ्यता , निरक्षर, किन्तु संस्कारों से मंडित, तथाकथित शिक्षा - अनभिज्ञ और साथ ही साथ सवर्ण सभ्यता के घमंड से बहुत दूर है तथा प्राचीन परम्परा की अटूट धारा में अखंड किलोलें करता रहता है । उसकी वाणी में रस है , अनिवर्चनीय सुख है और उसकी सहृदयता पर सुनहली छाप है ।

नागरिक संस्कृति और सुव्यवस्थित शिक्षा-नियमों के नजदीक न जाकर जो निरक्षर भट्टाचार्य कहलाता है और ऐसा ही तथाकथित गंवार तथा ग्रामीण अंगूठाछाप मानव-समूह ही हमारा लोक है । पंडित हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में लोक शब्द का अर्थ नगरों और ग्रामों में फैला हुआ समूचा लोक समुदाय है । इसलिए हमारा यह लोक , शिक्षा सीमाओं से बाहर , सभ्य जनों में उपेक्षित और आदिवासी जातियों में सर्वप्रथम गिना जाने वाला जन - समूह ही लोक कहलाता है ।

आजकल लोक शब्द के अनेक अर्थ समझे और किये जाते हैं । कुछ विद्वान लोक से अर्थ, मानव के उस प्रकार के तबके से लगाते हैं जो सभ्यता के प्रभाव से कम प्रभावित हुआ हो और जिसकी वृत्तियां मौलिक रूप से आदिम और अपरि-

मार्जित हो। इस प्रकार के मानव बहुधा या तो आदिवासी समझे जाते हैं या वे लोग जिन्हें जंगली या गंवार कहा जा सकता है। अन्य विद्वान, लोक का अर्थ उस प्रकार के मानव से लगाते हैं, जो गांवों में निवास करता है और जिस पर बाहरी और आधुनिक सभ्यता का प्रभाव नहीं के बराबर है। यह मानव आदिम मानव से इस दृष्टि से भिन्न होता है कि गांवों में रहते हुए भी उसकी वृत्तियां आदिम नहीं होती। उस पर भी धर्म, समाज और संस्कृति के संस्कार विद्यमान रहते हैं और अपने आचार - विचार, रहन - सहन, पहनाव, खान - पान आदि में ग्रामीण रहते हुए भी उस पर मानवीय विकास के लक्षण परिलक्षित होते हैं। कुछ लोग लोक शब्द का अर्थ जनसाधारण से लगाते हैं। चाहे वह गांव का रहने वाला हो, चाहे शहर का, विशेषता इतनी ही होती है कि वह शिक्षा - दीक्षा, पहनाव, आचार-विचार, संस्कार, व्यवहार में उस देश की प्रतिनिधि संस्कृति का प्रतीक हो और देश के जनसाधारण की वृत्तियों का मूर्त रूप हो।

लोक की भारतीय व्युत्पत्ति एवं व्याख्या — लोक की वास्तविक व्युत्पत्ति एवं व्याख्या हमारी विभिन्न संस्कृतियों के द्वारा प्राप्त होती आई है। प्राचीन मानवों की विगत संस्कृति के मूल तत्वों में लोक शब्द की अर्थोत्पत्ति मिलती है। कभी कभी दो संस्कृतियों के संघर्ष में किसी अन्य अर्थ के संकेत तैयार हो जाया करते हैं। वैसे भारत में भी आर्यों के आने पर अनार्य जाति का एक अपरिचित संस्कृति के साथ संघर्ष हुआ। फलस्वरूप वेद और वेदेतर स्थितियों एवं सांस्कृतिक तथ्यों का प्रचलन स्वाभाविक रूप में हो गया।

अतः एक दूसरे अर्थ ने फिर जन्म लिया और वेद के विपक्ष में लोक [वेदेतर] शब्द चल पड़ा। लोक और वेद की दो पृथक परिपाटियां हो गईं। अतोऽस्मि लोके-वेदेच प्रथितः पुरुषोत्तमः [१] के द्वारा लोकशास्त्र एवं लौकिक आचारों की विशेषता सदा से मान्य रही है। महाभारत में लोक वेद विधि में विरोध को बतलाने वाले कतिपय अंश मिलते हैं — वेदाच्च वैदिकाः शब्दाः सिद्धालोकाच्च लौकिकाः।

इन वाक्यों से यह मालूम होता है कि जो तथ्य स्पष्ट नहीं है, वह लोक में है अथवा वेद में है उसके सिवाय भी लोक में हो तो, वह लौकिक है। अतः प्राचीन ग्रन्थों में वेद और वेदेतर स्थिति प्रकट है। वेद की पूजा के साथ लोक की स्वतंत्र महत्ता भी भिन्नता के कारण क्रमशः मानी गई है। यह लोक और वेद का भेद हमारे भारतीय साहित्य की परंपरा से ज्ञात होता है। ईर्ष्या और अनादर के लिए नहीं। बौद्ध धर्म की मान्यता के साथ राजा, प्रजा में लोक मानव मात्र के मनोभावों से विभूषित हुआ हैं। ब्राह्मण धर्म के ह्रास के साथ संस्कृत भाषा का महत्व घटा और लोक प्रचलित भाषाओं को प्रश्रय मिला। महावीर,

---

१ — गीता।

गौतम बुद्ध और उनकी परम्परा के अनेक साधुओं ने अपने व्याख्यान एवं ग्रंथों में जनसाधारण की भाषा का प्रयोग करके लोक का मान बढ़ाया है। लोकजत्ता, लोकअप्पवाय आदि शब्द प्राकृत एवं अपभ्रंश में लौकिक नियमों की पूर्ण महत्ता प्रकट करते हैं। प्रसिद्ध संत कबीर ने भी सद्गुरू के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए लोक शब्द का प्रयोग किया है – 'जब मैं अज्ञानवश लोक व वेद का सहारा लेकर, सर्वसाधारण के पीछे लगा चला जा रहा था कि मार्ग में सद्गुरू मिल गये और उन्होंने मेरे हाथ में दीपक थमा दिया।'

परन्तु उस सीमित एवं बाह्य संस्कृति वाले लोक से आज के लोक शब्द का अर्थ और भी श्रेष्ठ तथा आदर्श हो गया है। इससे वैदिक-अवैदिक वर्गों का भ्रम भी समाप्त हो गया है। हम जनता का महत्व, जनार्दन के रूप में मानते हैं। इसका अर्थ तो राष्ट्र, संस्कृति एवं धर्म का प्राण बन गया है। इस तरह के आशयों की महिमा धर्मशास्त्रों, पुराणों, वेदों तथा वेदांगों में बहुत कुछ मिलती है। वेदों की बात पुराणों में और पुराणों की लोक में प्रचलित है। तभी लोके वेदेच भारतीय संस्कृति का मूल दृष्टिकोण बन सकता है। डॉ. वासुदेव शरण के विचार में इस संस्कृति के देवरथ का एक पहिया वेद में और दूसरा लोक में है।

ऋग्वेद में भी लोक [समाज] की एक महान कल्पना है। उसे पुरुष रूप ईश्वर कहा है – सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्[1] [वह सहस्रों मुख, सहस्रों नेत्र युक्त है और सहस्रों पद युक्त है] इसकी संकल्प शक्ति बड़ी तेज है। यह व्यापार - व्यवसाय, कला - कौशल, कृषि-उद्योग, शस्त्रानुसंधान और व्यवहार कुशलता आदि कार्यों में प्राणी मात्र का सखा एवं सफल संपादक बना रहा है। अपने दीर्घ जीवन के आरोग्य मार्गों का यह मुद्रितागार है। 'वहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोकः'।[2] [यह लोक अनेक रूपों में परिव्याप्त है] पृथ्वी के सर्व भागों पर फैले हुए सब तरह के मनुष्यों से परिपूर्ण है।

'लोक' लोक का हृदय है। यह निस्सार वाचालता नहीं ठोस गंभीरता लिये हुए है। इसके पास कपट नहीं, करुणा है। इसकी वाग्धारा उज्ज्वल एवं निर्मल है। यह वेदेतर संस्कृति के लोक की धारणा के अन्तर्निहित अर्थ के द्वारा बहुत महत्वपूर्ण स्थान को संभाले हुए है। साथ में अ-वैदिक भावना को भी वहन करता चलता है। यह परंपरा की गाड़ी का मजबूत पहिया, सहानुभूति, अनुभूति, संगम एवं स्नेहाभिव्यक्ति का पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचालक है। इसके पास अपने असंख्य सरस शब्द, ललित भाषा और लोकग्राही शैलियों का संग्रह है। यह घर के बड़े-बूढ़े की तरह जीवन की सर्व सामग्री को सम्मिलित रूप से प्रभावित करता है। इसकी गौरव-गरिमा नित्य एक जैसी गतिमान रहती है।

---

१ — १०।९०, यजु ३१। २ — जैमिनीय उपनिषद्

आज के लोक शब्द में साधारण जनता तथा संपूर्ण मानव समाज का अर्थ संकेतित है। यह शब्द पूर्व संस्कृति की उत्तम निधि के सहित वर्तमान शिष्टता एवं सभ्यता के मंगलप्रद अभ्युदय का सूचक है। इसका क्षेत्र बड़ा विस्तृत एवं व्यापक है। यह लोक भारतीय समाज की नागरिक तथा ग्रामीण दोनों अभिन्न संस्कृतियों में व्याप्त है। केवल ग्राम की परिधि में लोक को बांधना उचित नहीं, ग्राम और नगर का भेद तो इतिहास की पिछली कुछ ही सदियों में स्थापित हुआ है। अतः यही लोक नामक संज्ञा जन-समाज का उद्योगी एवं गतिशील अंग है। गति ही जीवन है, गति नहीं तो जीवन समाप्त है। इसलिए लोक साहित्य जीवन का साहित्य है। जीवन से अलग नहीं।

वर्तमान समय के साहित्य की प्रवृत्तियों में लोक शब्द का विशेषणगत प्रयोग कथा, वार्ता, गीत, संगीतादि की कलात्मक उपलब्धियों के साथ किया जाता है। मानव समाज की आदिम संग्रहीत भावनाएं, आदर्श और विश्वास संयुक्त हैं। इसमें भाषा और साहित्य का तत्व ही नही है, बल्कि मानव ज्ञान के अनेकानेक विषय पहाड़ी पत्थर की तरह सुन्दर, अनमोल एवं अनगढ़ ठोस रत्न की भांति सुरक्षित रखे मिलते हैं। इन्हीं मानदंडों के आधार पर नृ-वैज्ञानिकों व समाज शास्त्रवेत्ताओं ने साहित्य शब्द के पूर्व लोक को जोड़ा है।

लोक साहित्य मनुष्य-जीवन की एक चिरसंगी विशेषता है। यह सदियों से पुनीत गंगधार की तरह लोक उद्धारक के रूप में सवेग बहकर भी विद्वानों के निकट तुच्छ वस्तु बनी रही है, अब वह प्रत्यक्षदर्शी 'लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः'[1] जैसे सुवाक्यों सहित अध्येताओं के लिए नया मोड़ लेकर चली है। 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथ्विव्याः [यह भूमि माता है, मैं पृथ्वी का पुत्र हूं] अथर्ववेद का यह सूत्र आज विद्वद्जनों की आत्मा में लोक अपनत्व के प्रति प्रेरणा का उजास कर रहा है। उसकी स्निग्ध-ज्योत्स्ना चारों ओर फैल रही है। हमारा किसान इस सूक्त के तात्पर्य को पीढ़ियों से क्रियान्वित करता आया है। वही लोक का महाप्राण है और उसका जीवन सच्चा प्रतिनिधि ! अतः लोक साहित्य एक तीर्थग्राम है। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल के शब्दों में 'लोक' हमारे जीवन का महा समुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्नज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार है और निर्माण का नवीन रूप है। लोक पृथ्वी - मानव, इसी त्रिलोकी में

---

१ महाभारत उद्योग पर्व ४३। ३६

जीवन का कल्याणतम रूप है।

नृःतत्वशास्त्र, समाजविज्ञान, जातिविज्ञान एवं भाषा विषयक नवीन ज्ञान की प्रगति ने लोक भाषाओं की मौखिक निधि के प्रति सभी देशों को समान रूप से आकर्षित किया। लोक में प्रचलित मान्यताएं, रूढ़ियां, अंधविश्वास, परंपरा, धार्मिक आचार-विचार और विभिन्न भाषागत अभिव्यंजना लोगों के गले उतर कर हृदय में आई हैं।

'लोक' का अंग्रेजी प्रतिशब्द फोक [Folk] है। इस [Folk] शब्द को मध्ययुगीन अंग्रेजी में [Folc] कहा जाता था एवं यही एंग्लो-सेक्सन भाषा में [Volk] नाम से प्रचलित रहा। सामान्य-जन को एक शब्द में व्यक्त करने के लिए 'फोक' शब्द का प्रयोग किया गया। किन्तु जब जन-सामान्य की सांस्कृतिक धरोहर को शास्त्रीय रूपों से विभाजित करने का प्रश्न आया तो 'लोक' अथवा 'फोक' को परिभाषित करने का प्रयत्न भी प्रारंभ हुआ। अनेक बार 'फोक' का अर्थ गंवार, ग्रामीण [हीन अर्थ में] एवं मूढ़ के रूप में भी किया गया किन्तु यह अर्थत्व संकीर्ण मनोवृत्ति का ही परिचायक था। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में 'फोक' शब्द के अर्थ की सीमा-निर्धारित करते हुए कहा गया है कि किसी भी राष्ट्र की नगरेतर सांस्कृतिक धारा को लोक के अन्तर्गत स्वीकार करना होगा। ब्रिटेनिका का यह मत पाश्चात्य देशों के लिए चाहे सत्य हो, किन्तु भारत अथवा अन्य औद्योगिक रूप से कम विकसित देशों के लिए नगर व ग्राम का विभेद उतना बड़ा सत्य नहीं बन पाया है।

यद्यपि हम ग्राम या सामान्य जन को फोक कह सकते हैं। किन्तु ग्राम या जन के निम्न अर्थों का बोध कराकर फोक के महत्व में नहीं मिला सकते। जन शब्द बहुत पुराना एवं लोक प्रसिद्धि पूर्ग है। संस्कृत, प्राकृत, पाली और अपभ्रंश ग्रंथों में मानव समाज का ज्ञान सदेव जन शब्द से ही होता रहा है। इस ढंग से लोक और जन में निकटतम सम्बन्ध जान पड़ता है। इन दोनों में सप्राणत्व भी पर्याप्त रूप में है। परंपरा और प्रयोग की दृष्टि से आज के फोक का रूप सादृश्य लोक से ही अधिक खिलता है। वर्तमान स्थिति में 'जन' शब्द का प्रतिबिंब अधिकाधिक राजनीतिमय बन गया है और बनता जा रहा है। लोक का ठीक पर्याय होते हुए भी 'जन' शब्द के अर्थ संकेत में एक अवरोध आ गया है। अतः 'लोक' शब्द का प्रयोग ही समीचीन जान पड़ता है।

लोक - वार्ता का महत्व — पाश्चात्य विद्वानों ने असभ्य जातियों के साहित्य को टटोलने का कार्य उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से ही शुरू कर दिया था। उस समय लोक साहित्य के सम्बन्ध में बड़े विशद प्रयत्न चलने लगे थे। वेदों के अध्ययन ने तुलनात्मक धर्म, भाषा-विज्ञान और विशेषकर धर्म-गाथाओं का तुलनात्मक

अध्ययन का क्रम प्रारंभ किया था। पुरातन भारतीय वाङ्मय के कथासरित्सागर, पंचतंत्र , हितोपदेश , सिंहासन बत्तीसी , शुक बहोत्तरी आदि ग्रंथों तथा नीति कथा साहित्य का , दूसरे देशों की कथाओं से पारस्परिक सम्बन्ध निकालने की ओर मनीषी विद्वानों का ध्यान गया। नृतत्व शास्त्र, समाज शास्त्र, भाषा विज्ञान आदि विषयों के अन्वेषण एवं विकास के साथ लोक वार्ता का संग्रह-शोध आवश्यक कर्त्तव्य बन गया।

१९ वीं शताब्दी के मध्य से ही लोक वार्ता को एक स्वतंत्र विषय स्थापित करने का प्रश्न खड़ा हो गया था। १८५८ में विल्हेम हेरिचरी ने नृ-विज्ञान, समाज शास्त्र , जाति शास्त्र एवं लोकप्रिय प्राचीन वस्तुओं के अध्ययन को एक वैज्ञानिक स्वरूप देने का प्रयत्न किया। इसी क्रम में गोम्मे महोदय ने भी १९०८ में "फोक लोर इज़ अे हिस्टोरिकल साईंस" नामक पुस्तक में इसे अध्ययन का एक नवीन अनुशासन मानने का आग्रह किया। लोक वार्ता को स्वतंत्र विषय स्वीकार करने के बारे में जो तर्क थे , उनका इन विद्वानों ने मंडन किया और इस विषय के साथ अन्य सम-प्रवृत्ति के विषयों से पृथक करने का अतुलनीय प्रयास किया। यही कारण है कि बीसवीं शताब्दी के मध्य तक आते हुए अब निर्विवाद रूप से लोक वार्ता [फोक लोर] को एक स्वतंत्र अध्ययन का विषय एवं विश्वविद्यालयीय स्तर पर अध्ययन के योग्य अनुशासन मान लिया गया है।

लोकवार्ता वृत्त - लोक वार्ता , लोक परंपरा से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ सत्य है। जीवन की सारी आवश्यक सामग्री परंपरा से प्राप्त करते हुए अपने ही क्षेत्र में प्रवहमान होती है। लोक-वार्ता शरीर के सर्व अंग , लोक परंपरा-रूपी पदार्थ से पोषित एवं पुष्ट है। वह उसका मात्र सहायक तत्व ही नहीं , जीवनदाता एवं बुद्धि-विधाता भी है—लोकवार्ता लोक परंपरा की संपत्ति , खेती तथा वाटिका है , जो सदैव मौखिक या लिखित रूप में हरी भरी रहती है। पर प्रारम्भ में वह अवश्य मौखिक अथवा अलिखित ही उत्पन्न होती है। इसलिए जो भी वार्तें परंपरा से पाई जाती हैं वे ही लोक वार्ताएं हैं। लेकिन उनमें लोक मानस की अभिव्यक्ति का होना जरूरी है। यह लोक-मानस , समाज और उसके मनुष्यों को उत्तराधिकार में मिलता है। सर्व साधारण के रीति-रिवाज श्रृंखला की कड़ी की भांति जुड़कर चलते हैं और लोक वार्ता को बनाते हैं। परंपरा के सांस्कृतिक ढांचों में यह अवयवी रूप से जुड़ी हुई है। इन्हीं से श्रृंखला भाव प्रकट होता है। अतः परंपरा का महत्व प्रमुख है और वार्ता का गौण! आपस में दोनों एक दूसरे की पूरक है, विनाशक नहीं। डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है - "लोक वार्ता एक जीवित शास्त्र है , लोक का जितना जीवन है उतना ही लोकवार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन , जन की जन्मभूमि और भौतिक

जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति—इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है और लोक वार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है।"

लोक वार्ता एक विशेष अर्थ का वाचक शब्द है। इसको अंग्रेजी फोकलोर [Folklore] शब्द का पर्यायवाची मानना अनुचित नहीं है। जैसे फोक का हिन्दी पर्याय लोक शोभनीय जान पड़ता है, वैसे ही लोक वार्ता शब्द भी फोकलोर के लिए अधिक महान एवं विशद् भावों को वहन करता चलता है। यह शब्द लोक [फोक] और वार्ता [लोर] के संयोग से बना है। इसका अन्तिम शब्द लोर [Lore] एंग्लो-सेक्सन [Lar] की संतति है जिसका अर्थ होता है: सीख लेने वाला।

लोक वार्ता का विशदार्थ – लोक वार्ता शब्द एक विशद अर्थ रखता है। उसमें मानव का परंपरित रूप अपने चरित्र-धन के साथ चित्रित रहता है। उसके लोक-मानस स्रोतों में संस्कार या परिमार्जन की प्रेरणा काम करती है। धर्म-गाथाएं एवं कथाएं, लौकिक गाथाएं तथा कथाएं, लौकिक एवं धार्मिक विश्वास, कहावतें, पहेलियां आदि सभी लोक वार्ता के अंग हैं। इस के विशद अर्थ के सम्बन्ध में श्री कृष्णानन्द गुप्त का उद्धरण डा. सत्येन्द्र ने इस प्रकार अपने ग्रंथ में रखा है–लोक वार्ता को अंग्रेजी में फोकलोर कहते हैं अथवा यह कहिये कि फोकलोर के लिये हमने लोक वार्ता शब्द का प्रयोग किया है। फोकलोर का प्रचलित अर्थ है जनता का साहित्य, ग्रामीण कहानी आदि। परन्तु हम उसका अर्थ करते हैं जनता की वार्ता! जनता जो कुछ कहती और सुनती है अथवा उसके विषय में जो कुछ कहा और सुना जाता है वह सब लोक वार्ता है। जिस प्रकार प्रत्येक देश की अपनी एक भाषा होती है उसी प्रकार अपनी एक लोक वार्ता भी होती है। जनता के मानस में लोक वार्ता का जन्म होता है। अतएव किसी एक देश की लोक वार्ता को पूरा और विधिवत संग्रह किया जाये तो वहां के निवासियों की अतीत से लेकर अब तक की बौद्धिक, नैतिक, धार्मिक, एवं सामाजिक अवस्था का एक सम्पूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जायेगा।

लोक वार्ता से प्राप्य सारी सामग्री हमें मानव की उस अवस्था में मिलती है जो सभ्यता के नजदीक नहीं है। पुराने जमाने के उसके अवशेष शृंखला सूत्र वर्तमान समय तक चले आये हैं। अब वे सभ्य दुनिया की तरल विरल विस्तृत लहरों में भीगे पड़े हैं। गोम्मे महोदय ने लिखा है कि सभ्यता की तुलना में–लोक वार्ता यह स्थिति निर्देश करती है कि उसके निर्माण तत्व उस मानवीय भाव की अवस्था के अवशेष हैं जो उस अवस्था की अपेक्षा 'जिसमें वे आज मिलते हैं' अधिक पिछड़े हुए हैं और इसलिए अधिक प्राचीन हैं। मतलब

लोक वार्ता का विकास सभ्यता में दृष्टिगत नहीं रह पाता। सभ्यता के आगमन से लोक वार्ता के विकास में बाधा पहुंचती है। वह अपनी पुरानी परिस्थिति को रक्षित किये हुए सभ्य समाज के अन्तर्मन में प्रवहमान रहती है। इसीलिए लोक वार्ता की प्राप्त सामग्री के आधार पर हमें जातीय तत्व सुरक्षित मिलते हैं। विद्वानों ने इसको जातीय-विज्ञान का एक महत्वपूर्ण सहायक विषय माना है।

फोकलोर के लिए लोकावार्ता शब्द का प्रयोग — मराठी साहित्य के मर्मज्ञ श्री पोतदार ने फोकलोर के लिए 'लोक विद्या' शब्द को प्रयोग में लेने का आग्रह किया। श्री कर्वे ने भी लोक विद्या शब्द उचित ठहराया। श्री कालेलकर ने फोकलोर को अपने संकीर्ण अर्थ में 'लौकिक दन्त कथा' के नाम से अभिहित करने का प्रयत्न किया। मराठी के पारिभाषिक शब्द कोश ने फोकलोर के लिए जनश्रुति शब्द का भी प्रयोग किया है। इसी प्रकार संपूर्ण फोकलोर के लिए भूल से कभी कभी लोक साहित्य अथवा लोक वाङ्मय का प्रयोग भी किया गया है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा कि लोक संस्कृति, संभवतया एक उचित शब्द है। इसी प्रकार श्री भोलानाथ ने लोक शास्त्र, लोक प्रतिभा, लोक विज्ञान जैसी शब्दावली के प्रयोग पर बल दिया। इन सभी विषयगत विभिन्नताओं को आपने 'लोकायन' शब्द में समाहित करने का प्रयास किया। इसी लोकायन शब्द का समर्थन हमें डॉ. सुनीति कुमार चाटुर्ज्या से भी मिलता है। श्री चाटुर्ज्या महोदय कहते हैं कि परंपरागत जीवन यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक अनुष्ठानों, विश्वासों, विचारों तथा वाङ्मय से अपने लौकिक प्रकाश को प्राप्त करती है, उन्हें अंग्रेजी में फोकलोर कहते हैं। इस शब्द का भारतीय प्रतिशब्द हमने लोकायन इसीलिये बना लिया है।

लोक विद्या, लौकिक दन्त कथा, लोकायन, लोक साहित्य आदि आदि शब्दों से अंग्रेजी के फोकलोर शब्द में निहित ध्वनि का पूर्ण आभास नहीं मिलता। इसी दृष्टि से श्री वासुदेव शरण अग्रवाल एवं श्री कृष्णानंद गुप्त द्वारा स्वीकृति किये गये 'लोक वार्ता' शब्द को फोकलोर के व्याप्त अर्थ में स्वीकार किया जाना उचित लगता है। श्री श्याम परमार के शब्दों में लोकवार्ता शब्द हिन्दी में क्रमशः अपना शाब्दिक एवं पारिभाषिक स्थान निर्धारित कर चुका है।

फोकलोर शब्द के लिए हिन्दी में लोकवार्ता शब्द को स्वीकार करने में केवल एक ही दुविधा उत्पन्न होती है। जहां तक राजस्थानी भाषा का प्रश्न है वहां निर्विवाद रूप से 'वारता' का अर्थ कथा अथवा ऐतिहासिक, अर्ध-ऐतिहासिक आख्यान से लिया जाता है। किन्तु भारत की एक अन्य परंपरा में 'वार्ता' का विस्तृत अर्थ भी लिया गया है और उस रूप में चौरासी वैष्णवों की वार्ता, एवं बावन वैष्णवों की वार्ता प्रमुख हैं। यहां 'वार्ता' शब्द का मुख्य

अर्थ कथा या कहानी नहीं है। अपितु पुष्टिमार्गीय सिद्धान्तों, अनुभवों एवं साहित्यिक रूपों को व्यक्त करने के प्रकार को वार्ता कहा गया है। इन वार्ताओं का शैली-सौन्दर्य भी कथित अथवा मौखिक रूप में निहित है। यदि हम इन ग्रंथों की परंपरा पर वार्ता का संकीर्ण कथात्मक आरोपण करें तो ग्रंथों को नहीं समझ पायेंगे। अतः इसी साहित्यिक परंपरा में 'वार्ता' को 'लोर' के स्थान पर ग्रहण करना उचित होगा। अंग्रेजी शब्द लोर का अर्थ है — जिसे परंपरा के ज्ञान एवं अनुभव से सीखा जाय; समाज का संपूर्ण अचेतन रूप से प्राप्त ज्ञान; किसी विषय पर पूर्ण जानकारी और ठीक इन्हीं अर्थों में पुष्टिमार्गियों के ग्रंथों में 'वार्ता' शब्द का प्रयोग हुआ है। अतः वार्ता के संकीर्ण अर्थ को छोड़ कर, उसके व्यापक अर्थ को ही स्वीकार करना उचित होगा।

लोक वार्ता संकलन और विस्तार—जिस युग में लोक वार्ता संबंधी प्रयत्न आरंभ और विकसित हुए, वह विदेशों से भारत का घनिष्ट संपर्क बढने का भी युग था। संस्कृत का चमत्कारिक आविष्कार पाश्चात्य क्षेत्र के लिए हो चुका था और भारत में अंग्रेजों के प्रभुत्व की जड़ें जम चुकी थीं। इन्हीं पाश्चात्य विद्वानों ने पहिले भारत की लोक वार्ता पर दृष्टिपात किया। टॉड महोदय को सबसे पहले लोक वार्ता संग्राहकों में स्थान दिया जा सकता है। इन्होंने एनेल्स एन्ड ऐंटिक्विटीज ऑफ राजस्थान में राजस्थान के इतिहास की जितनी सामग्री एकत्रित की है, उतनी ही लोक वार्ता भी [१]। वस्तुतः टॉड ने जो सामग्री इतिहास रूप में दी है उसका आधार ऐतिहासिक आख्यान (लीजेंड्स) ही रहा है। यही कारण है कि उन्हें लोग वार्ता संग्राहक के रूप में भी स्वीकार कर लेते हैं। परन्तु लोक वार्ता को उदार और विस्तृत दृष्टि से देखने का श्रेय प्रथम दो ग्रिम बन्धुओं को है। ये जर्मन बंधु थे, जिन्होंने अपनी पुस्तकें किण्डर एन्ड हाउस मार्खे तथा तेउत्स्के माईथालोजी (१८६५) के नाम से निकाली थी। इन पुस्तकों के द्वारा लोक वार्ता संबंधी प्रयत्नों को वैज्ञानिक धरातल मिला और भारत में ऐसे प्रयोग भी होने लगे। अतः ग्रिम बन्धुओं का लोक वार्ता क्षेत्र में बड़ा महत्व है। इस विषय को वैज्ञानिक बताने वाले ये ही दो प्रथम व्यक्ति कहलाते हैं।

इन्हीं के प्रयत्नों के उपरान्त लोक वार्ता के अध्ययन की प्रवृत्ति बढ़ी है। लौकिक वार्ता के आधार पर वैदिक अध्ययन का वैज्ञानिक अनुसंधान होने लगा था। इस प्रकार का कार्य मैक्समूलर ने सबसे अधिक मात्रा में पूर्ण किया है।

पाश्चात्य विदुषी स्वर्गीय श्रीमती शार्लट सोफिया बर्न ने 'लोक वार्ता विस्तार' की एक वैज्ञानिक परिभाषा लिखी है। उसका उद्धरण डॉ. सत्येन्द्र के लिखे अनु-

---

१ - भारतीय लोक साहित्य : श्री श्याम परमार

सार इस प्रकार दिया जाता है—"यह एक जातिबोधक शब्द की भांति प्रतिष्ठित हो गया है जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियां, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के संबंध में, मानव स्वभाव तथा मनुष्य कृत पदार्थों के संबंध में भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उसके साथ मनुष्यों के संबंधों के विषय में जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु विषयक तथ्य, आदिम तथा असभ्य विश्वास इसमें आते हैं और साथ ही इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज, अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषय भी इसमें आजाते हैं। धर्म-गाथाएं, अवदान [लीजेंड], लोक कहानियां, साके [बैलेड], गीत, किंवदन्तियां, पहेलियां तथा लोरियां भी इसके विषय हैं। संक्षेप में लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तुएं आ सकती हैं, वे सभी इसके क्षेत्र में हैं। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोक वार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है किन्तु वे उपचार तथा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को, भूमि जोतने के काम में लेने के समय करता है। जाल अथवा वंशी की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके हैं जो मछुआ समुद्र पर करता है। पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि है जो उसके बनाते समय दी जाती है और उसको उपयोग में लाने वाले के विश्वास..." लोक वार्ता वस्तुतः आदिम मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषधि के क्षेत्र में हुई हो, चाहे सामाजिक संगठन तथा अनुष्ठानों में अथवा विशेषतः इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश में[१]।

लोक साहित्य लोक वार्ता का एक महत्वपूर्ण अंग है। यह साहित्य मौखिक होता है। अतः कई लोग इसे साहित्य न कहकर वाङ्मय शब्द की उपयुक्तता प्रस्तुत करते है। ज्ञानेश्वरी की टीका में महाराष्ट्र के स्वर्गीय श्री वि. का. राजवाड़े ने इसे साहित्य को अपेक्षा वाङ्मय संज्ञा देते हुए लोक के साथ प्रयुक्त किया है। उनका कहना था कि प्रान्तीय, जातीय और क्षेत्रीय लोक कथाएं, दन्तकथाएं, गीत, पवाड़े, लावनियां, कहावतें आदि वाङ्मय की सही सही खोज होना अभी शेष है।

लोक साहित्य का कभी कभी कतिपय सज्जन ग्राम साहित्य के अर्थ में भी प्रयोग कर लेते हैं। पर ग्राम और लोक में अन्तर है। ग्राम साहित्य में ग्रामीण सीमा है, किन्तु लोक साहित्य में ग्राम और नगर दोनों का साहित्य आता है।

---

१ - ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन : डॉ. सत्येन्द्र।

ग्राम के अनुसार या ग्राम पर लिखा हुआ वाङ्मय भी ग्राम साहित्य कहलायेगा। अतः ग्राम साहित्य और लोक साहित्य दो विधायें हैं। कई लोग, लोक साहित्य की जन साहित्य में अनुभूति करने लग जाते हैं। पर, लोक साहित्य जन साहित्य से भी भिन्न है। जन, लोक की अपेक्षा अधिक संगठित एवं चैतन्य सत्ताधारी है। वह राजनीतिक पृष्ठभूमि के साथ कर्तव्यशील होता है। जन साहित्य जन-कल्याण-भावी और जन को शिक्षा देने वाला होता है। किन्तु लोक साहित्य सरल, स्वाभाविक एवं स्वान्तःसुखाय भावों से युक्त होता है। जनपदीय साहित्य क्षेत्रीय विशेषता का सूचक है। वह लोक साहित्य की व्यापकता तक नहीं पहुंच सकता। वह [लो. सा.] भले ही किसी अनाम व्यक्ति के द्वारा रचा गया हो पर आज उसे सामान्य लोक समूह अपना ही कहता है। उसमें लोक मानस स्पष्ट दिखाई देता है। वह लोक की युग-युगीन वाणी साधना का भंडार है। मतलब लोक साहित्य वह मौखिक अभिव्यक्ति है जिसके किसी भी शब्द में रचना-चैतन्य नहीं मिलता। उसके स्वर, शब्द और लहजे पर लोक की छाप होती है। अन्य मान्यता के अनुसार मौखिक परंपरा पर पलने वाला कंठानुकंठ साहित्य है जिसके रचयिता का पता नहीं, तमाम लोक ही उनका समाधिकारी और प्रेरक है। इस तरह से अक्षरहीन लोगों के मनोरंजनार्थ काम आने वाले साहित्य को लोक साहित्य ही कहते हैं।

लोक वार्ता वह उर्वरा धरती है जो लोक साहित्य के लिए सदैव सिंचन-पुष्टि प्रदान करती है। उनके अनेक तथ्यों से समीपता स्वीकार करके ही लोक साहित्य अधिक निष्ठावान बनता है। पर हम लोक वार्ता के केवल मौखिक पक्ष को प्रधानता देकर उसके क्षेत्र को हरगिज संकुचित नहीं बनाना चाहते। इसमें जादू-मंत्र, लोक-विश्वास, रीति-रिवाज, मूढ़ाग्रह और लोक नृत्य, लोक चित्र व लोकमूर्तियां आदि भी आ जाते हैं जो अपने स्वरूप की प्रधानता रखते हैं। लोक वार्ता की यह अभिव्यक्तियां मिल जुलकर अपनी परंपरा को निभाये चलती हैं। अतः लोक कथा, लोक गीत, पहेलियां, कहावतें, लोक-विनोदादि के साथ अन्य अभिव्यक्तियां लोक वार्ता क्षेत्र की चीजें होने पर भी दूसरे दूसरे विज्ञानों के उपयोग की सामग्री, जुटाने योग्य सिद्ध हुई हैं।

लोक वार्ता में लोक मानस—लोक वार्ता में हम लोक मानस का स्वस्थ शुद्ध एवं आकर्षक रूप देखते हैं। वह और कहीं भी इतना सुरक्षित नहीं रह सका है। मानव की आदिम परिस्थिति से आज तक के विकास की विविध मनो-भूमियां लोक वार्ता द्वारा ही हमारे सम्मुख आती हैं। लोक वार्ता विज्ञान और लोक वार्ता वाङ्मय का शोध पूर्ण ज्ञान तथा अध्ययन एक हितप्रद कार्य माना जाने लगा है। नाना भांति की संस्कृतियों, सभ्यताओं एवं समाज निर्माण के

धरातलों का वास्तविक ज्ञान इसी विज्ञान के द्वारा पूरा हो सकता है। तभी वर्तमान समय में देश विदेशों में सभी जगह इस विज्ञान की धूम मची हुई है; मनन और अध्ययन की बाढ आ रही है जिसका कुछ विवरण हम इसी ग्रंथ में, लोक कला के संकलन की प्रवृत्तियों में, दे रहे हैं। इसकी तालिका बड़ी विस्तृत है। इस विषय पर डा. सत्येन्द्र ने सोफिया बर्न द्वारा नीचे उल्लिखित तीन प्रधान समूहों के विषय में लिखा है :अ. अविश्वास और आचरण अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—१. पृथ्वी और आकाश से २. वनस्पति जगत से ३. पशु जगत से ४. मानव से ५. मनुष्य निर्मित वस्तुओं से ६. आत्मा तथा दूसरे जीवन से ७. परामानवी व्यक्तियों से [जैसे देवताओं, देवियों तथा ऐसे ही अन्यों से] ८.शकुनों - अपशकुनों, भविष्य वाणियों, आकाश वाणियों से ९. जादू टोनों से १०. रोगों तथा ११. स्थानीय कला से।

ब. रीति-रिवाज— १. सामाजिक तथा राजनैतिक संस्थाएं २. व्यक्तिगत जीवन के अधिकार ३. व्यवसाय, धंधा तथा उद्योग ४. तिथियां, व्रत तथा त्योहार ५. खेलकूद तथा मनोरंजन।

स. कहानियां, गीत तथा कहावतें — १. कहानियां: अ. जो सच्ची मानकर कहीं जाती हैं। ब. जो मनोरंजन के लिए कही जाती है २. सभी प्रकार के गीत ३. कहावतें तथा पहेलियां ४. पद्यबद्ध कहावतें तथा स्थानीय कहावतें।

श्री श्याम परमार ने लोकवार्ता का वर्गीकरण इस प्रकार किया है। १. लोक गीत, लोक कथाएं, कहावतें, पहेलियां आदि। २. रीति - रिवाज त्योहार, पूजा, अनुष्ठान, व्रत आदि। ३. जादू टोना, टोटके, भूत प्रेत सम्बन्धी विश्वास आदि ४. लोक-नृत्य तथा नाट्य तथा आंकिक अभिव्यक्ति। ५. बालक-बालिकाओं के विभिन्न खेल, ग्रामीण एवं आदिवासियों के खेल आदि। इस तरह से लोक वार्ता [फोकलोर] का क्षेत्र बड़ा विस्तृत, व्यापक एवं असीमित है। लोक साहित्य उसका एक भाग है। व्यक्ति के विभिन्न आचार विचारों का लगाव लोक वार्ता से होता है। लोक वार्ता के अन्य सभी विषय लोक साहित्य के लिए सहयोगी होते चलते हैं। फलतः लोक साहित्य लोक वार्ता का एक अंग माना जाता हैं। इस लोक वार्ता साहित्य का मूल्य केवल साहित्य की दृष्टि से उतना नहीं होता, जितना उसमें सुरक्षित उन परंपराओं की दृष्टि से होता है जो नृ-विज्ञान के किसी पहलू पर प्रकाश डालती हैं। इस साहित्य को हम आदिम मानव की आदिम प्रवृत्तियों का कोश कह सकते हैं। इस प्रकार के लोक साहित्य की व्याख्या करने में जब यह विदित हो कि उनके मूल में किसी आधिभौतिक तथ्य का प्रतिबिम्ब है जैसे कि आदिम मानव ने सूर्य और अन्धकार के संबंध को अथवा सूर्य और उषा के प्रेम को अथवा साहचर्य को ही विविध

रूपकों द्वारा साहित्य का रूप प्रदान कर दिया है तो उसका तत्व धर्म गाथा का रूप ग्रहण कर लेता है। तात्पर्य यह है कि लोक साहित्य का वह अंश जो रूप में प्रकटत: तो होता है कहानी, पर जिसके द्वारा अभीष्ट होता है किसी ऐसे प्राकृतिक व्यापार का वर्णन जो साहित्य सृष्टा ने आदिम काल में देखा था और जिसमें धार्मिक भावना का पुट भी रहा हो। यही धर्म गाथा कहलाती है। इसके अतिरिक्त समस्त प्राचीन मौखिक परंपरा से प्राप्त कथा तथा गीत साहित्य लोक साहित्य कहलाता है। धर्म गाथाएं हैं तो लोक साहित्य ही, किन्तु विकास की त्रिविध अवस्थाओं में से होती हुई ये गाथाएं धार्मिक अभिप्राय से सम्बद्ध हो गई हैं। अत: लोक साहित्य के साधारण क्षेत्र से इन्हें हट जाना पड़ा। यह धार्मिक अभिप्राय आरम्भ में तो सहज होते हैं, उपरान्त अभीष्ट अर्थ की चेतना से सम्बद्ध हो जाते हैं। [१]

लोक विद्या, लोक वार्ता का एक अंग—लोक वार्ता का एक अंग लोक विद्या भी माना जा सकता है। इसके अन्तर्गत टोने-टोटके से इलाज करना तथा रूढ़ परंपराओं से कार्य करने वाली शैलियां आती हैं। सांप- बिच्छुओं के झाड़ तथा भूत-प्रेतों और डाकण-स्यारियों के मंत्रादि इसी विद्या में आते हैं। कृषि विद्या भी लोकहितोपयोगी विद्या कहलाती है। कृषि कर्म में प्रवृत्त होकर लोक किस प्रकार के आराध्य-व्यापार करता है सो लोक विद्या केवल लोकोपयोगी ज्ञान ही नहीं है पर लोक के नाना भांति के व्यवसाय और उन विषयों की पूजा करने वाली रूढ़ परंपरित विद्या से संबंधित भी है।

प्रादेशिक लोक साहित्य—भारतवर्ष में राजस्थान का प्रांत, लोक साहित्य के क्षेत्र में एक अमूल्य संपत्ति का अखूट खजाना है। इस प्रदेश की संस्कृति ने अद्भुत शौर्य, सौन्दर्य और मानवीय मूल्यों की स्थापनायें की हैं। राजस्थान की प्रकृति ने जो 'अभाव' प्रदान किये अर्थात मरुस्थल, अकाल, कम वर्षा, खेती के साधनों का अभाव आदि आदि सभी तथ्य यहां के निवासियों के मन से उमंग, उल्लास और उत्साह को कम नहीं कर सके। अपनी जीविका उपार्जन के लिए संतोष के पश्चात लगभग सारा अवकाश-काल लोक संस्कृति की उन्मेषपूर्ण गरिमा में ही लगता रहा। यहां के इतिहास ने वीरता की अक्षुण्ण छाप छोड़ी है, महिलाओं ने इतिहास को जौहर की ज्वालाओं के अक्षरों से लिखा है, दातार और दानवीरों ने अपने धन को कोड़ियों की तरह बहाया और मरुस्थल को निवास योग्य और जीवन के लिए सक्षम बनाया है। गांव गांव और घर घर में राजस्थानी लोक कला और लोक सहित्य की स्पन्दनपूर्ण थाती के दर्शन मिलते हैं। प्रेम और

---

१ — ब्रज लाक साहित्य का अध्ययन: डॉ. सत्येन्द्र

रोमांस की उमंगपूर्ण कथाओं में ढोला - मारू , जलाल - बूबना , नागजी-नाग - वन्ती , रिसाळू - नोपदे , सुल्तान - निहालदे ; विद्वता एवं बुद्धिमानी से परिपूर्ण राजा भोज , राजा विक्रम एवं क्रोड़ी धज सेठों की कथायें ; लोक गाथाओं के रूप में बगड़ावत और पाबूजी जैसे वीरात्मक महाकाव्य ; पणिहारी , सूवटियो जलो , सपनो , ओळू जैसे मुक्तक गीतों का अक्षय भंडार राजस्थान के लोक - साहित्य को अखूट बनाये हुए हैं । इन लोक सांस्कृतिक उपलब्धियों में सहज मनो- भाव , चारित्र्यपूर्ण नीतियां और जीवन की नानाविध अनुभूतियों के हीरे - मोती बिखरे पड़े हैं ।

राजस्थान की लोक संस्कृति के जागरूक संरक्षण के लिए कुछ विशिष्ट जातियों का योगदान भी कम नहीं है । चारणों का इतिहास एवं काव्य प्रेम , भाटों की विरुदावलियां एवं वंशावलियां ; धोळे , मोतीसर , रावल , जोगी , ढाढ़ी , ढ़ोली , लंगों के काव्य एवं गीत तथा अनेकानेक जातियों के अनेक प्रकार के भोपों मे अपनी कंठानुगत परंपरा में असंख्य सामाजिक तथ्यों को सुरक्षित कर रखा है ।

लोक साहित्य का महत्व – वर्तमान युग में लोक साहित्य से अनेक रूपों का ज्ञान होता है । हिन्दी साहित्य जगत में साहित्य शब्द के साथ लोक विशेषण लगाकर लोक साहित्य अपना पार्थक्य प्रकट करता हुआ पर्याप्त प्रचलित होता जा रहा है । यह साहित्य धारा उसी तरह से चल निकली है–जिस तरह कि स्वतंत्र राष्ट्र की भाखरा चंबल की नहरें । इसका विकास मानव मन की अन्तर्मुखी प्रवृत्तियों से हुआ है । इससें लोक कथा , लोक गीत , लोक-नाट्य , लोकानुरंजन और लोक परंपरा आदि सम्मिलित हैं । इन तत्वों से जन सामान्य के सामाजिक जीवन के आदर्शों की रचना हुई है । यह मौखिक साहित्य ही लोक साहित्य कहलाता है । मनुष्य की बाह्‌य प्रवृत्तियों से जो विकास होता है वह शिक्षा है । इस साहित्य की आत्मा लोक मानस में निहित है और इसका शरीर सामाजिक बंधन - विश्वास से गठित है । लोक सरलतायुक्त है और शिक्षा प्रवंचन।पूर्ण । परंतु शिक्षा और सभ्यता में घनिष्ट सम्बन्ध है । पंडित रामनरेश त्रिपाठी के शब्दों में सभ्यता की वृद्धि के साथ स्वाभाविकता का ह्रास होता है । सभ्यता का सम्बन्ध मस्तिष्क से है और स्वाभाविकता का हृदय से है । बहुत कम ऐसा देखने में आता है जब मस्तिष्क और हृदय में एकता हो । प्रायः हृदय के विषय में मस्तिष्क सदा झूठ बोलता है । कितनी बार मनुष्य के हृदय में क्रोध उत्पन्न होता है , पर उसका मस्तिष्क शांति और विनय की बातें करता हुआ पाया जाता है । हृदय में कामना रहती है पर मस्तिष्क मुख के द्वारा वैराग्य और त्याग की बातें करता रहता है । हृदय में लोभ रहता है , पर मस्तिष्क निस्पृहता दिखलाता रहता है । बहुत ही कम उच्चकोटि के सत्पुरूष ऐसे होंगे जिसके हृदय और मस्तिष्क में मेंल हो ।

अतएव जिसे आजकल सभ्यता कहते हैं वह एक प्रकार की अस्वाभाविकता है।[1]

अत: लोक साहित्य हृदय का साहित्य हैं, उसमें प्राकृतता के दर्शन होते हैं। उसमें शांति, स्वभाव, आत्मैक्य और आपसी विश्वास के भाव पलते हैं। सहृदयता, सरलता, निर्भयता एवं प्रगाढ़ प्रेम के नमूने लोक साहित्य के सिवाय कहां मिलते हैं ? ज्ञान-विज्ञान, व्यवहार-वाणी, वेष-भूषा आदि वास्तविक व्यापार लोक साहित्य की जान हैं। लोक साहित्य की प्रगति ही प्रकृति की पूजा है।

लोक साहित्य विज्ञान और संरक्षण: लोक साहित्य की अक्षय निधि चूंकि मौखिक है और सामाजिक अचेतन का अंश है, इसलिये यह अत्यंत आवश्यक है कि उसके संरक्षण का प्रयास अधिकाधिक किया जाय। समाज-सापेक्ष लोक साहित्यिक तथ्य काल की चपेट में सबसे पहिले आते हैं। समाज के बदलते मूल्यों के साथ लोक संस्कृति की विकास यात्रा के चिह्न बालू के पदचिह्नों की तरह मिटते चलते हैं। किन्तु उनका सौन्दर्य और उस सौन्दर्य की गरिमा से नवीन संस्कृति का निर्माण भी संभव है। अत: यह आवश्यक है कि लोक साहित्य की परम्परा को संरक्षित किया जाय, उनका संग्रह किया जाय और उनसे नि:सृत तथ्यों के वैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर नवीन सामाजिक मूल्यों की प्रस्थापना की जाय। लोक साहित्य ही वस्तुतः हमारे सामने एक ऐसा खजाना उपस्थित करता है जो बालोपयोगी शैक्षणिक प्रयोग में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। ग्रिम बन्धुओं कीपरी कथाओं एवं लोक कथाओं के शैक्षणिक महत्व से आज के शिक्षाविद् कभी ऋण मुक्त नहीं हो सकेंगे। हमारे दुर्भाग्य की बात है कि हम अपनी शिक्षा-पद्धति में हितोपदेश, पंचतंत्र एवं उन्हीं की प्रवृत्ति के अनुकूल चलने वाली असंख्य लोक कथाओं का उपयोग नहीं कर पा रहे हैं। विश्व के उन्नततम् देशों ने जो अनुभव सिद्ध सत्य स्वीकार कर लिया है, उससे भी अभी हम बहुत दूर हैं।

नवीन भारतीय साहित्य की आलोचना - प्रत्यालोचना में भी एक बात बार बार कही जाती है कि वह परामुखपेक्षी है, उसके साहित्यिक आंदोलन भारतीय भूमि में अंकुरित न होकर विदेशीय ताप से पीड़ित हैं। भारतीय साहित्य को भारतीय होने के लिए अंततः कौनसी साधना करनी है ? यही साधना वस्तुतः लोक साहित्य की गरिमापूर्ण परंपरा से प्राप्त की जा सकती है जो अपने सौन्दर्य, शैलीगत विपुल प्रयोग और मनसचेतना की उष्मा से परिपूरित है।

भारतीय साहित्य की उन्नति अथवा राष्ट्रीय साहित्य के लिए यह अत्यंत आवश्यक बन गया है कि लोक मानस से उद्भूत सहज अभिव्यक्तियों का गहरा

---

१ —कविता-कौमुदी : ५ वां भाग

और विस्तृत - क्षेत्र संग्रहीत और संरक्षित किया जाय ।

लोक वार्ता के सभी मौखिक अंगों-उपांगों यथा कथा, गीत , गाथा , नाटक, मुहावरे , कहावतें, पहेलियां , प्रवाद , आख्यान आदि आदि की सुरक्षा एवं अध्ययन के भिन्न भिन्न स्वरूप हैं । उन्हें एकत्रित करने की प्रणालियां हैं , वैज्ञानिक वर्गीकरण एवं अध्ययन की शैलियां हैं उन्हें अपने शुद्ध रूप में, उपयोग में लिया जाना है और एक ऐसी नींव की स्थापना करनी है जिससे भारतीय समाज अपने आधुनिकतम अभिव्यक्तियों , प्रतीक-व्यवस्थाओं और विगत सौन्दर्य में निपट भारतीय सिद्ध हो सके ।

भारतीय लोक साहित्य की भूमिका— लोक साहित्य के संरक्षण अथवा खोज का कार्य मुख्यतः उन परिस्थितियों पर निर्भर करता है जो एक ओर मानव-समाज की कलात्मक भाव धाराओं को अपनी संपूर्णता में देखना चाहते हैं तथा दूसरी ओर मनुष्य को अपनी प्रकृति एवं सामाजिक परिस्थितियों [देश , काल और जाति] के परिप्रेक्ष्य में समझने का प्रयत्न करते हैं । लोक साहित्य के विषय का स्वतंत्र महत्ता के रूप में अध्ययन प्रारंभ तो उपरोक्त दो सुनिश्चित मान्यताओं के उपरान्त ही होना संभव हुआ । ये मान्यतायें पाश्चात्य देशों में १९ वीं शताब्दी के मध्य से एक स्पष्ट पद्धति के रूप में सामने आने लगी । विलियम जे. थॉम्स , गोम्मे, बिशप पेरी , टेलर , फ्रेजर आदि विद्वानों ने मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन करने का प्रयास किया। लोक साहित्य की स्पष्ट विषयगत धारणा का जन्म मुख्यतया नृ-विज्ञान एवं समाजशास्त्र की स्थापना के साथ प्रारंभ हुआ और शनैः शनैः एक स्वतंत्र विषय की ओर अग्रसर होता गया । बीसवीं शताब्दी के दूसरे युग तक पहुंचते हुए पाश्चात्य देशों ने निश्चय ही लोक वार्ता को स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकार कर लिया और उसके पठन-पाठन और अध्ययन , संग्रह एवं शोध का कार्य भी प्रारंभ हो गया ।

इसी प्रकार यदि भारतीय लोक साहित्य की भूमिका के विषय में सोचते हैं तो सहज ही उसका मूल प्राचीन काल में मिलना प्रारंभ हो जाता है । वेद , उपनिषद, ब्राह्मण तथा आरण्यकों को हम लोक वाङ्मय अथवा संपूर्ण लोक वार्ता की विधा से निकट पाते हैं ; साथ ही साथ बुद्ध एवं जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में लोक वाङ्मय की पृष्ठभूमि के स्पष्ट दर्शन होने लगते हैं । कथा सरित्-सागर, बृहत्कथा , पंचतंत्र , हितोपदेश आदि आदि साहित्यिक कथाओं का मूल्य भी कम नहीं रहा । हमारे देश के मध्ययुगीन साहित्य में लोकपरक मनोभूमि पर सृजित साहित्य का अभाव नहीं मिलता । किन्तु निश्चय है कि ' लोक ' में प्रचलित मौखिक परम्पराओं को इन युगों में साहित्यिक स्वरूप देने का प्रयास किया गया और उनकी स्वस्थ एवं उज्जवल अभिव्यंजना को शास्त्रीय काव्य का आधार

बनाया गया ।

किन्तु लोक साहित्य के जिस अध्ययन शोध की चर्चा यहां अभिप्रेत है, इसमें मौखिक साहित्यिक परंपरा को कलात्मक स्वरूप या लिखित रूप देना ही नहीं है, अपितु लिखित स्वरूप के माध्यम से मनुष्य को अपने पूर्ण सौन्दर्य कल्पना के परिप्रेक्ष्य में देखने का प्रयास भी निहित है। ऐसा सर्वांगीण प्रयास भारत में वर्त्त-मान शिक्षा पद्धति की स्थापना के बाद ही प्रारंभ हुआ ।

अंग्रेजों के शासन काल में ईस्ट इंडिया कंपनी के कर्मचारी एवं कुछ चर्च के पादरियों ने भी सबसे पहिले भारतीय लोक साहित्य की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया । कर्नल टॉड, सी. ई. ग्रोवर, फोर्ब्स, रेवरेंड एस. हिस्लप आदि इस क्षेत्र में प्रमुख रहे । इन विद्वानों ने लोक वार्ता का सहारा मुख्यतया भारत के जन-मानस को भली प्रकार समझ लेने के लिए किया , इन अध्ययनों का मुख्य प्रयोजन उनकी भारतीय राजनीति का एक अंग रहा ।

इसी काल में अहिन्दी क्षेत्रों में लोक वार्ता संबंधी कार्य हुआ। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है : अहिन्दी जन पद संबंधी ग्रंथों में १. मिस फेयर का ओल्ड डेक्कन डेज [१८६७] , २. डाल्टन का डिस्क्रिप्टिव एथनॉलोजी ऑफ बंगाल [१८७१] , ३. श्री ग्रोवर का फाक सांग्ज ऑफ सदर्न इंडिया [१८७१] , ४. लाल बिहारी दे का फोक सांग्ज ऑफ बंगाल [१८८३], ५. तोरूदत्त द्वारा लिखित एन्श्यंट बेलेड्स एन्ड लीजेन्ड्स ऑफ हिन्दुस्तान [१८८९], ६. रिचर्ड टेम्पल महोदय का लीजेन्ड्स आफ दी पंजाब [१८८४], ७. श्रीमति एफ. ए. स्टील द्वारा लिखित वाइड अवेक स्टोरीज [१८८५] , ८. नटेश शास्त्री का फोकलोर इन सदर्न इंडिया , आर. सी. मुकर्जी का लिखा ९. इंडियन फोकलोर, १०. श्रीमति डेकार्ट का शिमला विलेज टेल्स, ११. सी. स्वीन्टर्न का रोमाण्टिक टेल्स ऑफ पंजाब , १२. एम. कुलक द्वारा लिखित बंगाली हाउस होल्ड टेल्स , १३. शोभनादेवी का ओरियण्टल पर्लस् , १४. रासास्वामी राजू का इंडियन फेबल्स , १५. जी. आर. सुब्रह्मन्य पंतालु का फोकलोर आफ दी तेलगूज, १६. दिनेशचन्द्र द्वारा रचित ईस्ट बंगाल बैलेड्स, १७. आर. ई. एन्थॉवेन के फोकलोर आफ बॉम्बे और १८. फोकलोर नोट्स ऑन ट्राइब्ज एंड क्राफ्ट्स ऑफ बॉम्बे आदि अनेक ग्रंथ इसी क्रम में मिलते हैं ।

इन ग्रंथों के अतिरिक्त लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया [१९०७-८] की जिल्दों को देखने से ज्ञात होता कि है डा. ग्रियर्सन ने कुछ मौखिक गीतों को अनु-वाद सहित प्रस्तुत किया है । बहुत से अंग्रेज लेखकों ने अपने फुटकर लेखों में बड़े काम की सामग्री प्रकाशित करवाई है। परन्तु ये सारे ग्रंथ और ये ज्ञान-राशि अंग्रेजी में ही प्रकाशित हुई है। इनमें से हिन्दी जनपदों की अपेक्षा अहिन्दी

जनपदों में भारतीय और अभारतीय विद्वानों द्वारा अधिक कार्य हुआ है। आंग्ल-भाषियों द्वारा लिखे लोक वार्ता संबंधी कार्यों को आज के विद्वान चाहे वैज्ञानिक अन्वेषण कहें अथवा नृ-विज्ञान की खोज, पर प्रत्यक्ष में तो वह भारतीय लोक जीवन के नैकट्य की भावना से ही संकलित होना संभव हुआ हैं। इस तरह से विदेशी लेखकों ने कश्मीरी, नेपाली, राजस्थानी, मैथिली, संथाली आदि विभिन्न भाषाओं तथा लोक साहित्य का विशद एवं समीक्षात्मक अध्ययन किया है। अंग्रजी लेखकों में प्रमुख सर जार्ज ग्रियर्सन, एच० एन० इलियट, श्री सी० ई० ग्रोवर और डा० टर्नर आदि उल्लेखनीय हैं।

इस भांति प्रादेशिक लोक साहित्य संकलन का कार्य और लोक संस्कृति के अध्ययन का उद्देश्य लेकर कई विद्वान बड़ी तेजी से चल पड़े। नूतन ज्योति जगी। देश जगमगा उठा। मिशनरियों के फैलाव और धर्म प्रचारार्थ प्रान्तीय भाषाओं के अध्ययन की आवश्यकता ने प्रान्तीय भाषाओं के मौखिक साहित्य के संकलन को भी प्रेरणा दी, इसमें शक नहीं।

हिन्दी लोक साहित्य संकलन का इतिहास — हिन्दी लोक वार्ता साहित्य अभी दो कालों में बांटा जा सकता है। लोक साहित्य संकलन का प्रेरणाकाल और लोक-साहित्य संकलन का प्रवृत्तिकाल, यद्यपि एक काल में दूसरे प्रकार का रुचि संकलन कार्य भी हुआ है– जैसे प्रधानता गीत संकलन की चाहे रही हो, फिर भी उसे गीत काल नहीं कहा जा सकता; क्योंकि उस काल में कथा-कहावतों का भी संकलन हुआ है।

हिन्दी **साहित्य संकलन का प्रेरणा काल** – (**१८८४ से १९४२ तक**) इसे प्रथमोत्थान भी कहते हैं। बताया जाता है कि बांकीपुर के लाला खंगबहादुर मानव ने सन् १८८४ में सुधा बूंद नाम का एक गीत संग्रह तैयार किया था। इस विषय के विद्वानों ने उसके कई प्रमाण खोज लिए हैं। हिन्दी में लोक साहित्य संकलन के उद्योग का यहीं से प्रथमोत्थान प्रारंभ होता है। पर इसमें गति, मति और ज्ञान अंग्रेजी की प्रेरणा से ही आया है। इसलिए इसे प्रेरणा काल ही कहना चाहिए। इस काल का साहित्य संकलन, कई प्रकार की भाषाओं में है। हिन्दी और प्रान्तीय भाषाएं। हिन्दी में स्वर्गीय पंडित मन्नन द्विवेदी बी० ए०, तहसीलदार, आजमगढ़ की गीत पुस्तक सरवरिया १९१३ में प्रकाशित हुई है। इन्हीं दिनों श्री संतराम बी० ए० के पंजाबी लोक गीत चांद और सरस्वती में प्रकाशित होते थे, जो आगे चलकर संवर्द्धित संस्करण १९२५ की पुस्तक-रूप में प्रकाशित हुए हैं। इसी समय पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने बड़ी लग्न के साथ इस क्षेत्र में प्रवेश किया। सन् १९२६ के बाद उनके कई गीत संग्रह प्रकाशित हुए हैं। उनमें से कविता कौमुदी (पांचवा भाग), हमारा ग्राम साहित्य, मारवाड़ी गीत संग्रह,

आदि प्रमुख हैं ।

सन् १९२८ के आस पास देवेन्द्र सत्यार्थीजी भी इस क्षेत्र में गीत खोजने के लिए कटिबद्ध होकर आये । सत्यार्थीजी भी दूर दूर की यात्रा करते, गीतों को लाते और रूरल इंडिया, मार्डन रिव्यू एवं अन्य हिन्दी उर्दू के पत्रों में छपाते। सत्यार्थीजी ने इस क्षेत्र में त्रिपाठीजी के साहित्यानुज बनकर कार्य किया। त्रिपाठीजी का क्षेत्र छोटा और तनिक वैज्ञानिक रहा, पर सत्यार्थीजी का कार्य विस्तृत, छतराया हुआ और भावना प्रधान ही रहा ।

राजस्थान में लोक साहित्य संकलन — इस कार्य की गौरव - गरिमा को प्रकाश में लाने के लिए कई राजस्थानी प्रवासी भाई भी काम में लगे । कलकत्ता में रामदेवजी चौखानी, रघुनाथप्रसादजी सिहानियां और भगवतीप्रसाद जी बीसेन के परामर्श से राजस्थान रिसर्च सोसायटी की स्थापना की । यहां एक राजस्थान नाम की शोध पत्रिका का प्रकाशन आरंभ हुआ और लोक साहित्य को समुचित स्थान मिलने लगा । इस तरह से लोक साहित्य संकलन का यह कार्य राजस्थानी में भी प्रारंभ हुआ ।

लोक साहित्य संकलन प्रेमियों की लालसा रहती है कि चाहे वह स्मृति में हो या पोथियों में, पर वे उन निधियों का पूर्ण संग्रह अवश्य करेंगे। राजस्थान में यह परंपरा भी बहुत प्राचीन काल से चलती आई है । जिसके परिणामस्वरूप हस्त-लिखित ग्रंथों में भी लोक साहित्य प्रचुर मात्रा में मिलता है । मात्र साहित्य की अपेक्षा लोक साहित्य ही ऐसा गुरू है जो देश एवं जाति की सभ्यता के विकास की, उसके जीवन को गतिविधि तथा उसके सांस्कृतिक धरातल के विभिन्न स्तरों की झांकियों के दर्शन करवा सकता है । इन परंपराओं को सुनने – समझने और उनका ज्ञान प्राप्त करने में लोक साहित्य ने अमूल्य योग दिया है ।

राजस्थानी का लोक साहित्य सहज ही अनुपम है । खेद का विषय है कि अभी तक यह पूर्ण रूप से प्रकाश में नहीं आ पाया । मुख परंपरागत होने के कारण इसका रूप परिवर्तित हो रहा है । यह साहित्य बड़ा ही भावपूर्ण तथा जीवन के आदर्शों से परिपूर्ण है ।

सारे राजस्थान भर में इस भागीरथी [लोक साहित्य] की सतत् प्रवा-हिनी भाव धारा में अवगाहन करने हेतु अनेक विद्वानों ने पूर्ण योगदान दिया। राजस्थानी भाषा, इतिहास और साहित्य के प्रेमी विद्वानों ने कार्य प्रारंभ किया। राजस्थानी लोक साहित्य का कार्य स्वतंत्र पुस्तकाकार रूप में भी हुआ और राजस्थान से निकलने वाली अनेकानेक पत्रिकाओं में भी निरन्तर यह कार्य प्रकाशित होता रहा । वस्तुतः राजस्थानी भाषा और संस्कृति के पुनरुत्थान के प्रयत्न में लगभग सभी विषय के अध्येताओं ने लोक वार्ता के विषयों को अपने

अध्ययन क्रम में सम्मिलित किया। राजस्थानी भाषा और साहित्य के अध्येता कविराजा मुरारीदानजी, रामकरणजी आसोपा सूर्यकरणजी पारीक, नरोत्तम दासजी स्वामी, रामसिंहजी, सीतारामजी लाळस आदि ने राजस्थान की प्राचीन साहित्यिक परंपरा के साथ ही साथ लोक साहित्य का कार्य भी किया। जोधपुर रियासत के मुंशी देवीप्रसादजी ने जन-गणना के कार्य के साथ मारवाड़ की जातियों का एक सुन्दर ग्रंथ भी रचा। लोक वार्ता में जातीय अध्ययन एक महत्वपूर्ण कड़ी है और उसमें श्री देवीप्रसादजी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अन्य रियासतों में जनगणना कार्यों के साथ भी कहीं कहीं जातियों को समझने का उपक्रम किया गया। आधुनिक काल में लोक वार्ता के अध्ययन के लिए यह सामग्री अत्यंत महत्वपूर्ण आधार प्रदान कर सकती है।

गीत संग्रह — दूसरे प्रान्तों में रहने वाले प्रवासी राजस्थानियों के लिए मारवाड़ी शब्द रूढ़ हो गया है। चाहे वे बीकानेर के हों या जयपुर के, बाहर वे सब मारवाड़ी नाम से ही प्रसिद्ध है। वहां [बंगाल, बिहार, नेपाल, आसाम, बंबई एवं मद्रास आदि]धन कमाते हैं, लाते हैं और अच्छे कामों में लगाते हैं। मगर वहां उन लोगों का जीवन सदैव व्यापारिक पचड़ो में ही उलझा रहता है। दूर बैठों के लिए अपनी मातृभूमि और मातृभाषा के लिए बड़ा आदर भाव बना रहता है, वे कहीं अपने लोक साहित्य को वहां बैठे देख लें तो बाँसों उछलने लग जायें—ऐसा मेरा स्वयं का अनुभव है। उन प्रवासी राजस्थानियों तक प्रादेशिक लोकगीत पहुंचाने के मात्र उद्देश्य से राजस्थान में कुछ शिक्षित एवं चतुर बन्धुओं ने गीत संकलन कार्य शुरू भी किया। खेताराम माली ने मारवाड़ी गीत संग्रह, मदनलाल वैश्य ने मारवाड़ी गीतमाला, निहालचन्द वर्मा ने मारवाड़ी गीत, ताराचन्द ओझा ने मारवाड़ी स्त्री गीत संग्रह, जगदीश सिंह गहलोत ने जोधपुर से मारवाड़ के ग्रामगीत आदि नामों से लोक गीतों के कई संग्रह प्रकाशित किये। गहलोतजी ज्ञानी एवं लोक साहित्य प्रेमी थे, अतः उनसे हमें कई पुस्तकें और मिलीं। उन्होंने राजपूताने के वातालार्थ, मारवाड़ के रस्म, मारवाड़ी कहावतें, कृषि कहावतें आदि ग्रंथ भी तैयार किये। इससे पूर्व विश्वेश्वरनाथजी रेऊ भी इस दिशा में कार्य कर रहे थे। विक्रम सवंत् १९८९ में रेऊजी की लिखी राजा भोज नामक लोक कथा पुस्तक इलाहाबाद की हिन्दुस्थानी एकेडेमी से प्रकाशित हुई।

बीकानेर में [वि.सं. १९८०] राजस्थानी लोक साहित्य के उद्धारार्थ श्री नरोत्तमदासजी स्वामी के उद्योग से राजस्थानी साहित्य पीठ की स्थापना हुई। इसकी सदस्यता के लिए राजस्थानी साहित्य सम्बन्धी कोई न कोई कार्य करना आवश्यक रखा गया। इसके प्रमुख कार्यकर्त्ताओं के नाम इस प्रकार हैं:

ठाकुर रामसिंह तंवर, पंडित विद्याधर शास्त्री, पं. दशरथ शर्मा, अगरचन्द नाहटा, भंवरलाल नाहटा, मुरलीधर व्यास, रामनिवास हारित, पुरुषोत्तमदास स्वामी, रावतमल सारस्वत, पूर्णमल गोयन्का, द्वारकाप्रसाद पुरोहित, कुंवर चन्द्र सिंह आदि अन्वेषक कार्य करने के लिए तैयार हुए। इनमें से कई देश के सफल अनुसंधानकर्ता होकर अग्रणी बने और कुछ लोग केवल राजस्थानी भाषा के उद्धारक तक ही आकर रह गये।

उधर सन् १९१९ में पिलानी में बिड़ला कॉलेज खुला। तब श्री सूर्यकरणजी पारीक बीकानेर से वहां हिन्दी प्रोफेसर पद पर पहुंचे। १९३३ में आपने राजस्थानी के सुप्रसिद्ध साहित्य प्रेमी घनश्यामदासजी बिड़ला के द्वारा पिलानी राजस्थानी ग्रंथमाला की स्थापना करवाई। इस ग्रंथमाला का पहला ग्रंथ राजस्थानी बातां आपने ही तैयार किया था। इसमें राजस्थानी भाषा की आठ प्राचीन कहानियां संकलित की गईं। आगे चलकर पारीकजी ने परिश्रमपूर्वक अपने दो बीकानेरी घनिष्ट मित्रों श्री ठाकुर रामसिंहजी और नरोत्तमदासजी स्वामी के सहयोग से पहिले पहल सुरूचिपूर्ण ढंग से २३० लोकगीत संपादित किये। लोक साहित्य के उन रत्नों से राजस्थान के लोक गीतों का प्रथम भाग प्रकाशित करवाया। इन दोनों भागों के संपादक त्रय महोदय ने राजस्थानी गीतों का विवेचन-विश्लेषण बड़ी वैज्ञानिक पद्धति से किया है। प्रस्तावना में लोक गीतों के प्रकार, साम्य, पारिवारिक व्यक्तियों के विशेषण, उपमान, सौन्दर्य के उपमान, पति-श्रृंगार, पत्र, अभिवादन, आशीर्वाद, वस्तु-प्राप्ति स्थान, पदार्थ-सुख, सामग्री, पशुओं के विशेषण, हल, चरखा आदि के अनेक पर्याय-समीक्षण बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किये हैं। हिन्दी अनुवाद, टिप्पणी, शब्द-कोष, परिशिष्ट और सभी सामग्री उत्तम ढंग से सुसज्जित की है। अतः सूर्यकरणजी पारीक, ठा. रामसिंहजी, प्रोफेसर नरोत्तमदासजी स्वामी [त्रिमूर्ति] के सद्प्रयत्नों से लोक गीतों का संकलन एक सफल पद्धति से प्रारम्भ हो गया। बीकानेर में इनके पदचिन्हों पर चलने के लिए डा. दशरथ शर्मा, मुरलीधर व्यास, अगरचन्द नाहटा, दीनानाथ खत्री, भंवरलाल नाहटा, रावत सारस्वत, बद्रीप्रसाद साकरिया और लक्ष्मी कुमारी चूंडावत आदि लोक साहित्य संरक्षक तैयार हुए। बीकानेर का यह लोक साहित्य संरक्षक समुदाय अपने लक्ष्य तक पहुंचने में हर तरह से समर्थ बना रहा।

उधर पिलानी में भी पारीकजी ने बड़ी योग्यता से अपने शिष्यों तथा मित्रों द्वारा एक लोक साहित्य संरक्षक सम्प्रदाय-सा चला दिया। कन्हैयालाल सहल, गणपति स्वामी, पतराम गौड़, वसन्तलाल मुरारका, मनोहर शर्मा, गींडाराम वर्मा, लालजी मिश्र आदि अनेक सज्जन विद्वान आगे चलकर चोटी

के लोक साहित्यकार निकले और अपनी अपनी रुचि के अनुसार लोक साहित्य के संकलन कार्य में जुट गये।

इस काल के लोक साहित्य संग्राहकों में श्री सूर्यकरण का नाम बड़े सम्मान के साथ उल्लेखनीय है। इनके संग्रहित राजस्थान के लोक गीत [दोनों भाग] इस विषय के प्रतिनिधि ग्रंथों में है। विद्वान संपादकों ने उक्त संग्रहों में राजस्थानी लोक साहित्य का सम्यक परिशीलन किया है। इन्होंने लोक साहित्य के विविध अंगों की अच्छी तरह से छानबीन की है। देवी-देवताओं के, त्यौहारों के, आनन्दोत्सव के, दाम्पत्य प्रेम के, घरेलू जीवन के, बालिकाओं के, पौराणिक, ऐतिहासिक एवं प्रकीर्ण शीर्षकों के अन्तर्गत अनेक गीत संग्रह किये हैं। ये गीत संग्रह राजस्थानी लोक जीवन और लोक हृदय का प्रमुखत्व प्रकट करते हैं। इन सबका अधिक श्रेय पारीकजी एवं स्वामीजी को है। राजस्थानी के गीतों के अतिरिक्त राजस्थान के ग्रामगीत, जटमल की गोरा बादल की बात, राजस्थानी लोक गीत आदि आप लोगों की उल्लेखनीय लोक साहित्य संबंधी संपादित कृतियां हैं। आपने राजस्थानी के अनेक लोक गीतों के महत्वपूर्ण ग्रंथों के साथ विस्तृत प्रस्तावनाओं के सहित कृष्ण-रुक्मणी री बेलि और ढोला मारू रा दूहा जैसे लोक काव्यों का सफल संपादन भी किया है।

इन्हीं दिनों राजस्थानी भाषा की एक शोधपूर्ण पत्रिका की आवश्यकता इन्हें [पारीकजी] बहुत दिनों से अनुभव हो रही थी। सवंत् १९९२ में जब राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी कलकता की ओर से राजस्थान त्रैमासिक पत्र किशोरसिंहजी बार्हस्पत्य के संपादकत्व में निकलना आरंभ हुआ तब आपने बड़े उत्साह से स्वागत किया। पर राजस्थान पत्र अभाग्यवश दो वर्ष चलकर बन्द हो गया। आप अन्य हिन्दी के पत्रों में राजस्थानी लोक गीतों के विभिन्न प्रकार के निबंध भेजते रहे। आखिर सोसाइटी के संचालक महोदय संपादन सम्बन्धी सारी जिम्मेदारी पारीकजी को देकर पुनः पत्र निकालने को तैयार हुए। पारीकजी ने एक सुदृढ़ परामर्श मंडल बनाया। जिसमें ओझाजी, दीवान बहादुर हरविलासजी सारड़ा, महाराजकुमार रघुवीरसिंहजी, मुनि जिनविजयजी, बाबू क्षितिमोहन सेन जैसे प्रकांड विद्वान सम्मिलित हुए। पत्रिका राजस्थानी नाम धारण करके बड़ी सजधज के साथ निकली। परन्तु दुख का विषय है कि प्रथमांक छपने के पूर्व ही १६ फरवरी, १९३९ को पारीकजी का देहान्त हो गया। पत्रिका तो जैसे तैसे निकलती रही पर राजस्थान रिसर्च सोसाइटी का नवीन संगठन राजस्थानी साहित्य परिषद कलकत्ता के नाम से कर दिया गया। इस तरह से लोक साहित्य की लहर सारे राजस्थानी साहित्यिकों एवं राजस्थान भर में एक बार रुकसी गई। राजस्थान साहित्य सम्मेलन से राजस्थान साहित्य और अखिल

भारतीय चारण सम्मेलन से चारण नाम की खोज पत्रिकाएं भी निकलनी शुरू हुई। इस तरह से राजस्थान में लोक साहित्य संकलन का कार्य मनोयोग से हिन्दी के माध्यम द्वारा प्रकाश में आने लगा। जयपुर में मुनि जिनविजयजी, उदयपुर में मोतीलालजी मेनारिया और जनार्दनारायजी आदि महानुभाव संकलन कार्य में लवलीन हुए। अजमेर में जगदीशप्रसादजी माथुर एवं ऋषिदत्तजी मेहता भी क्रमशः अपने अपने पत्रों में [मीरा और राजस्थान] लोक साहित्य को स्थान देने लगे। राजस्थान की पत्रकारिता में लोक साहित्य हमेशा काफी स्थान प्राप्त करता रहा।

लोक साहित्य संकलन का प्रवृत्तिकाल— [सन् १९४३ से १९६५] इसे द्वितियोत्थान भी कहते हैं। इस काल में गीत की अपेक्षा कथा-वार्ता, कहावतें, मुहावरे, पहेलियां-प्रवाद और आलोचनात्मक लोक वार्ता साहित्य सम्बन्धी प्रबन्ध-पुस्तकों का प्रसार हुआ। उक्त काल में गीत संग्रह दो प्रकार से संकलित किये गये : १. शास्त्रीय अनुशीलन सहित और २. लोक गीतों पर भावात्मक लेख संग्रह। उपरोक्त विषयों पर राजस्थान में भी काफी कार्य हुआ। देश भर की पिछड़ी प्रान्तीय भाषाएं आगे आईं और लोक संगीत, लोक नृत्य, लोक-नाट्य, लोकोत्सव, लोकानुरंजन, लोक-कला, लोक-ख्याल, लोक-खेल आदि विषयों पर शोध-निबन्ध एवं ग्रंथ लिखे जाने लगे। अनेक विद्वानों ने इस कार्य को निश्चित दिशा की ओर चलाया। लोकतंत्रीय सरकार ने भी इसको पूरा प्रोत्साहन दिया।

लोक साहित्य संस्थाओं की स्थापना — सारे देश में लोक साहित्य संकलन प्रवृत्ति काल के सुन्दर आसार बड़े महत्वपूर्ण ढंग से दिखलाई दिये। लोक संस्कृति के अध्ययन और लोक साहित्य संकलन के उद्देश्य को लेकर अनेक जनपदीय संस्थाओं की स्थापनाएं अत्यन्त शीघ्रता के साथ शुरू हुई। ब्रज में ब्रज लोक साहित्य मंडल, बड़ौदा में ओरियन्टल इंस्टिट्यूट, गढवाल में गढवाली साहित्य परिषद्, बुन्देलखंड में लोक वार्ता साहित्य परिषद्, भोजपुर में भोजपुरी लोक साहित्य परिषद्, पूना में भंडाकर रिसर्च इंस्टिट्यूट, बघेलखंड में रघुराज-साहित्य परिषद्, मालवा में मालव लोक साहित्य परिषद्, राजस्थान में भारतीय लोक कला मंडल एवं रूपायन संस्थान आदि संस्थाएं अपने इसी तात्पर्य को लेकर आगे बढ़ीं। द्वितीयोत्थान के प्रथम दर्शन में राजस्थानी साहित्य की खोज करने वाली कुछ प्रमुख संस्थाओं के नाम इस प्रकार हैं: –

अखिल भारतीय राजस्थानी साहित्य सम्मेलन – इसका मुख्य कार्यालय जोधपुर में था। सुमनेश जोशी के प्रधान मंत्रित्व में इसकी देख रेख होती थी। संवत् २००१ में इसका प्रथम अधिवेशन पश्चिमी बंगाल दिनाजपुर [जो अब पाकिस्तान में

आ गया है] में ठाकुर रामसिहजी के सभापतित्व में हुआ था। सम्मेलन का अब अस्तित्व नहीं है।

२. उदयपुर की हिन्दी विद्यापीठ का शोध विभाग–यह संस्था राजस्थानी साहित्य पर ठोस कार्य कर रही है। इसका उद्देश्य प्राचीन साहित्य एवं लोक साहित्य को प्रकाशित करना है। यह संस्था अभी भी कार्य कर रही है।

३. राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, कलकत्ता – इसने पहले पहल बहुत ठोस कार्य किया। गीतों, कहावतों, कहानियों आदि का विस्तृत संग्रह तथा पत्रिका [राजस्थानी] और पुस्तक माला का प्रकाशन किया। इस संस्था में गत वर्षों से कार्य नहीं हो रहा है।

सूर्यकरण पारीक स्मारक समिति —इसकी स्थापना स्वर्गीय पारीकजी के मित्रों, प्रेमियों और शिष्यों की सहायता से हुई थी। पारीकजी के अधूरे छोड़े हुए कार्य को आगे बढाया जा रहा था। लोक गीत और लोक कथाओं के कई प्रकाशन हुए हैं। अब समाप्त प्राय: है।

सादूल राजस्थानी रिसर्च इंस्टिट्यूट, बीकानेर—इसकी स्थापना बीकानेर राज्य के प्रमुख विद्वानों द्वारा नवम्बर सन् १९४४ में की गई थी। इसके प्रथम अध्यक्ष ठाकुर रामसिहजी हुए थे, फिर डा. दशरथ शर्मा और अब श्री नाहटाजी हैं। इसमें अन्य कार्यों के साथ लोक साहित्य पर नीचे लिखे काम भी होते हैं: क. विशाल राजस्थानी मुहावरा कोष। ख. राजस्थान भारती नामक शोध पत्रिका का प्रकाशन। ग. प्राचीन महत्वपूर्ण ग्रंथों का अनुसंधान और संपादन एवं प्रकाशन। बाहर से ख्याति प्राप्त विद्वानों को बुलाकर उनसे शोधपूर्ण भाषण करवाना। राजस्थान क्षेत्र के पांच सौ लोक गीतों का संग्रह भी किया जा चुका है और सात सौ लोक कथाएं संग्रहित की गई हैं। इकतीस प्राचीन खोज पुस्तकों के साथ राजस्थान के नीति-दोहों, राजस्थानी व्रत कथाएं, राजस्थानी प्रेम-कथाएं, चदायण, भड्डुली आदि लोक साहित्य की पुस्तकें भी विद्वान लेखकों द्वारा लिखवाकर प्रकाशित करवाई हैं। यह संस्था अभी भी कार्य कर रही है।

६. राजस्थानी साहित्य पीठ, बीकानेर– राजस्थानी साहित्य का अध्ययन तथा संग्रह करने वाली संस्थाओं में यह सर्व प्रथम है। इसने राजस्थानी कहावतों, मुहावरों, लोक गीतों आदि का विशाल संग्रह किया है। अब यह संस्था अस्तित्व में नहीं है।

७. राजस्थानी साहित्य पीठ, कलकता – उपरोक्त राजस्थानी रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता का ही इस नाम से नवीन संगठन हुआ। इसने राजस्थानी शोध निबंधमाला का प्रकाशन प्रारभ किया था। अब अस्तित्व में नहीं है।

भारत में लोक कथा संकलन कार्य—लोक कथा शब्द उन लोक प्रचलित कथानकों के लिये काम आता रहा है जो मौखिक अथवा लिखित परंपरा से पीढ़ी दर पीढ़ी क्रमशः उपलब्ध होते रहे हैं। देश में कथाओं और आख्यायिकाओं का महान वाङ्मय लोक कथाओं की ही साहित्यिक देन है। इंदावती, लीलावती, पद्मावती, कुवलय जैसी कथाएं लोक कहानियों का साहित्यिक रूपान्तर है। वर्तमान समय में विद्वान लोगों का ध्यान अपढ़ तथा असभ्य जनसमूह के वैज्ञानिक अध्ययन की ओर आकर्षित हुआ है, तभी से इन लोक कथाओं की मौखिक परंपराओं का संकलन, अध्ययन और सपादन होने लगा है। सन् १८५६ में जर्मन विद्वान बेनीफी का कहना था कि संसार में व्याप्त लोक गाथाओं का मूल उद्‌गम स्थान भारत देश ही है। इसके बाद ब्लूम फील्ड, टॉनी और पेन्जर आदि पाश्चात्य सज्जनों ने इस देश की कथाओ का गंभीर अनुसंधान किया। डा० वेरियर एल्विन के ग्रंथ फोक टेल्स ऑफ महाकोशल की भूमिका के आधार पर नार्मन ब्राउन ने बताया है कि भारत तथा उनके पड़ोसी देशों में तीन चार हजार लोक कथाएं प्रकाशित हो गई हैं। ब्लूम फील्ड ने तो भारतीय कथाओं में प्रचलित कथानक और अभिप्रायों [मोटिफ्स] का बड़े सुन्दर ढंग से अनुशीलन किया हैं। जिससे भारतीय लोक कथाओं का बड़ा महत्व बढ़ा है। परन्तु आजकल के विद्वान कथानकों की उद्‌भव भूमि के पक्ष में नहीं रहे। मगर अध्ययन की दृष्टि से भारतवर्ष बहुत ही महत्वशाली देश है। यहां संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और आधुनिक भाषाओं में अनेक मध्यकालीन लोक कथाओं का लिखित साहित्य मिलता है। तभी तो १९ वीं शताब्दी के विद्वानों ने लोक कथा का सबसे बड़ा उत्स भारत को बताया है। अतः भारतीय लोक कथाओं ने विश्व भर में अपना स्थान स्थापित कर लिया है। आज तो महाभारत, पंचतंत्र, जातक और कथासरित्सागर के सिवाय जैन साहित्य का लोक कथा भंडार भी खुलता जा रहा है। शाक्तों, पाशुपतों, नाथों, वैष्णवों, और सौगतों के ग्रंथों का प्रकाशन क्रमशः होता जा रहा है।

राजस्थान में लोक कथाएं—राजस्थान में लोक कथा को बात या बारता कहा जाता है। रचना प्रकार की दृष्टि से ये बातें गद्य, पद्य और गद्य-पद्य मिश्रित रूपों में मिलती हैं। साथ ही साथ कथाओं की दो अन्य समानान्तर धाराएं राजस्थान में प्रभावित होती रही हैं। एक धारा तो उन कथाओं की थी जिनको लिपिबद्ध स्वरूप मिला और दूसरी धारा वह थी जो यहां के निवासियों के कंठों में ही जीवित रही, अर्थात् ये कथाएं केवल कही व सुनी जाती रहीं। उन्हें किसी ने लिखने का प्रयत्न नहीं किया। लोक कथाओं के यहां अखंड खजाने भरे हैं। इनको लिपिबद्ध कर लेने की परंपरा यहां प्राचीन काल से चलती आई है।

विविध वार्ताओं के सैंकड़ों संग्रह राज्य पुस्तकालयों, ज्ञान उपासरों एवं इधर उधर पुख्ता लोगों के पास सर्वत्र मिल जाते हैं। राजस्थान या मारवाड़ में कई लोग कथा कहने का व्यवसाय भी करते हैं। वे अपनी वंश परंपरा से लोक कथाओं द्वारा निजी आश्रयदाताओं अथवा यजमानों का मनोरंजन करते आये हैं। ऐसे व्यक्तियों में राव, भाट, रावल, मोतीसर ढाढ़ी, ढोली आदि कहानी सुनाने की सुन्दर कला के मूल रूप में प्राप्त किये हुए हैं। ये लोग एक कथा के साथ अनेक कथा कह जाते हैं। बीच में कथा प्रसंग सुभाषित के रूप में भांति भांति के छंद एवं दूहों [दोहों] का कावा देते हैं। नाना विधि की अभिनयता और ध्वनियों से सजा करके बात कहते हैं। जिसको सुनकर श्रोता लोग मंत्र मुग्ध हो जाते हैं। संध्या समय सदैव मोहल्लों के लोग इकठ्ठे होकर भी कहानी कहते हैं और घरों में बच्चों को बहलाने के लिये बुड्ढ़ी नानी - दादियां इस कथा प्रथा को निभाये चलती हैं। अत: राजस्थान में मौखिक कथाओं का भरपूर भंडार हैं।

राजस्थानी में लोक कथा संग्रह और प्रकाशन – राजस्थान में १४ वीं शताब्दी के गद्यांश मिलते हैं। जिनमें छोटी छोटी कथाओं के अनेक 'बाला व बोध' जैन आगमों की एक रचना परिपाटी है। उनमें से किसी एक की कुछ धार्मिक लोक कथाएं मुनि जिनविजयजी द्वारा संपादित की गई हैं। श्री अगरचन्द नाहटा ने १५ वीं शती की २५-३० जैन रासो की लोक कथाएं मरु भारती, शोध पत्रिका, राजस्थान भारती, वरदा, कल्पना, आदि पत्रों में प्रकाशित करवाई हैं। लगभग १७ वीं शताब्दी की दो बातें, 'खीची नींवा गंगावत रौ दुपहरो, और 'बात बणाव' का संपादन करके श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने राजस्थान पुरातत्व मंदिर से प्रकाशित करवाई हैं। नाहटाजी ने भी ऐसे कई वर्णन नागरी प्रचारिणी सभा काशी को प्रकाशनार्थ दिये हैं।

१७ वीं शताब्दी से राजस्थान में सम्राट अकबर के समय से ख्यातों बातों का अधिक प्रचलन होता रहा है। मगर बातों की अधिक हस्तलिखित प्रतियां १८ वीं १९ वीं शताब्दी की ही मिलती हैं। अत: ख्यातों से ही बातें बनती हैं। इस विषय के लिये राजस्थानी शोध संस्थान जोधपुर की परंपरा पत्रिका का का 'बात विशेषांक' [१९५८] दृष्टव्य है। उसमें बातों के तीस वर्गीकरण लिखे हैं। श्री रावत सारस्वत ने अपने निबंध 'राजस्थानी का बात साहित्य' में कई प्रकार से वर्गीकरण किया है। उनका इसी विषय पर दूसरा लेख संयुक्त राजस्थान में छपा है।

व्रत कथाओं के सम्बन्ध में श्री नाहटाजी ने एक लेख लिखा था। इस विषय में श्रीमती चंपादेवी राजगड़िया [कलकता] की १२ महीनों का त्यौहार नामक पुस्तक भी दृष्टव्य है। श्री उदयवीर शर्मा की लेखमाला, राजस्थान व्रत

कथाएं, बराबर वरदा में प्रकाशित हो रही हैं। श्री मोहनलाल पुरोहित की व्रत कथा संकलन भी इसी कड़ी की महत्वपूर्ण प्राप्ति है। कहावतों की सैकड़ों कहानियां पंडित श्रीलालजी मिश्र को लेखमाला में मरुभारती से प्रकाशित होती रही हैं। इस तरह की कहावती कहानियों के दो लेख इस प्रबंध लेखक के भी वरदा नामक शोध पत्रिका में छपे हैं। दोहे आदि पदों से सम्बन्धित लोक प्रवाद-रूप कथाएं पर्याप्त मिलती हैं। जिनमें डॉ. कन्हैयालाल सहल ने छोटे छोटे उपाख्यानों के दो ग्रंथ प्रकाशित करवाये हैं। श्री मनोहर शर्मा ने भी इनके चार शतक अपती वरदा पत्रिका में प्रकाशित किये हैं। राजस्थानी कहावतों का उद्‌गम और राजस्थानी लोक कथाएं नाम से दो लेख भी लिखे हैं। जिनके पांच सौ लोक मुख पर अवस्थित कथाओं का निर्देशन भी किया है। श्री अगरचन्द नाहटा ने वाग्विलास कथा संग्रह नाम से एक निबंध प्रकाशित करवाया है। उन्होंने लिखा है कि राजस्थानी बातों के पचासों गुटके मैंने देखे हैं। उनमें से कई प्रतियों में तो ६०-७० और १०० कथाएं मिलती हैं। [१]

राजस्थानी कथाओं का प्रथम प्रकाशन – राजस्थान के प्राचीन साहित्यकारों ने सैकड़ों लोक कथाओं को लिखकर सुरक्षित रखा है। पर मुद्रण युग में पहले पहल बम्बई के प्रथम प्रकाशक खेमराज श्री कृष्णदास ने 'रतना हमीर' की बात और 'पन्ना बीरमदे' की बात को प्रकाशित किया। संवत् १९५६ में पंडित किशनलाल श्रीधर [शिवलाल] ने अपने ज्ञान सागर छापेखाने से 'पलक दरियाव' की कथा प्रकाशित की थी। आज से ३५ वर्ष प्रथम श्री घनश्यामदासजी बिड़ला की प्रेरणा से श्री सूर्यकरणजी पारीक ने राजस्थानी बातों का कठिन शब्दों के अर्थ व टिप्पणियों के साथ सुसंपादित संस्करण प्रकाशित किया था। उनके पश्चात् वहीं से डॉ. कन्हैयालाल सहल ने चौबोली नामक राजस्थानी की एक बड़ी लोक कथा का संपादन किया। इसमें 'खींवे बींजे री बात' 'राजा मान्धाता री बात' 'सूर अर सतवादी री बात' आदि कई उप-कथाएं भी प्रकाशित हुई हैं। स्वर्गीय पारीकजी के ग्रंथ राजस्थानी बातों में भी जगदेव पंवार, जगमाल मालावत, और वीरमदे सोनगरा आदि नामों से ७ लोक कथाएं प्रकाशित हुई हैं। श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने बातों के दो संग्रह और राजस्थान विद्यापीठ उदयपुर से छपवाये हैं। इन्होंने राजस्थानी, राजस्थान भारती, और राजस्थानी निन्ध-माला में हस्तलिखित प्रतियों से संपादित कर बहुत सी बातें प्रकाशित करवाई हैं। जिनकी सूची निम्न प्रकार है। १.राजा भोज माघजी पंडित और डोकरी री बात, २. बात देपालदे री, ३. बात साहूकार रै बेर री, ४. बात जसमा ओडणी री, ५. फोफानंद री, ६. बिणजारै बिणजारी री, ७. सयणी चारणी

१ वरदा लोक साहित्य विशेषांक पृ १०१

री , ८. सांतल सोम री , ९. दूदे जोधावत री , १०. विसनजी बेखरच री आदि । आपने सैकड़ों बातों की सूची भी प्रकाशित करवाई है । ऐसी सूची – (३७०. राजस्थानी बातों की) रानी लक्ष्मीकुमारी चूड़ावत ने भी अपने मांजलरात ग्रंथ में प्रकाशित की है । इन्होंने मूमल, गिर ऊंचा ऊंचा गढ़ां, कं रं चकवा बात , हुंकारो दो सा आदि कथा ग्रंथों में लोक कथाएं लिखी हैं। श्री अगरचंद नाहटा ने वरदा , जैन-जगत , अमर-ज्योति आदि पत्र पत्रिकाओं में राजस्थानी लोक बातों व कथाओं को प्रकाशित करवाया है । उपरोक्त महाशय ने अपने भतीजे श्री भंवरलाल नाहटा से जैन कवियों के लोक कथाओं संबंधी रासों का सार लिखवाकर प्रकाशित करवाया है। श्री रावत सारस्वत ने अपनी मरुवाणी पत्रिका में अनेक लोक कथाओं को प्रकाशित किया है । श्री बद्री प्रसादजी साकरिया ने भी उपरोक्त पत्रिका में लोक कथाएं भेजी हैं । श्री पुरुषोत्तमदास मेनारिया का राजस्थानी लोक कथाओं में पूर्ण सहयोग है । उनका राजस्थानी लोक कथा नामक लेख आजकल (मई १९५४) के लोक कथा अंक में प्रकाशित हुआ है , जिसके अनुसार इन्होंने अपने पास ५०० अनेक कथाओं का संग्रह बताया है । इनके ४ कथा संग्रह जयपुर से और एक ‘ राजस्थानी लोक कथाएं ’ आत्माराम एंड. सन्स दिल्ली से प्रकाशित हो चुके हैं । श्री कन्हैयालाल सहल ने लोक कथाओं के संबंध में बहुत ही कार्य किया है । सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक उपाख्यानों के दो भाग और प्रकाशित करवाये हैं । इनकी राजस्थानी लोक कथाएं और वीर गाथाएं नाम की दो पुस्तकें वानर प्रकाशन जयपुर से प्रकाशित हुई हैं। विशेषकर राजस्थानी लोक कथाओं के मूल अभिप्रायों पर ‘ नटो तो कहो मत ’ नामक पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। आप अभिप्रायों [मोटिफ्स] के संबंध में व्यापक रूप से अध्ययन कर रहे हैं । जो लोक कथाओं के लिये विशिष्ट प्रयत्न है । राजस्थानी लोक साहित्य के विविध अंगों को प्रकाश में लाने वाले कर्मठ साहित्यिक श्री मनोहर शर्मा का नाम भी लोक कथाओं के प्रसंग में उल्लेखनीय है। इन्होंने राजस्थानी लोक कथाओं पर कई महत्वपूर्ण निबंध प्रकाशित किये हैं और गीत कथा नाम से प्राचीन ९ वीरों की शौर्यपूर्ण कथाएं लिखी हैं । इन पंक्तियों के लेखक का भी एक कथा गीत निबंध जसमल ओडणी नाम से मरुवाणी [संवत् २०१२] में प्रकाशित हुआ है। और बटोही नाम का एक कथा काव्य मारवाड़ी भात भरने की प्रथा पर लिखा है । कई मौखिक कथाओं को श्री मुरलीधरजी व्यास ने भी हिन्दी रूपान्तरित किया है । इन के साथ श्री मोहन लालजी प्रोहित ने भी लोक कथा के संग्रह तैयार किये हैं। मोहनलालजी स्वतंत्र रूप से भी लोक कथा कार्य कर रहे हैं । श्री मनोहर प्रभाकर एवं यादवेन्द्र चन्द्र शर्मा की दृष्टि भी इस क्षेत्र की ओर खूब है ।

हिन्दी और गुजराती के क्षेत्रों से भी कुछ राजस्थानी कथाओं के संग्रह ग्रंथ निकले हैं। श्री निरंजन वर्मा और जयपाल परमार ने लोक कथा ग्रंथावली से प्रकाशित होने वाले 'देश देश नीं लोक कथाओं' का पांचवा भाग राजस्थानी बातों के नाम से भारतीय साहित्य संस्थान लिमिटेड, अहमदाबाद से प्रकाशित करवाया है। सौराष्ट्र के अग्रणी लोक साहित्यिक श्री झवेरचंद मेघाणी ने 'सौराष्ट्र नीं रसधार' के पांच भागों में तथा अन्य गुजराती ग्रंथों में राजस्थानी लोक कथाओं को गुजराती में प्रकाशित करवाया है। पूना से श्री नारायणदास धूत राजस्थानी वीर नाम की पत्रिका निकालते हैं जिसमें राजस्थानी विद्वानों के लोक साहित्य संबंधी लेख छपते हैं। इस प्रबंध के लेखक ने भी अपनी प्रकाशित पुस्तक ग्होयी (संवत् २०१४) में बाणी को बैर, रोही री रीछ, फोगसी रो न्याव, काछबो, फदड़पंच आदि लोक कथाएं संकलित की हैं। ५० लोककथाओं की पुस्तक 'घर की रेल' को लेखक शीघ्र ही प्रकाशित करबाने वाला है। श्रीकान्त व्यास ने राजस्थानी लोक कथाएं नामक पुस्तक किताब महल इलाहाबाद से प्रकाशित करबाई हैं। यह भारतीय लोक कथामाला की तीसरी पुस्तक है। राजस्थानी प्रसिद्ध लोक कथाओं पर सैकड़ों ख्याल भी लिखे जा चुके हैं। जिनके संबंध में श्री मनोहर शर्मा एवं श्री अगरचन्दजी नाहटा के निबंध भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर की लोक कला नामक पत्रिका में प्रकाशित हुए हैं। इनके अलावा आजकल कुछ उदीयमान लोक कथा संग्राहक हमारे ध्यान में और आये हैं। इनमें सर्व प्रथम श्री गोविन्द अग्रवाल हैं। इन्होंने मरु भारती में क्रमशः १५०० लोक कथाएं 'राजस्थानी लोक कथा कोश' नामक शीर्षक से प्रकाशित करवाई हैं और अभी शीर्षक चालू है। श्री मोतीसिंह जी राठौड़ भी कथाएं लिखते हैं। श्री चन्द्रदान चारण, श्री सूर्यकरण पारीक और श्री मूलचन्द प्राणेश आदि महानुभाव भी भारतीय शोध संस्थान बीकानेर में लोक साहित्य अनुसंधान के साथ कथा अन्वेषण भी कर रहे हैं।

राजस्थान में लोक वार्ता साहित्य के संग्रहालय—बीकानेर राजकीय अनूप संस्कृत पुस्तकालय में अच्छा लोक साहित्य उपलब्ध होता है। जैन लोक साहित्य का सबसे बड़ा संग्रह 'अभय जैन पुस्तकालय' बीकानेर है। बीकानेर के ज्ञानभंडार में भी लोक कथाओं के कई गुटके मिलते हैं। उदयपुर में सरस्वती भंडार, कलकत्ता में राजस्थान रिसर्च सोसाइटी, बिड़ला पुस्तकालय, बंगाल हिन्दी मंडल, राजस्थान पुरातत्व मंडल जोधपुर, जयपुर, राजस्थान शोध संस्थान उदयपुर आदि लोक वार्ता साहित्य के अच्छे संग्रहालय हैं। गुजरात और जैसलमेर के उपासरे भी लोक साहित्य के बड़े संरक्षक हैं।

हिन्दी में जनपदीय कहावतों का प्रकाशन — लोकोक्तियों के अन्तर्गत मुहावरे,

अनुभवप्रसूत सांकेतिक शब्द योजना और पहेलियां आती हैं। राजस्थानी विद्वानों ने उनके भिन्न भिन्न रूपों का पता लगाकर मनोवैज्ञानिक मूल्यांकन किया है। राजस्थानी कहावतों के संकलन की निसन्देह सफलता हैं। डा० श्री कन्हैयालाल सहल एक ऐसे प्रामाणिक विद्वान हैं कि उनके मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से उनकी संकलित कहावतों में राजस्थान के जन जीवन तथा विचारों पर गहरा प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अपनी पुस्तक का एक अत्यंत महत्वपूर्ण अंश (डॉ. सहल द्वारा ही लिखी) ६२ पृष्ठों की भूमिका में लिखा हैं। जिसमें कहावतों की पृष्ठभूमि पर अत्यन्त व्यापक रूप में प्रकाश डाला है। वेद, उपनिषद, संस्कृत साहित्य इसे लेकर विदेशों की कहावतों के विकास का उल्लेख भी इस भूमिका में है। राजस्थान के साहित्य के संबंध में जो मूल्यवान शोध कार्य हो रहा है, यह ग्रंथ उसमें एक मूल्यवान देन है।

सहलजी की हाल ही में यह पुस्तक [राजस्थानी कहावतें] अर्थ सहित बंगाल हिन्दी मंडल कलकत्ता द्वारा प्रकाशित हुई है। जिसमें २१०९ विवेचनपूर्ण कहावतें संकलित हैं। इससे पहले राजस्थानी कहावतों पर एक शोधपूर्ण प्रबंध भी इन्होंने लिखा था। जिस पर राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा उन्हें डाक्टरेट की उपाधि भी प्रदान कर दी गई। वह ग्रंथ (१९५८) में भारतीय साहित्य मंदिर दिल्ली से छपा था। सहलजी ने इस विषय की पूरी छान बीन करने की ठान रखी हैं। प्रोफेसर नरोत्तमदासजी स्वामी, मुरलीधरजी व्यास द्वारा संपादित संवत् २००६ में राजस्थानी कहावतों के दो बड़े संकलन राजस्थान रिसर्च सोसाइटी कलकत्ता ने प्रकाशित किये हैं। इनसे पूर्व कहावतों पर जो ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं वे केवल गिनती के ही हैं। जोधपुर के श्री जगदीशसिंहजी गेहलोत द्वारा संकलित राजस्थान की कृषि कहावतें, श्री लक्ष्मीलाल जोशी द्वारा संकलित मेवाड़ की कहावतें, श्री रतनलाल मेहता की मालवीय कहावतें, श्री मेनारिया द्वारा संग्रहित राजस्थानी भीलों की कहावतें आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। मालवी बोली में श्री वसन्तीलाल बंग ने संकलित सामग्री में लगभग २ हजार से अधिक लोकोक्तियां और एक हजार मुहावरे संग्रह किये हैं।[1] और श्री ओमप्रकाश अनूप ने मालवी लोक पहेली पर निबंध लिखा है। राजस्थानी में भी ऐसे बहुत से लेख मिलते हैं।

प्रवृति काल या द्वितीयोत्थान के दूसरे दशक में राजस्थानी साहित्य की खोज करने वाली संस्थाएं व पत्रिकाएं — आजकल राजस्थान के हर एक शहर में विद्वानों द्वारा लोक साहित्य संग्राहक संस्थाएं प्रारंभ होने लगी हैं। उन संस्थाओं के कार्यकर्ता सर्व प्रथम एक शोध पत्रिका निकालकर संस्था का नाम सार्थक

१. लोक कला निबंधावली भाग २

करते हैं। इस तरह से कई लोक संस्थाएं लोक पत्रिकाएं निकाल रही हैं। आय वृद्धि करने, संस्था बनाने और अपनी विद्वता एवं साहित्य प्रेम का परिचय देने के लिये राजस्थानी कर्मठ विद्वान अपनी अपनी पत्रिकाओं को लोक साहित्य से ही संपूर्ण करते हैं। वे अपने देश जाति की सभ्यता के विकास की, उनके जीवन की गति विधि को और उनके सांस्कृतिक धरातलों के विभिन्न स्तरों की झांकियां मौखिक साहित्य में उपलब्ध कर आनन्द मग्न रहते हैं। वे ही स्वान्त-सुखाय सेवा करते हैं और अपने इस परमहित रंजक साहित्य को विलुप्त होने से बचाते हैं। ऐसी राजस्थानी आधुनिक लोक साहित्य संस्थाएं ये हैं:

१ - भारतीय लोक कला मंडल उदयपुर — इस संस्था को हम बहुमुखी लोक प्रवृतियों के कारण प्रथम स्थान देते हैं। इसकी मुख्य प्रवृतियों में खोज विभाग सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रवृति है। इसने लोक गीतों के संगीत पक्ष को लेकर विवेचनात्मक और विश्लेषणात्मक कार्य किया है जो संभवतः राजस्थान में ही नहीं भारतवर्ष में भी प्रथम गिना जा सकता है। यहां तक गीतों की प्रमुख ध्वनियों को ध्वनि संकलन यंत्र द्वारा संकलित करते हैं और खोज की हुई एकत्रित मूल्यवान सामग्री से, फोटो फिल्म विभाग के कर्मचारी उस सामग्री के मूर्त रूप को स्थिर और चलचित्रों द्वारा अंकित करते हैं। यहीं से लोक कला नाम की पत्रिका निकलती है। यह अपने विषय की एकमात्र भारतीय पत्रिका है। इसमें लोक कला संबंधी खोज और अध्ययन पूर्ण सामग्री रहती है। यहां से करीब डेढ़ दर्जन लोक ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं, जिनमें से राजस्थान के लोक संगीत, राजस्थानी लोकोत्सव, राजस्थानी लोक-नृत्य, राजस्थानी लोक-नाट्य, राजस्थान के लोकानुरंजन, लोक कला निबंधावली [भाग १, २, और ३] राजस्थानी लोक जीवन चित्रमय, और राजस्थानी लोक गीतों का स्वर सौन्दर्य आदि मुख्य हैं। संस्था अभ्युदय के उच्च आसन पर आसीन है।

२ - राजस्थान भाषा प्रचार सभा, जयपुर — इस संस्था से मरुवाणी [संवत् २०१०] नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन होता है, जिसमें लोक कथा, लोक-गीत और कहावतें मुहावरे आदि प्रकाशित होते हैं। वास्तव में लोक साहित्य और राजस्थानी भाषा का प्रचार करने में इसने सबसे अधिक कार्य किया है। संस्था संचालक एवं पत्रिका संपादक श्री रावत सारस्वत सर्वश्रेष्ठ लोक कार्य-कर्ता हैं।

३ - राजस्थान साहित्य समिति, बिसाऊ — राजस्थानी साहित्य समिति बिसाऊ ने महाकवि ईसरदास के सम्मान में ईसरदास आसन की स्थापना की है। इस आसन से प्रति वर्ष कम से कम एक भाषण विशेष रूप से तैयार करवाकर प्रचारित करने की योजना है। डॉ. ममोहर शर्मा और श्री तुलारामजी गौड़ एम. ए.

के सम्पादकत्व में वरदा नामक त्रैमासिक शोध पत्रिका भी निकलती है । डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में इस पत्रिका ने लोक साहित्य और लोक वार्ता के संग्रह प्रकाशन का और व्याख्या का जो स्तर बनाया है वह देश भर में अपने ढंग का है ।

४ - राजस्थानी शोध संस्थान , जोधपुर — संपादक श्री नारायणसिंहजी भाटी की देख रेख में परंपरा नामक शोध पत्रिका प्रकाशित होती है । राजस्थानी लोक साहित्य , भाषा , कला व संस्कृति का वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करना पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है । इसका बात अंक बड़ा ही वैविध्यपूर्ण है । परंपरा का प्रथम अंक लोक साहित्य पर प्रस्तुत किया गया है । इस अंक में कोमल कोठारी एवं विजयदान देथा के महत्वपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं ।

५ - बिड़ला एज्युकेशन ट्रस्ट का राजस्थानी शोध विभाग, पिलानी — लोक साहित्य प्रकाशन के उपरान्त मरुभारती नाम की एक त्रैमासिक शोध पत्रिका का बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रकाशन होता है । यह राजस्थानी लोक साहित्य और संस्कृति की प्रमुख पत्रिका है । इसके संपादक डॉ. कन्हैयालाल सहल हैं । इसमें लोक कथा के मूल अभिप्रायों [मोटिफ्स] पर लेख लिखे जाते हैं और लोक कथा कहावतें प्रहलिका साहित्य को प्रमुखता दी जाती है ।

६ - भारतीय विद्या मंदिर शोध प्रतिष्ठान , बीकानेर — यह संस्था भी आज-कल शोध कार्य में प्रयत्न शील है । जिसमें केई प्रतिष्ठित विद्वान कार्य करते हैं। खोज , प्रकाशन के सिवाय यहां से एक लोक साहित्य पत्रिका भी निकलने वाली है । इसके कुलपति श्री नरोत्तमजी स्वामी हैं । श्री अक्षयचन्द्रजी शर्मा , सत्य-नारायणजी पारीक , मूलजन्दजी पारीक आदि महानुभाव इसके मुख्य कार्य-कर्ता हैं ।

७ - राजस्थान विश्व भारती , बीकानेर — राजस्थान विश्वभारती संस्था भी लोक साहित्य कार्य को बड़े उत्तम ढंग से कर रही है । इसकी पत्रिका निकालने की योजना पूर्ण हो चुकी है । यहां के व्यवस्थापक श्री विद्याधरजी शास्त्री हैं । श्री गोरीशंकरजी आचार्य संस्था के कुलपति हैं । बीकानेर डिवीजन के बड़े बड़े शहरों से अच्छे अच्छे संस्कृत के विद्वान इस संस्था की सदस्यता ग्रहण करके अपना अहोभाग्य समझते है ।

८ - पुरालेख विभाग बीकानेर — यह राजकीय अनुसंधान संस्था श्री नाथूरामजी खड़गावत की अध्यक्षता में कार्य करती हैं । इसका कार्यालय हाल (१९६३) ही में बीकानेर आया है । श्री खड़गावतजी राजस्थान में चोटी के अन्वेषक माने जा चुके हैं । वास्तव में ये कर्मठ शोधकर्ता एवं आदर्श विद्वान हैं । आपके निर्देशन में

एक महत्वपूर्ण ग्रंथ आजादी का इतिहास लिखा जा रहा है। राजस्थान भाषा एवं प्रशासन कार्य में राजस्थानी के उपयोग की अतुलनीय सामग्री यहां संग्रहीत है। इस तरह से राजस्थान में शोधपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं की घटा सी उमड़ रही है। राजस्थान विकास, संयुक्त राजस्थान, अमर ज्योति, कल्पना और बाग-विलास आदि अनेक पत्रों द्वारा लोक साहित्य संकलन एवं प्रकाशन हो रहा है। रतनगढ़ से ओळमो और कुरजां बीकानेर से वातायन, जोधपुर से ज्वाला और प्रेरणा पत्र निकलते हैं। इन सबमें पर्याप्त लोक साहित्य समावेशित रहता है। इस समय राजस्थानी लोकवार्ता के क्षेत्र में आकाश वाणी का योगदान नहीं भुलाया जा सकता। असंख्य लोक गीतों, लोक नाट्यों लोक गाथाओं एवं लोक कथाओं का प्रसारण यहां से हुआ है और होता रहता है। यहां राजस्थान के अनेक लोक गायकों को अपनी कला का पुरस्कार भी मिला है और एक तरह से उसकी सुरक्षा का साधन भी निर्मित हुआ है। आकाश वाणी से लोक वार्ता विषयक अनेक वार्ताएं भी प्रसारित की हैं।

राजस्थान की संस्कृति के संपूर्ण अध्ययन की दृष्टि से लोक वार्ता के क्षेत्र में जो कार्य हो रहा है, वह बहुत शीघ्र ही राजस्थानी भाषा एवं राष्ट्रीय संस्कृति के विकास में एक महत्वपूर्ण तथ्य सिद्ध होने वाला है।

राजस्थान साहित्य अकादमी [संगम] उदयपुर–राजस्थान सरकार द्वारा स्थापित यह संस्था प्रदेश की साहित्यिक गतिविधि को प्रोत्साहित और संगठित करने हेतु निर्मित की गई है। इसकी स्थापना सन् १९५८ में हुई। इस संस्था के माध्यम से लोक साहित्य के क्षेत्र में भी कार्य प्रारंभ हुआ है। पुस्तक प्रकाशन की योजना में कुछ बालोपयोगी लोक कथाओं, शोध ग्रंथों एवं अपनी मासिक पत्रिका में लोक साहित्य संबधी विषयों के लेख प्रकाशित किये हैं। अकादमी ने लोक साहित्य के संरक्षण एवं संग्रह आदि समस्या पर सेमीनार एवं सिंपोजियम भी आयोजित किये हैं। राजस्थान के लोक साहित्य अध्येता साहित्य अकादमी से आर्थिक सहायता प्राप्त करके अपने कार्य को बढ़ाने के लिये भी उत्सुक हैं। राजस्थान की साहित्यिक पत्र पत्रिकाओं को भी अकादमी ने आर्थिक सहायता प्रदान की है।

राजस्थान संगीत नाटक अकादमी, जोधपुर – सन् १९५९ में राजस्थान सरकार ने इस संस्थान की स्थापना की। संगीत नाटक अकादमी ने लोक संगीत के पक्ष पर महत्वपूर्ण कार्य संपादित किया है। लोक गीतों की छः पुस्तकों में पाठ संग्रह प्रकाशित किये हैं। इसी प्रकार श्रीमती कमला सोमाणी द्वारा संपादित एवं स्वरलिपि-बद्ध पुस्तक गीतायन प्रकाशित की है। हाल ही में सुश्री सुधा राजहंस की पुस्तक 'चिरमी' भी स्वरलिपि सहित प्रकाशित हुई है। इसमें जैसलमेर मारवाड़ क्षेत्र के लंगा जाति के गीतों का संकलन है। लंगा जाति के गायन

प्रकार का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

अकादमी ने राजस्थान के लोक वाद्यों का महत्वपूर्ण संग्रह किया है और उनकी एक सूची भी प्रकाशित की है। लगभग ७००-८०० घंटों का लोक संगीत रेकॉर्ड भी किया है। लोक नाटक एवं लोक गाथाओं का रेकॉर्डिंग भी किया गया है।

रूपायन संस्थान, बोरुन्दा—गांव में स्थापित यह संस्था प्रमुखतया लोक वार्ता के क्षेत्र में ही काम कर रही है। इस संस्था ने अपने उद्देश्य में स्पष्टतः लिखा है कि वह राजस्थान लोक वार्ता क्षेत्र में ही कार्य करेगी। संस्थान ने अब तक नौ वृहत भागों में राजस्थानी लोक कथाओं का प्रकाशन 'बातां री फुलवाड़ी' के नाम से किया है। यह कार्य राजस्थानी भाषा में ही किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त वांणी नामक मासिक पत्रिका का प्रकाशन भी चल रहा है। गांव में ही संस्था का अपना मुद्रणालय है। संस्थान ने हजारों की संख्या में लोकगीत, लोक-कथाएं एवं कहावतें मुहावरे एकत्रित कराये है जो शनः शनैः प्रकाशित किये जाने हैं। 'बातां री फुलवाड़ी' का लेखन कार्य श्री विजयदान देथा द्वारा किया जा रहा है। हजारों पृष्ठों की सामग्री राजस्थानी भाषा में प्रकाशित हो चुकी है।

राजस्थान संस्कृति परिषद, जयपुर — यह संस्था रानी लक्ष्मीकुमारीजी चूड़ावत द्वारा संचालित है। संस्था का मुख्य कार्य राजस्थानी भाषा के प्रकाशन करना एवं राजस्थान की संस्कृति के उत्थान के लिये प्रयत्न करना है। लोक गीतों एवं लोक कथाओं के काफी प्रकाशन यहां से हुए हैं।

प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर—इस संस्था को भी राजस्थान सरकार ने स्थापित किया है। संस्था का मुख्य कार्य राजस्थान में प्राप्य हस्तलिखित ग्रंथों का सग्रह एवं उनको संपादित करके प्रकाशित करना है। राजस्थानी, ब्रज, पाली, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा के हजारों हस्तलिखित ग्रंथ संस्था के संग्रह में है। इसी संग्रह में ऐसी बहुतसी सामग्री है जिसका संबंध सीधा लोक वार्ता से है। कथा, विश्वास, मान्यता एवं विचारों का बहुत बड़ा आगार इस संग्रहालय में प्राप्त हो जाता है। यहां से दो तीन कथा संग्रहों का प्रकाशन भी किया गया है।

हस्तलिखित ग्रंथ साहित्य में प्राप्त लोक वार्ता का बहुत बड़ा ऐतिहासिक महत्व है। वस्तुतः यह एक बहुत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक काल निर्णय का साधन भी है।

अन्य अध्ययन क्षेत्र — राजस्थान प्रदेश के राजनैतिक संगठन के उपरान्त राज्य सरकार एवं केन्द्रीय सरकार के तत्वावधान में अनेक विभाग भी लोक वार्ता संबंधी कार्यों में अपना योगदान दे रहे हैं। इनमें प्रमुख केन्द्रीय कृषि मंत्रालय

के अन्तर्गत कार्य करने वाला एरिड जॉन विभाग है, जो जोधपुर में स्थापित है। मुरुस्थलीय प्रकृति और जन-जीवन पर पर्याप्त सामग्री यहां एकत्रित की जा रही है और उसका वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इसी प्रकार राज्य सरकार का जनगणना विभाग भी विभिन्न ग्रामों एवं जातियों के अध्ययन तैयार कर रहा है। इन्हीं के साथ राज्य सरकार का गज़ेटियर विभाग भी जिले वार जन सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रामाणिक सामग्री को एकत्रित करने में संलग्न है।

केन्द्रीय सरकार के जिओलॉजिकल एवं बॉयोलॉजिकल सर्वेक्षण विभाग भी तथ्यों को संग्रहीत कर रहे हैं।

इनके अलावा राजस्थान के तीनों विश्वविद्यालय [जोधपुर, जयपुर एवं उदयपुर] के अनेक स्नातक डॉक्टरेट के लिये लोक वार्ता संबंधी शोध ग्रंथ तैयार कर चुके हैं और अभी भी कर रहे हैं। लोक वार्ता विषयक ग्रंथ डॉ. स्वर्णलता अग्रवाल, डॉ. कन्हैयालाल शर्मा, डॉ. चंद्रशेखर भट्ट, डॉ. मनोहर शर्मा, डॉ. ओमानंद सारस्वत आदि का कार्य सामने आ चुका है। लगभग २५ - ३० स्नातक अब भी इसी विषय पर अपना कार्य संपन्न कर रहे हैं।

जोधपुर विश्वविद्यालय के हिन्दी एवं समाज शास्त्र विभाग में लोक वार्ता संबंधी एक एक प्रश्न-पत्र को भी एम. ए. कक्षाओं के लिये स्वीकृत किया गया है। अन्य विश्वविद्यालय भी इस दिशा में निर्णय लेने वाले हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त राजस्थान के लगभग सभी दैनिक, साप्ताहिक, मासिक पत्र भी लोक वार्ता संबंधी सामग्री प्रकाशित करते रहते हैं।

◈ नृतत्वशास्त्री के लिये लोक-वांगमय, सम्पूर्ण संस्कृति न होकर सम्यक संस्कृति का केवल एक अंग-मात्र है। इसके अंतर्गत गाथाएं, आख्यान या अवदान, लोक कथाएं, लोकगीत, कहावतें, पहेलियां, गीति-कथाएं तथा और भी कम महत्व के कुछ प्रकार समाहित हो सकते हैं, किन्तु लोक कला, लोक नृत्य, लोक संगीत, लोक-पहिनाव, लोक दवा-दारू, लोक रीति-रिवाज व लोक विश्वास इसमें शामिल नहीं किये जा सकते। निस्संदेह किसी भी शिक्षित व अशिक्षित समाज में इन सबका अध्ययन नितांत आवश्यक है। सभी लोक वांगमय मौखिक रूप से सतत उपलब्ध होता रहता है, किन्तु समाज की सभी मौखिक उपलब्धियां लोक-वागमय में समाहित नहीं की जा सकतीं। —विल्यम बॉस्कम

२

राजस्थान और राजस्थानी

लोक वार्ता के अध्ययन के लिये यह अत्यंत आवश्यक है कि सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक कारणों से निर्मित विशिष्ट भौगोलिक क्षेत्र में अपने कार्य को सीमित किया जाय। यों लोक वार्ता के तत्व विश्वजनीन होते हैं, किन्तु उनका उद्भव एवं विकास निपट राष्ट्रीयता अथवा क्षेत्रीयता ग्रहण किये हुए रहते हैं। मनुष्य, जिस प्रकार अपने निपट वैयक्तिक एवं शारीरिक रूप में विश्वजनीन एकता का आभास देता है [वह चाहे किसी धर्म, देश या जाति का हो] उसी प्रकार लोक वार्ता में विश्व-व्याप्त समानता के दर्शन होते हैं। इस समानता के उद्भव की पृष्ठभूमि में क्षेत्रीय विविधता, विश्वासों की विभिन्नता एवं रंग-बिरंगी संस्कृतियों के दर्शन प्राप्त होते हैं।

इसी मान्यता के आधार पर राजस्थान की लोक वार्ता को समझने का उपक्रम किया जाना यहां अभिप्रेत है। राजस्थान नामक जो राज्य आज भारत में निर्मित हुआ है अर्थात् उसका जो भौगोलिक दायरा कायम हुआ है, उसके पीछे संस्कृति एवं इतिहास के कुछ विशिष्ट कारण हैं। राजस्थान के वृहत राज्य के निर्माण के पूर्व (सन् १९४८) इक्कीस देशी रियासतों में यह भूमाग विभक्त था। ये देशी रियासतें भी अपने इतिहास क्रम में अनादि काल से नहीं चली आ रही थीं, अपितु मध्ययुग की असंख्य लड़ाइयों के बीच जन्मी थीं। कुछ रियासतें तो अंग्रेजों के राज्य काल में ही निर्मित हुई थीं। रियासतों एवं राजाओं के निरंतर परिवर्तन-क्रम में सांस्कृतिक क्षेत्र की निर्मिति का क्रम भी अपनी स्वाभाविक एवं सहज गति से चलता रहा। इस क्षेत्र के निर्माण के लिये यदि सबसे महत्वपूर्ण कोई तत्व रहा तो वह था भाषा की एकता अथवा विभिन्न जाति समूहों से उद्भूत विश्वासों व परम्पराओं का। इस मानवीय तथ्य पर विभिन्न युद्धों और नरपतियों के रहने-बदलने से कोई प्रभाव नहीं पड़ा। लोक-जीवन अपनी ही आर्थिक गति विधियों के स्वाभाविक क्रम में लगा रहा। साथ ही साथ यह भी

निश्चित है कि इस स्वाभाविक गति में तथाकथित इतिहास की परिस्थितियों ने अपनी ओर से व्यवधान अथवा अवरोध अवश्य उत्पन्न किया । किन्हीं अंशों में यह भी सत्य है कि राजस्थान के इतिहास में जो राज बने या बिगड़े, वे स्थानीय विभिन्न जातियों की प्रबलता और अप्रबलता पर ही निर्भर रहे और उनके कारण जातीय संसर्ग का संतुलन कभी बना और कभी बिगड़ा । किन्तु उनके निरन्तर अन्यान्योश्रित रहने के कारण सामंजस्य और परस्पर सांस्कृतिक विश्वासों का लेन-देन चलता रहा ।

अतः कभी कभी यह जो प्रश्न सामने आता है कि राजस्थान नामक राज्य की कल्पना सन् १९४८ के ही बाद की है – सत्य नहीं है । राजनैतिक कारणों से बनने-बिगड़ने वाली भौगोलिक सीमाओं के परिवर्तन से कोई राष्ट्र या जाति या प्रादेशिक संस्कृति का क्षेत्र न कम होता है और न अधिक । इसका मूलाधार तो मानव वंशीय समस्याओं में निहित रहता है और अपनी प्राकृतिक अवस्थाओं के साथ संपर्क में आने वाली संस्कृति से जुड़ा रहता है । संस्कृति बहुत अर्थों में राजनीति और सत्ता की अनुचारिणी नहीं होती । यह भी इतना बड़ा सत्य है जिसने मुख्यतः लोक वार्ता या लोक संस्कृति के अध्ययन को न केवल बढ़ावा दिया बल्कि यह स्थापित भी किया है कि समाज के सतही ढांचे के नीचे जो मानवीय लोक वार्ता है वही इतिहास का वास्तविक आधार बन सकती है ।

इस दृष्टि से यदि हम राजस्थान नामक प्रदेश में विलीन हुई रियासतों का सांस्कृतिक मूल्यांकन करें तो सहज ही ज्ञान होता है कि राजस्थानी भाषा के माध्यम से सभी रियासतों में एक ही सूत्र मिलता है । वह चाहे ढूंढ़ाड़ के नाम से जाना जाता हो, चाहे मेवाड़ , मारवाड़ , गोडवाड़, चौरासी , मंडांण , हाड़ौती, शेखावाटी , जांगल और माड के नाम से जाना पहिचाना जाता हो । उपरोक्त नामावली में मैंने जयपुर , उदयपुर , जोधपुर , बीकानेर आदि रियासतों के नाम गिनाने उचित नहीं समझे हैं क्योंकि ये नगर तो अपने निकट के ऐतिहासिक काल में ही विशिष्ट रियासतों की राजधानियां बनी है । उनसे न संस्कृति का आभास मिलता है और न किसी स्पष्ट क्षेत्रीय विशेषता का ।

फिर भी यह सत्य है कि इस राजस्थान नाम से आभूषित किये जाने वाले भूभाग को ठीक इसी संज्ञा के नाम से भारतीय इतिहास में नहीं जाना जाता था । कभी कभी प्राचीन ग्रंथों में कहीं कहीं ' रायथान ' नाम अवश्य मिलता है जिसे कर्नल टॉड ने ' राजस्थान ' के नाम से अभिहित कर दिया । राजस्थान के नाम-करण के पूर्व इस प्रदेश को ' राजपूताना ' ही कहा जाता था । ऐसे नाम-करण का जो कारण कर्नल टॉड ने दिया हैं , वह भी अत्यंत स्पष्ट है । ईस्ट इंडिया कंपनी के प्रारंभिक अस्तित्व के समय इस प्रदेश की अधिकांश रियासतें राजपूत शासकों

द्वारा संचालित थी और इस प्रदेश को राजपूतों के आभिजात्य वर्ग के साथ ही प्राप्त किया जा सकता था। अतः राजपूताना का नाम-करण कर्नल टॉड ने किया। उस समय भी इस प्रदेश की जातीय संस्कृति तथा भाषात्मक एकता के कारण 'एक रियासती समूह' के रूप में मान लिया गया था। यों गुजरात, उत्तर-प्रदेश व बिहार में भी क्षत्रिय या राजपूतों के राज्य कायम थे किन्तु उन्हें 'राजपूताना' की कल्पना के साथ नहीं जोड़ा गया।

भारत के इतिहास में जब कभी इस पश्चिमी भाग को एक नाम से पुकारने [सांस्कृतिक समानता के कारण] की जरूरत पड़ी तभी आज की ही सांस्कृतिक सीमाओं के रूप में उसका उल्लेख हुआ है, किन्तु एक तत्व पर हमारी दृष्टि अवश्य पहुंचती है।

यह तत्व है प्रवासी राजस्थानियों का नाम-करण। भारत के लगभग सभी प्रदेशों में राजस्थान की कुछ जातियां अपने व्यवसाय के लिये फैली हुई हैं। वह चाहे सुदूर बंगाल, मद्रास, आसाम, उड़ीसा हो चाहे निकट के हो गुजरात, महाराष्ट्र, पंजाब सिंघ हो। सभी जगह राजस्थानियों के हाथ में व्यापार की महत्वपूर्ण बागडोर है। इन राजस्थान-वासियों को इन सभी प्रदेश में एक ही नाम से संबोधित किया जाता है और वह है मारवाड़ी, अर्थात् मारवाड़ का निवासी।

अतः हम देखने का उपक्रम करेंगे कि मारवाड़ कौनसा स्थान है। यों तो मारवाड़ रियासत वह कहलाई जो राजपूताने में जोधपुर की राजधानी के साथ राठौड़ वंश द्वारा संचालित की जाती थी। यह नाम मेवाड़ [मेदपाट] जांगल [बीकानेर की रियासत] माड [जैसलमेर] मेरवाड़ा [अजमेर] आदि देश-नामों के समान प्रयुक्त हुआ है और राजनैतिक दृष्टि से जोधपुर के तथाकथित तहसीलों एवं जिलों तक ही मारवाड़ का सीमित अर्थ है। किन्तु जिन मुख्य कारणों से 'मारवाड़ी' शब्द का अन्य प्रदेशों में प्रचलन हुआ उसका मूल जोधपुर के मारवाड़ में न होकर, उस संपूर्ण क्षेत्र से है जो भौगोलिक रूप से मरुस्थल है या रेगिस्तानी है। इस क्षेत्र में मारवाड़, जैसलमेर [माड], बीकानेर वाटी, शेखावाटी, ढूंढ़ाड़ का अधिकांश भाग आ जाता है। यह संपूर्ण क्षेत्र मरुस्थलीय है। साथ ही साथ अन्य प्रदेशों में जो लोग सदियों से व्यापार के लिये गये, वे सभी इन्ही क्षेत्रों से उठे हैं। शेखावाटी के लोग मुख्यतया पूर्वीय भारत में, बीकानेर वाटी के महाराष्ट्र की ओर तथा मारवाड़-गौडवाड़ के लोग दक्षिण की ओर व्यापारिक कार्यों हेतु गये। राजस्थान के अन्य भागो से अवश्य इतनी बड़ी संख्या में व्यापारी बाहर नहीं गये। यही कारण रहा कि मरुस्थल से जाने वाले सभी लोग मारवाड़ी कहलाये जो अपने ही प्रदेश में तो रियासतों के कारण भिन्न क्षेत्रों

वाले थे किन्तु उनके देश मरुस्थल से जाने वाले सभी लोग मारवाड़ी कहलाये जो अपने ही प्रदेश में तो रियासतों के कारण भिन्न क्षेत्रों वाले थे किन्तु उनका देश मरुस्थल था। और वे इसीलिये मारवाड़ी थे।

'मारवाड़' शब्द का महत्व यहीं शेष नहीं हो जाता। राजस्थान के क्षेत्र में जिस भाषा का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में प्राप्त होता है—उसको भी मरुभाषा के नाम से ही अभिहित किया गया है। यही भाषा आज के सारे राजस्थान की माननीय और व्यक्त भाषा है जो प्राचीन काल से थोड़े बहुत स्थानीय भेद एवं उच्चारण गत वैशिष्ठ्य के साथ समूचे प्रदेश में प्रचलित थी और अब भी है। इसके अतिरिक्त राजस्थान के हजारों कवियों एवं साहित्यकारों ने एक टकसाली स्वरूप का ही अपने लेखन में उपयोग किया। यह कवि चाहे मेवाड़ के रहे हों, चाहे मारवाड़, बीकानेर, शेखावाटी या हाड़ौती के रहे हों। काव्यानुशासन एवं भाषानुशासन की दृष्टि से मरुभाषा का स्वरूप ही केन्द्रीय अथवा न्यूक्लियस के तथ्य को परिपोषित करता रहा।

हमारे प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों में राजस्थान के 'स्थान पर मरु प्रदेश' मरुधर, मारूदेश और राजस्थान के स्थान पर मरुदेश—भाषा, मरुभाषा और मारू भाषा इत्यादि शब्द मिलते है परन्तु प्राचीन मरुदेश के अन्तर्गत जो भाग प्रतिष्ठित था वह आज के राजस्थान से कुछ भिन्न था। प्राचीन ग्रंथों में मरुदेश के साथ साथ मेवाड़, मालवा और ढूंढाड़ देश भी प्रतिष्ठित रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि राजस्थान नाम से अभिहित मरुदेश आज अनेक उक्त भूभागों और वह की भाषाओं और बोलियों का प्रतिनिधि है।

मारवाड़ी भाषा का इति वृत — किसी भी देश तथा उसके साहित्य की चर्चा छेड़ते समय वहां की भाषा का विवरण प्रस्तुत करना भी अनिवार्य हो जाता है। मारवाड़ी लोक साहित्य के प्रसंग में मारवाड़ देश की कथा लिखी है और मारवाड़ी भाषा पर भी विचार करना पड़ रहा है। इस देश की महानता और ख्याति जितनी बड़ी है, उतनी अत्युन्नत और प्रचलित इसकी भाषा रहती आई है।

रटगो सुजस रविंद, मैंमा करगौ मालवी।
मन सुनीति सरमिद, मरुभाषा संकट पड़ी।

साहित री भासा सदा, रही एक रजथान।
कुतरकिया मेटण करे, मरुभासा री मांन।

रणबंकौ है राठौड़ राज,
जुध धीर बीर ओ जोधाणूं।

दुरगा रौ है दृढ़ दुर्ग अठै ,
मरुवांणी रौ मुरधर थांणू ।

इतिहास प्रसिद्ध आमेर राज , जैसल , करौली इक जांणी ।
मेवात भरतपुर में गूंजै , आ वीर पुजांणी मरु वांणी ।।

मरुदेश को भाषा मरुभाषा थी जो मारवाड़ की मारवाड़ी भाषा कहलाती है। यही भाषा आज के इस सारे राजस्थान की सर्वश्रेष्ठ एवं साहित्यिक भाषा थी , जो प्राचीन काल में थोड़े बहुत स्थानीय परिवर्तनों के साथ समस्त प्रदेश में प्रधान रूप से प्रचलित थी । हजारों कवियों और दूसरे साहित्यकारों को मारवाड़ के तमाम राजदरबारों में सदैव आश्रय मिलता रहा है। अतः मरुभाषा का खास गढ़ मारवाड़ ही है ।

प्राचीन काल से इस देश की साहित्यिक भाषा मरुभाषा रही है । डॉ. - ग्रियर्सन ने मारवाड़ी , मध्यपूर्वीय मारवाड़ी , उत्तरपूर्वीय मारवाड़ी , मालवी और निमाड़ी नाम से इसके मूल पांच भेद किये हैं। आज कल तो यहां २७ बोलियां बोली जाती हैं ।

श्री नरोत्तमदासजी स्वामी यही बात सिद्ध करते हैं। " राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरुभाषा था । राजस्थान के प्राचीन साहित्यकार , चाहे वे राजस्थान के किसी भी प्रदेश के वासी हों । अपनी भाषा का इसी नाम से उल्लेख करते थे । [1] मरुभाषा का ग्रथों में प्रयोग हमें आठवीं शताब्दी से मिलता है । मारवाड राज्य के जालोर शहर में रहने वाले उद्योतनसूरि द्वारा लिखित कुवलयमाला नामक कथा ग्रंथ में १८ देशीय भाषाओं के साथ इसको भी सहसम्मान स्थान मिला है । इनके साथ गुर्जर , लाट , और मालव प्रदेश की भाषाएं भी सम्मिलित हैं। ईस्वी १६०० सौ तक प्राचीन जैन ग्रंथों की भाषा को भी उनके लेखकों और कवियों ने मरुभाषा नाम से सम्बोधित किया है। १७ वीं शताब्दी में अबुल फजल ने अपनी आइने अकबरी नामक पुस्तक में भारतीय प्रमुख भाषाओं के अन्तर्गत मारवाड़ी को लिया है । [2] इस तरह से राजस्थानी की विविध प्रान्तीय बोलियों को बतलाने वाले अनेक एवं असंख्य हस्तलिखित ग्रंथ मिलते हैं । एक प्राचीन जैन हस्तलिखित ग्रंथ में गुर्जरी , मालवी , पूर्वी और मराठी इन चार भाषाओं के प्राचीन नमूने दिये गये हैं । साहित्य , क्षेत्रफल और जनसंख्या तीनों दृष्टिकोणों से राजस्थान की सर्व प्रान्तीय बोलियों में प्रमुख पश्चिमी बोली है , जिसे मारवाड़ी नाम दिया गया है। और जिसको प्राचीन काल में मरुभाषा एवं

---

१ राजस्थानी साहित्य एक परिचय, पृ.२ ले. श्री नरोत्तमदास स्वामी

२ डाक्टर ग्रियर्सन एल. एस. आइ. खंड १, भाग १ पृ. १

पर्यायवाची शब्दों से अभिहित किया गया था ।

मरुभाषा और डिंगल — उत्तरकालीन ग्रंथों में मारवाड़ी के लिये मरुभूम भाषा, मरुदेशीय भाषा , मरुवाणी , मारूभाषा , आदि कई नामों का प्रयोग प्राप्त होता है ।

मरुभाषा एक व्यापक नाम है , जिसमें राजस्थानी भाषा का उसकी समस्त विविध बोलियों और शैलियों सहित समावेश किया जा सकता है । [1]

डॉक्टर सुनीति कुमार चाटुर्ज्या ने राजस्थानीं भाषा के लिये डिंगल और मारवाड़ी दोनों नामों को काम में लिया , " मरुभाषा और ' डिंगल ' भाषा एक ही थी । इस भाषा का राजस्थानी नाम आधुनिक है । " श्री नरोत्तमदासजी स्वामी ने भी राजस्थानी के डिंगल शब्द का व्यवहार किया है । श्री उदयराजजी उज्जवल अपने काव्य , 'धूड़सार' को अपनी मातृभाषा [डिंगल] में ही लिखा बताते हैं । राजरूपक की भूमिका में पंडित रासकरण आसोपा लिखते है कि डिंगल भाषा राजस्थानी भाषा है , इसीसे राजस्थान के कवियों ने अपनी राजस्थानी भाषा में कविता निर्माण की है । महाकवि सूर्यमल्ल जी मिश्रण और मुंशी देवीप्रसाद जी दोनों इसी बात की पुष्टि करते हैं । डाक्टर मोतीलाल मेनारिया ने अपनी पुस्तकों [राजस्थान का डिंगल साहित्य और राजस्थानी भाषा और साहित्य] में डिंगल का विकास गुर्जरी अपभ्रंश से बतलाया है ।

"वैसे तो यहां के लोगों की मातृभाषा मरुभाषा है ही, मगर उसका साहित्य डिंगल में ही लिखा मिलता है । यह नाम पश्चिमी राजस्थानी अर्थात् मरुभाषा या मारवाड़ी के साहित्यिक रूप को दिया गया है जो बहुत प्राचीन नहीं है । १६ वीं शताब्दी के अन्त में लिखे हुए कुशललाभ के पिंगल सिरामणि नामक छंद ग्रंथ में उडिंगल शब्द आया है । उसका भाव तो स्पष्ट नहीं है किन्तु बहुत सम्भव है , यह उडिंगल ही डिंगल का मूल नाम हो । " [2] "ईस्वी सन् १६०० तक पश्चिमी राजस्थान [मारवाड़] तथा गुजरात की भाषा एक ही थी । ईसा के पूर्व की तृतीय शताब्दी की , राजस्थान से सम्पर्कित सौराष्ट्र की भाषा का निर्देशन गिरनार [जूनागढ़ राज्य] लेख से उपलब्ध हुआ है । " [3] संवत् १८७१ में जोधपुर के कविराज श्री बांकीदासजी ने कवि बत्तीसी नामक पुस्तक लिखी थी। उसमें डिंगल शब्द का प्रयोग हुआ हैं । डिंगलिया मिळिया करै , पिंगल तणो प्रकास । [4]

---

१ - राजस्थानी भाषा और साहित्य , पृ ५ ले. डॉ. हीरालाल महेश्वरी

२ - राजस्थान साहित्य एक परिचय में दिये गये एक उद्धरण से

३ - सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या (राजस्थानी पृ. ४५)

४ - बांकीदास ग्रन्थावली भाग २ , पृष्ठ ८१ ।

हिन्दी साहित्य में डिंगल और पिंगल का नाम साथ साथ चलता आया है—
चारण डिंगल चातुरी, पिंगल भाट प्रकास।[1]

डिंगल मारवाड़ी भाषा के साहित्यिक रूप का नाम है, जिसमें चारणों ने वीर रस के छंदोमय गीत, दोहे और अनेक प्रकार के छंद लिखे हैं। इसका मुख्य रूप साहित्यिक होने के कारण जन साधारण की समझ से बाहर है। चारणों द्वारा प्रयुक्त इस राजस्थानी का साहित्य रूप डिंगल के नाम से प्रसिद्ध रहा है। अतः डिंगल अधिक परिमार्जित, पर्याप्त स्थिर और अधिक प्रौढ़ एवं सौन्दर्य सम्पन्न है। कवियों ने डिंगल में वीर रसोपयोगी समासयुक्त, संयुक्त अथवा द्वित्ववर्णों का विशेष प्रयोग किया है। उन्होंने शब्दों को यथेच्छ खींचा-तोड़ा है और अलग अलग ढंग से तोड़ मोड़ कर लिखा है। इसलिये डिंगल का साधारण भाषा से भेद पड़ गया है।

पुरानी मारवाड़ी भाषा जो कि मारवाड़ी या गुजराती दोनों ही की मां थी, उसमें साहित्य सर्जना होने लगी, फिर मध्ययुग की मारवाड़ी के आधार पर पिंगल की प्रतिस्पर्धी साहित्यिक डिंगल भाषा भी प्रकट हुई।[2] डिंगल का विकास उस राजस्थानी से हुआ जिसका प्रयोग चारण एवं कुछ अन्य पेशेवर कवि-जातियां अधिकतया करते थे। इस काव्य में विशेषतः वीर रसात्मक सृष्टि होती थी अथवा प्रशंसात्मक अतिशयोक्ति का काव्य सृजा जाता था।

राजस्थान के साहित्यिक विकास के क्रम में डिंगल का अपना महत्वपूर्ण स्थान रहा किन्तु यह भाषा मुख्यतः साहित्यिक ही बनी रही और उसका जन-भाषा से या बोल चाल की भाषा से लगभग संबंध नहीं रहा। यही कारण है कि डिंगल काव्य रचना अथवा भाषा पर अधिकार करने के लिये विभिन्न प्रकार के डिंगल कोषों की रचनायें हुईं, जिन्हें काव्य रचयिता कंठस्थ कर लेते थे और उन्हीं शब्द रूपों के प्रयोग के द्वारा पद्य रचा करते थे। डिंगल के इस निपट काव्यगत प्रयोग को स्वीकार कर लेने के बाद भी इस तथ्य को नहीं भुलाया जा सकता कि वैयाकरणिक, भाषा वैज्ञानिक एवं शब्द - स्वरूप में मरुभाषा अथवा राजस्थानी भाषा के ही नियमों का परिपालन हुआ है। संज्ञा के रूप, पुल्लिंग - स्त्रीलिंग के स्वरूप, एक वचन से बहु वचन बनाने के नियम, क्रियाओं के 'काल' रूप आदि आदि सभी राजस्थानी भाषा के नियमानुकूल ही व्यवहृत होते हैं।

डिंगल की इस भाषागत चर्चा के साथ एक और तथ्य का संकेत कर देना भी राजस्थानी लोक साहित्य के लिये आवश्यक है। डिंगल साहित्य ने अपने शास्त्रीय काव्य रूप में एक विशिष्ट छन्दोगत व्यवस्था का निर्माण किया है।

---

१ - उदयराम, कविकुल बोध, चतुर्थ तरंग।
२ डाक्टर सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या — राजस्थानी भाषा।

यह छन्दोविधान 'गीत' नाम से जाने जाता है। भूल से कभी कभी इस [गीत] नाम करण के कारण हम इसे संगीतोमुखी तथ्य समझने का भ्रम कर लेते हैं। वस्तुत: डिंगल का यह गीत साहित्य भारतीय छन्दशास्त्र को एक अनुपम भेंट समझनी चाहिये। इन गीतों में वार्णिक, मात्रिक एवं तद्जनित काव्यात्मक गणना का प्रामुख्य है और इसकी रचना में चरण, तुक [झड़] और पद का उतना ही कठोर बंधन है जितना कि संस्कृत एवं इतर भाषाओं के छन्द शास्त्र में है।

लेकिन 'गीत' के इस प्रसंग पर ऐतिहासिक अध्ययन करना अभी शेष है। छन्दोव्यवस्था की स्वीकृति के बाद भी अन्तत: इसे गीत क्यों कहा गया ? यह तथ्य अन्वेषण के योग्य है। 'गीत' का अभिधार्थ तो 'गेय' रूप में ही अंगीकार किया गया है। तब क्या गीतों (छन्दों) के स्वरूप कभी गेय रूप में भी प्रयुक्त होते थे ? यदि होते थे तो उनका गेय रूप क्या था ? बीकानेर, जैसलमेर एवं मारवाड़ के बाड़मेर क्षेत्र की कुछ विशिष्ठ पेशेवर गायक जातियों की कुछ लोक गायन-शैलियों से इन गीत प्रकारों का संबंध निकल सकता है। क्योंकि गीत के भाषात्मक रूप और इन गायकों के गेय गीतों में प्रारंभिक समानता के दर्शन अवश्य होते हैं। इतना ही नहीं, छन्दात्मक गीतों में जांघड़ा एक छन्द विशेष हैं और पश्चिमी रेगिस्तानी लोक गायक जांघड़ा नामक लोक गीत भी गाया करते हैं। दोनों के काव्यगत रूप में अन्तर अवश्य है किन्तु चरण, पद एवं अन्वय में एकता के दर्शन प्राप्त होते हैं। इन गीतों के लय रूप में भी अद्भुत समानता के दर्शन होते हैं। बहुत संभव है कि लोक गायन शैली की काव्यगत व्यवस्था से अनुप्राणित होकर ही डिंगल गीतों की काव्यात्मक रचना और शनै: शनै: संपूर्ण छन्द शास्त्र का ही निर्माण हुआ हो। शास्त्र-गत नियमोपनियमों की स्थापना के पश्चात निश्चय ही गीतों में से गेय रूप हट गया और वह निष्णात काव्य की ही विद्या शेष रह गयी। यहां इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक है कि डिंगल गीतों का पाठात्मक स्वरूप अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह सामान्य छन्दों की तरह नहीं पढ़ा गया। इसके उच्चार एवं पठन के लिये भी नियम बनाये गये हैं जिसमें लय एवं गति के साथ कंठ के प्रयोग का वैशिष्टय भी सम्मिलित किया गया है। गीत के चरण (तुक) या पद (द्वाळै) के उच्चरित पठन में 'स्वांस' के अद्भुत प्रयोग किये गये हैं।

राजस्थान के छंदोमय साहित्य और गेय रूप की चर्चा के साथ उन छंदों का वर्णन भी प्रासंगिक होगा जो लोक गीतों की गेय-शैली के भी अंग रहे हैं। इनमें प्रमुख छंद दोहा एवं सोरठा माने गये हैं। दोहा एवं सोरठा तो राजस्थान के अलिखित या मौखिक साहित्य की मुख्य छंदोमय अभिव्यक्ति का साधन रहा है। साथ ही साथ उसको लोक गायन शैली में भी प्रमुख स्थान मिला है। 'दोहे

देना ' एक विशिष्ट गायन शैली का नियामक बन सका है। इतना ही नही, हमें लोक गायन रूपों में अनेक ऐसे काव्यगत प्रयोग दिखाई देते हैं, जहां दोहे छंद की विद्या के साथ अन्य चरणों को जोड़कर पूर्ण रूप से गेय प्रकार बना लिया गया है। कहीं कहीं स्वतंत्र दोहे के गायन के बाद एक टेक की लयात्मक पंक्ति (चरण) को जोड़ कर पूरे गेय रूप की सर्जना करली गई है। 'केसरिया बालम' नामक गीत इस प्रवृति का एक प्रमुख उदाहरण है।

राजस्थानी लोक वार्ता के सर्वांगीण अध्ययन के लिये दोहे और सोरठे के रूप को भी आत्मसात करना उचित होगा। भारत के पश्चिमी क्षेत्र की लोक-संस्कृति में दोहे छंद ने मुख्य स्थान प्राप्त किया। दैनन्दिन कार्यों में अथवा अभिव्यक्ति में निर्द्वन्द रूप से दोहों का प्रयोग प्राप्त होता है। जन सामान्य ने इस छंद की शाब्दिक एवं लयात्मक अवस्था के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर लिया है जिससे वे अत्यंत सहज रूप से या तो दोहे की रचना कर लेते हैं अथवा उन्हें प्रयोग में ले आते हैं।

भारतीय छंद शास्त्र में भी दोहे का महत्वपूर्ण प्रयोग प्राकृत अपभ्रंश काल में प्रारंभ हुआ। शास्त्रज्ञों की स्वीकृति तो इस छोटे से मात्रिक छंद को बहुत बाद में मिली। किन्तु धीरे धीरे यही छंद अपनी संक्षिप्त, तिक्त और सूक्ष्म व्यंजना के कारण संपूर्ण साहित्य पर छा गया। मुक्तक एवं प्रबंध दोनों प्रकार के काव्यों में इस छंद ने अपना प्रभुत्व कायम कर लिया।

दोहे के जो रूप राजस्थानी में प्रचलित हैं वे इस प्रकार हैं —

नाम	प्रति चरण में मात्राएं १. २. ३. ४.	तुक विधान चरण क्रम से
दूहौ	१३ ११, १३ ११	द्वितीय - चतुर्थ
सोरठौ	११ १३, ११ १३	प्रथम - तृतीय
सांकळियौ [बड़ो दूहौ]	११ १३, १३ ११	प्रथम - चतुर्थ
तूंवेरी (मध्य मेल दूहौ)	१३ ११, ११ १३	द्वितीय - तृतीय
चरणा दूहौ	१६ ११, १६ ११	प्रथम-तृतीय, द्वितीय-चतुर्थ
पंचा दूहौ	१२ ११, १२ ११	द्वितीय - चतुर्थ
चोटियौ दूहौ	१३ २३, १३ २१	प्रथम-तृतीय, द्वितीय-चतुर्थ
खोड़ो दूहौ	११ १३, ११ ६	तृतीय - चतुर्थ

इन स्वरूपों के अलावा राजस्थानी छंद शास्त्र ने तो प्रस्तारादि भेद-विभेदों को लेकर काफी संख्या में दोहों के नाम गिनाये हैं। किन्तु गणित से उत्प्रेरित

छंदोव्यवस्था का सृजनात्मक अथवा लोक साहित्य में महत्व प्रस्थापित नहीं हो सकता है ।

राजस्थान के मरुस्थलीय क्षेत्र में दोहों का गायन विधान लोक संगीत का प्रमुखतम प्रयोग है । ये दोहे रोमांस, प्रेम, नीति, प्रतीक, कथा, प्रशंसा आदि के लिये मौखिक साहित्य एवं गेय रूप में प्रचलित हैं । जहां तक इनके गेय रूप का प्रश्न है – ये अधिकतर पेशेवर लोक गायक जातियों की संपदा है । ये गायक अपने मुख्य गीत की भूमिका के रूप में 'दोहे' देते हैं और तत्पश्चात लयपूर्ण शैली में गीत प्रस्तुत करते हैं । इनके कुछ गीत ऐसे भी होते हैं जो दोहे के रूप को ज्यों का त्यों कायम रखते हुए गेय होते हैं । टेक रूप में या गीत के मुखड़े [बन्दिश] के रूप में एक अन्य पंक्ति प्रचलित रहती है । ये दोहे गद्य कथा-कथन शैली के साथ भी गाये जाते हैं । ढोला-मारू, नागजी-नागवन्ती, बींझा-सोरठ आदि गद्यात्मक कथाओं के साथ ऐसे ही गेय दूहे या सोरठे प्रचलित हैं। राजस्थान की कुछ घुम्मकड़ जातियों में दोहे के प्रत्येक चरण के साथ कुछ गेय शब्द जोड़कर गाने का स्वरूप भी प्रचलित है । उपरोक्त सभी रूपों में दोहे या सोरठे का प्रयोग मौखिक साहित्य या संगीत की परंपरा में ही मिलता है। जहां शास्त्रज्ञ कवि ने दोहे को अंगीकृत किया है–वहां राजस्थानी साहित्य के महत्व-पूर्ण शब्दालंकार वयण सगाई एवं अखरोट आदि अत्यंत महत्व पूर्ण माने गये हैं ।

सोरठ शब्द को कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में समझना अनिवार्य है । यों तो सौराष्ट्र प्रदेश को सोरठ कहा ही जाता है। और वस्तुतः यह प्रदेश-वाची शब्द ही है । परन्तु इसी नाम से एक राग भी प्रचलित है अर्थात् सोरठ राग । सोरठ राग और सोरठ प्रदेश का संबंध अत्यंत निकट है । इसी प्रकार सोरठ से संबंधी 'सोरठा' छंद शास्त्र का शब्द है । साथ ही साथ सोरठ नाम की एक नायिका भी है जो बींझा नामक नायक से प्रेम करती थी । बींझा-सोरठ के प्रेम की कथा प्रसिद्ध ही है । इस प्रकार सोरठ शब्द के प्रयोग से 'प्रदेश, राग, छन्द और नायिका विशेष' के चार अर्थ प्राप्त होते हैं। इन सभी संज्ञात्मक अर्थों को बड़ी सतर्कता से प्रयोग में लाना आवश्यक है । सोरठ राग के लिये कहा गया है :

सोरठ राग सुहावणी, जे कोई सुणनै जाय ।
चतर हुवै तो उठ सुणै, मूरख सोवण जाय ।।

अथवा: सोरठ राग सुहावणी, लीज्यौ आधी रात ।
मूरख सोवण उठ चलै, चतर सुणण नै आत ।।

इसी प्रकार सोरठ नायिका के लिये कहा है :

सोरठ गढ़ सूं ऊतरी, पायल री झणकार।
धूजे गढ़ रा कांगरा, धूजे गढ़ गिरनार।।

जिण संचै सोरठ घड़ी, घड़ियौ राव खेंगार।
कै तौ संचौ गळ गयौ, [कै] लाद बुवा लवार।।

सोरठ डाळी आंम री, सूवौ बैठ्यौ आय।
पांख सवार उडण करै, रंग में भीज्यौ जाय।।

और जब इसी सोरठ के नाम से छंद वर्णन अपेक्षित होता है तो कहा जाता है:

सोरठियौ दूहौ भलौ, भल मरवण री वात।
जोबन छाई धण भली, तारां छाई रात।।

सोरठियो दूहौ भलौ, कपड़ौ भलौ सुपेत।
ठाकरियौ दाता भलौ, घोड़ौ भलौ कुमेत।।

उपरोक्त सभी रूप मुख्य तया राजस्थान के मौखिक साहित्य एवं लोक संगीत की विशिष्टतम संपदा है और जिस संपदा से राजस्थान के शास्त्रीय-सम्मत काव्य एवं साहित्य ने बहुत शक्ति एवं संबल प्राप्त किया है।

लोक संगीत — राजस्थान के लोक गीतों को सांगीतिक विश्लेषण की दृष्टि से हम मुख्यतया दो भागों में विभाजित कर सकते हैं। प्रथम तो वे लोक गीत जो सामूहिक रूप से, पारिवारिक-क्रिया कलापों, अनुष्ठानों, पर्वों एवं उत्सव आदि अवसरों पर गाये जाते हैं। इन गीतों को गाने वाले स्वयं परिवार व समाज के ही स्त्री-पुरुष होते हैं। दूसरे वे लोक गीत हैं जो पेशेवर लोक गायकों द्वारा किन्हीं विशिष्ट लोक वाद्यों के साथ गाये जाते हैं। इस श्रेणी के लोकगीत सांगीतिक दृष्टि से कुछ उन्नत दशा के द्योतक होते हैं और उनमें धुनों का वैभिन्य भी अधिक होता है।

जो लोक गीत परिवार या समाज के कंठों एवं कल्पना पर निर्भर करते हैं—उन्हें संगीत की ही दृष्टि से बाल गीत, आदिवासी गीत एवं अन्य गीतों के रूप से विभक्त किया जा सकता है। क्योंकि ये तीनों प्रकार के लोकगीत सांगीतिक विद्या में एक दूसरे से विभिन्नता लिये होते हैं। इन तीनों ही प्रकार के लोकगीतों के शाब्दिक गठन अथवा पद्यात्मक कल्पना के स्वरूप में भी अन्तत: भेद होता हैं। बाल गीत सहजतम होते हैं और स्वरों की दृष्टि से दो से पांच स्वरों के बीच में चलते हैं। गीत का पाठ पूर्व-निश्चित नहीं होता। स्वत: स्फूर्त रचना-तत्व इसका एक मुख्य गुण होता है। इसी प्रकार आदिवासियों के गीतों का पाठ भी पूर्व-निश्चित नहीं होता। वे गायन के समय ही पंक्तियों के रच लेने की सहज क्षमता को काम में लेते हैं। यही कारण है कि आदिवासियों के

गीतों में प्रत्येक सामाजिक एवं भौतिक परिवर्तन का प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। बाल गीतों से आदिवासियों के गीत संगीतात्मक दृष्टि से विकसित होते हैं। धुनों का वैविध्य और कल्पना का शब्दमय संसार भी उन्नत होता है। सामाजिक रूप से अन्य गाये जाने वाले गीत महिलाओं पुरुषों के गीतों में उपविभक्त किये जा सकते हैं। पुरुषों के गीतों की संख्या अत्यंत सीमित ही होती है। उधर महिलाओं के गीतों की संख्या असीमित है। संगीत की दृष्टि से महिलाओं के गीत स्वरों, धुनों एवं लयों की दृष्टि से भी विविधता लिये होते हैं। किंतु महत्वपूर्ण बात यह है कि इन सामूहिक गीतों का पाठ बहुत कुछ निश्चित एवं स्थिर होता है। ये गीत किसी पंक्ति से प्रारंभ होकर पंक्ति पर समाप्त होते हैं। यों इन गीतों में भी परिवर्तन, परिशोधन एवं विभिन्न पंक्तियों का आगम अथवा लोप भी होता है। किंतु इन स्थितियों में भी गीत में एक सुनिश्चित पाठ अवश्य रहता है।

राजस्थान के लोक संगीत में पेशेवर लोक गायकों की संगीत शैली को आत्मसात किये बिना एक बहुत बड़ा अंश छूट जाता है। राजस्थान की लगभग सभी बड़ी या छोटी जातियों के अनुष्ठानों, रीति-रिवाजों एवं अन्य मनोरंजन के अवसरों के लिये कोई न कोई जाति गायन पेशे के साथ जुड़ी हुई है। राजपूत, जाट, गूजर, महाजन, मुसलमान, भांबी, बावरी, चारण या अन्य कोई भी जाती हो — सभी की अपनी अपनी गायक जातियां है। इन जातियों में हिन्दू-ढोली, मुसलमान ढोली, नगारची, सरगरे, फदाळी, ढाढ़ी, मिरासी, लंगे, मांगणियार, विभिन्न जातियों के भोपे, कामड़, हुड़कल, जागे आदि हैं। समाज शास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से यह संभवतया बहुत महत्वपूर्ण है कि अन्ततः किस प्रकार जातीय परंपराओं के साथ ही लोक संगीत का यह पक्ष उत्पन्न हुआ और आर्थिक रूप से अपने इसी कार्य [संगीत] पर निर्भर रह सका। इन जातियों ने राजस्थानी लोक संगीत को सर्वाधिक सुरक्षित रखने में सफलता प्राप्त की और साथ ही साथ अपनी धरती की सांगीतिक सुवास को उन्नत भी बनाया।

पेशेवर लोक गायकों ने राजस्थान में लोक-वाद्यों को जीवित रखने में जबरदस्त योगदान दिया। यह आश्चर्य जनक सांगीतिक तथ्य है कि राजस्थान में प्राय: सभी संगीत वाद्य किसी न किसी गायक जाति से संबंधित है और वह उन्हीं की 'सुरक्षा' में आज तक प्रचलित रह सके हैं। यदि हम शुद्ध शास्त्रीय दृष्टि से देखें तो संगीत वाद्यों को भरत मुनि की धारणा के अनुसार चार विभागों में बांट सकते हैं। ये विभाग है: १. तत वाद्य – अर्थात् तार से बजने वाले वाद्य, २. सुषिर वाद्य अर्थात् फूंक से बजने वाले वाद्य, ३. अवनद्ध वाद्य अर्थात् चमड़े से मंडे हुए वाद्य एवं ४. घन वाद्य अर्थात् विभिन्न धातुओं से बने हुए या वस्तुओं

से बने हुए घर्षण या आघात से बजने वाले वाद्य।

ये चारों ही मुख्य वाद्य प्रकार राजस्थान के लोक संगीत के साथ प्राप्त होते हैं। केवल इतना ही नहीं, इनके जितने भेद विभेद हो सकते हैं, वे सभी वाद्य भी इस प्रदेश में प्राप्य हैं। यहां इस तथ्य की ओर भी संकेत कर देना आवश्यक है कि आज जो संगीत वाद्य राजस्थान प्रदेश में प्राप्य हैं – उन्हें केवल राजस्थानी वाद्य के नाम से संबोधित नहीं किया सा सकता। ये सभी वाद्य भारत ही नहीं, विश्व की संपूर्ण संपदा के ऐतिहासिक प्रतीक हैं जो अपने कालक्रम में किन्हीं देशों में काल-कवलित हो गये और किन्हीं देशों में आज भी जीवित हैं।

यहां राजस्थान के सभी वाद्यों का विवेचन संभव नहीं है। अतः कुछ प्रमुख वाद्यों की ही चर्चा की जा रही है। सबसे पहिले तत वाद्यों में जतर एवं कामायचा का विवरण दिया जा रहा है। जंतर नामक वाद्य गूजरों के भोपे बजाते हैं। यह वाद्य वीणा के प्रकार का होता है जिसमें एक डांड [बांस] और दो तूंबे होते हैं। वाद्य पर सितार की भांति पर्दे लगे रहते हैं। इस वाद्य को 'नख्खी' के आघात प्रकार से बजाया जाता है। सबसे महत्व पूर्ण बात यह है कि आघात से बजाये जाने वाले वाद्यों [सितार, वीणा, सरोद] को ऊपर से अनुरणित किया जाता है लेकिन जंतर की बनावट ऐसी होती है कि जिसमें तारों को नीचे की तरफ से गुंजित किया जाता है। इसी प्रकार इस वाद्य पर जो मेरू होता है—वह भी सीधा खड़ा रहता है। यह व्यवस्था अन्य किसी भी वाद्य में नहीं मिलती।

जंतर का वादन गूजर जाति के भोपे करते है। ये लोग इस वाद्य की सहायता से 'बगड़ावतों' जैसी बृहद लोक गाथा गाते हैं। इसका वादक गायन के साथ साथ नृत्य भी करता है। यह वाद्य ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है।

इसी प्रकार थोरियों या भीलों के भोपों का रावण हत्था नामक वाद्य भी संगीत की दृष्टि से महत्व पूर्ण है। इसका वादन घोड़ों की पूंछ के बाल के तारों पर होता है जिससे अधिकांश वाद्यों के गज बनते हैं। इसकी ध्वनि अत्यंत गंभीर होती है।

तत-वाद्यों में कामायचा का स्थान भी मनन के योग्य है। यह वाद्य हमें मध्य एशिया की संस्कृति के निकट पहुंचा देता है। यह एक गज से बजने वाला वाद्य है और इसे बजाने वाले बाड़मेर जैसलमेर क्षेत्र में मांगणियार नाम से संबोधित किये जाते हैं। यह गज से बजाये जाना वाला वाद्य है। इसके मुख्य तार तांत के होते हैं। गज काफी लंबा होता है और इनके वादन के प्रकार से गायन शैली पर भी प्रभाव पड़ता है।

तत वाद्यों में सिंधी सारंगी, गुजरातण सारंगी, तंदूरो या निसांण या

वीणो, धानी सारंगी, चिकारा आदि अनेक और वाद्य भी मिलते हैं। यहां पुनः कह दें कि ये सभी वाद्य विशिष्ट गायक जातियों द्वारा ही बजाये जाते हैं।

सुषिर वाद्यों में मुरली, पावा या सतारा, नड़, पूंगी व उनके प्रकार, वरगू, बांकिया, तुरही आदि प्रकार के बाजे आते हैं। इसमें सतारा [पावा] और नड़ संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण ज्ञात होते हैं। सतारा दो बांसुरियों का वाद्य है और दोनों बांसुरियां एक साथ ही मुंह में रहती हैं और बजाई जाती हैं। होठों से दो फूंकें निःसृत होती हैं। किंतु उनमें एक बांसुरी पर धुन बजाई जाती है और दूसरी से केवल श्रुति ली जाती है। इस वाद्य को रेगिस्तान क्षेत्र के भेड़ या पशु पालक बजाते हैं। मुख्यतया इसमें संगीत के रूप में अलंकार या पल्टों का ही वादन किया जाता है। यों यह वाद्य उन्नततम संगीत अथवा राग - वादन के काम में भी आ सकता है। कुछ अन्य पेशवर गायक जातियां इसका धुन के लिये भी प्रयोग करती हैं। इसी प्रकार 'नड़' नामक वाद्य भी संगीत की अत्यंत प्रारंभिक स्थिति को पहिचानने के लिये महत्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य एक लंबे व पतले बांस की तरह के वृक्ष से बनता है और टेढ़ी बांसुरी की तरह बजाया जाता है इसमें कांच की शीशी की भांति फूंक दी जाती है और इसमें केवल पल्टों या अलंकारों का ही वादन हो सकता है। इसमें केवल चार ही छेद होते हैं। किंतु लंबाई के कारण उनका घोष बहुत गंभीर होता है।

अवनद्ध वाद्यों में ढोलक, ढोल, चंग, डफ जसे वाद्य गिने जाते हैं। ये वाद्य यों विश्व भर में ही अपने विभिन्न रूपों में प्रचलित हैं। राजस्थान के अवनद्ध वाद्यों में डेरू एक महत्वपूर्ण वाद्य है। यह वाद्य माताजी के स्थानों [थान] एवं लोक गाथाओं के साथ काम में आता है। इस वाद्य को काळबेलिये भी बजाते हैं। यह डमरू के आकार का वाद्य होता है और उस पर चमड़े को कसने वाली रस्सियों को दबाने से भिन्न भिन्न लयात्मक ध्वनियां निकाली जाती हैं। एक हाथ रस्सी के बंधाव पर और दूसरे हाथ में पतली लकड़ी होती है — जिससे लयपूर्ण ध्वनियों को उत्पन्न किथा जाता है। यह वाद्य लयों के अत्यंत सुन्दर पेटर्न्स बनाने में समर्थ है।

घन वाद्यों में मंजीरा, ताल, दो छोटी लकड़ियां, कांच, थाली, घंटी, कटोरे जैसे वाद्यों को माना जाता है। ये वाद्य परस्पर घर्षण या आघात से संगीतात्मक लय उत्पन्न करते हैं। इसी वर्ग में मोरचंग एवं घोराळिया जैसे वाद्य भी आते हैं। दोनों वाद्य बहुत ही आनन्ददायक और मनोरंजक हैं। ये वाद्य प्रकार विश्व भर में प्रचलित हैं। योरोपीय देशों में इसे ज्यूज़हार्प कहा जाता है। दक्षिण भारत में इसे 'मुखचंग' कहा गया है। मोरचंग लोहे का बना हुआ एक वाद्य है जिसमें एक पतली लोहे की रीड होती है जो फूंक के प्रभाव से ध्वनि उत्पन्न

करती है और उसी रीड पर अंगुली के आघात से लयपूर्ण बन जाती है। इसी प्रकार घोराळिया बांस का बना वाद्य है जिसे होठों में पकड़ कर बजाया जाता है। ठीक मोरचंग के ही आकार प्रकार का होता है। लय के लिये धागे को काम में लिया जाता है। यह वाद्य मुख्यतया काळबेलियों [संपेरा जाति] के पास मिलता है।

राजस्थान में अभी लगभग अस्सी प्रकार के वाद्य प्रचलित हैं और सभी वाद्य अपने प्रकार से राजस्थान के लोक संगीत की सेवा कर रहे हैं। इन वाद्यों की सुरक्षा का मुख्य कारण यही रहा है कि उन्हें विशिष्ट जातियों ने अपनी जीविका का साधन बना रखा है। अब ज्यों ज्यों आर्थिक प्रश्न विकट होने लगेगा त्यों ही त्यों ये वाद्य लोप होने लगेंगे।

लोक संस्कृति एवं राजस्थानी—हमने उपरोक्त पृष्ठों में राजस्थान प्रदेश के गठन, राजस्थानी भाषा एवं उसकी छंदोमय व्यवस्था और राजस्थानी लोक संगीत को विहंगम दृष्टि से देखा। इसके पश्चात एक तत्व जो प्रमुखतम बनकर सामने आता है—वह है क्या राजस्थान नामक प्रदेश में हमें सांस्कृतिक एकता का आभास मिलता है ? यदि यह आभास मिलता है तो उसका आधार कहां है और उसे किस प्रकार अनुभूत सत्य पर स्थापित किया जा सकता है।

इस तथ्य या सत्य के निरूपण के लिये सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न भाषा का है। भाषा ही मनुष्य की वह सर्वोच्च थाती है जिससे मानववंशीय समूहों को राष्ट्रीयता अथवा प्रादेशिकता की सीमा में बांधा जाता है। राजस्थान प्रदेश की भाषा राजस्थानी है—यह कह देने से वर्तमान समय में किसी को संतोष नहीं होता। क्योंकि स्वाधीनता प्राप्त करने के बाद भारत में जिस प्रकार भाषावार प्रान्तों का गठन हुआ और उसके लिये संघर्ष हुआ—उसके कारण राष्ट्रीय चेतना के प्रति सजग व्यक्ति चौंक गये और उन्हें भय लगने लगा है कि कहीं भारत की राष्ट्रीयता ही खंडित न हो जाय। भाषायी प्रांतों की मांग के पीछे प्रादेशिक संकीर्णता के तत्व उभरते दिखाई दे रहे हैं और वे हमारे बृहत् देश को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं—ऐसा सतही तौर पर दिखाई देता है। किंतु भाषावार अथवा सांस्कृतिक एकता के आधार पर प्रदेशों का निर्माण व उसके जरिये भारतीय विकास की कल्पना ही वह दृढ़ आधार प्रदान करने में समर्थ है जो भारत की एकता को कृत्रिम रूप से नहीं, अपितु वास्तविक रूप से स्थापित करने में सशक्त है। यदि यह आधार नहीं लिया गया होता तो विखंडन का क्रम अधिक उग्र और विनाशकारी होता। यह समस्या भारतीय राष्ट्र के लिये चाहे नये रूप में आई हो, किन्तु विश्व के अनेकानेक बृहत् देशों ने इस समस्या को सुलझाया है और इसके परिणाम ऐतिहासिक रूप से हमें उपलब्ध हैं। यदि हम उन परिणामों

का, पूर्वाग्रहों को छोड़ कर, अध्ययन करें तो पता चलेगा कि संस्कृति की अपनी विशिष्टताओं के मानवीय विकास क्रम में एक स्वतंत्रता का भाव अपेक्षित है। यदि वह स्वतंत्रता उस संस्कृति को नहीं मिलती है तो उसे दमन कहा जाता है और दमन के विरोध में विद्रोह और हिंसा का साम्राज्य फैलने लगता है। अतः विश्व के दार्शनिकों एवं लोकतंत्रीय विचार-शैली के विद्वानों ने संस्कृति की एक इकाई को अपनी नैसर्गिक आवश्यकताओं के साथ, एक स्वर से स्वीकार किया है।

किन्तु यहां प्रश्न उठता है कि क्या संपूर्ण भारत एक सांस्कृतिक इकाई नहीं है ? इसका उत्तर है कि भारतीय संस्कृति एक इकाई है जिसमें विभिन्न संस्कृतियों के पुष्प अपने विभिन्न रंगों में पुष्पित हुए हैं — किन्तु उनका मूल एक है। डाली, पत्ते और पुष्पों के प्राकृतिक गठन में विभेद है। भारत विभिन्न संस्कृतियों के बीच एकता का एक महान देश है। इस विराट सत्य की स्वीकृति के उपरान्त जब हम लोक संस्कृति के विषय पर आते हैं तो प्रत्येक टहनी और पुष्प को स्वस्थ व नैसर्गिक सौन्दर्य प्रदान करने का प्रयत्न प्रारंभ हो जाता है और तभी हमें ' विभिन्नता ' का भय ग्रस्त कर लेता है। वस्तुतः यह भय व्यर्थ है और जहां इस तथ्य की स्पष्ट स्वीकारोक्ति नहीं है — वहां हमें भारतीय संस्कृति के एकता के तत्वों को प्रकाश में लाना जरूरी है।

राजस्थान का प्रदेश भी भारतीय संस्कृति के विराटत्व में अपने ही प्रकाश-पुंज से आलोकित है। इस प्रकाश - पुंज का अभिव्यक्त रूप राजस्थानी भाषा या वाणी में उत्तरित हुआ है। इस प्रदेश का यह दुर्भाग्य रहा है कि स्वतंत्रता की स्वर्ण वेला के समय अनजाने और अनायास ही अपनी भाषा को मान्यता नहीं दिला सका। यह मान्यता भी कौनसी ? हमारे द्वारा बनाये गये संविधान की एक सूची में। किन्तु भारत के विद्वान एवं दिग्गज संवैधानिक विद्वानों ने यह स्पष्ट संकेत संविधान में छोड़ा कि ज्यों ज्यों विभिन्न भाषाएं विकसित होती जायेंगी — उन्हें राष्ट्रीय भाषाओं की सूची में मिला लिया जायेगा।

लेकिन वास्तविक समस्या राजस्थानी भाषा की संवैधानिक मान्यता नहीं है। उसकी समस्या तो है कि वह भाषा के रूप में मानी भी जाय अथवा नहीं। इसमें आग्रह है, पूर्वाग्रह है और दुराग्रह है। किन्तु यदि हम इन सभी 'आग्रहों' को छोड़कर सोचें तो स्पष्ट हो जायेगा कि भारतीय भाषाओं के उदय काल [अर्थात् ७ वीं-८वीं शताब्दी] से ही राजस्थानी का अस्तित्व बनने लगा था और साहित्य के इतिहास क्रम में अटूट रूप से चलता रहा। इस तथ्य से कोई भी विज्ञ विद्वान इन्कार नहीं करता। लेकिन एक प्रश्न को फिर भी उठाया जाता है कि संपूर्ण राजस्थान में एक टकसाली भाषा का रूप नहीं है। उसके किस रूप को स्वीकार किया जाय ? इस प्रदेश में अनेक बोलियां हैं – किस बोली को भाषा

मानलें ? राजस्थानी भाषा का जो विघटनात्मक स्वरूप है, उसे तूल देकर यह सहज ही मान लिया जाता है कि राजस्थानी नामक कोई भाषा नहीं है । लेकिन भाषा-विद् इस बात को मानते हैं कि किसी भी भाषा को भाषा मानने के लिये पहली आवश्यकता है कि उसकी अपनी बोलियां हों । आज हिन्दी स्वयं भी विभिन्न बोलियों के अस्तित्व के साथ अपने को भाषा मनवाने में सफल हो सकी है। इतना ही नहीं, जिन जिन भाषाओं को संविधान में मान्यता मिली है--उन सभी भाषाओं की अपनी अपनी बोलियां हैं, उनके रूप भेद हैं, उच्चारणगत तथ्यों में अन्तर हैं । अतः इस तर्क में भी वजन नहीं है कि बोलियों की गणना के आधार पर राज-स्थानी भाषा के अस्तित्व से मना किया जाये ।

हम यदि राजस्थानी भाषा के व्याकरणगत रूप को भलीभांति देखने का प्रयास करें तो ज्ञात होगा कि जैसलमेर से लेकर ढूंढाड़ तक और गंगानगर से लेकर हाड़ौती क्षेत्र तक बोली जाने वाली भाषा में न केवल एकता है अपितु वह संस्कृति की दृष्टि से एक उन्नततम विधा है। इस भाषा के संज्ञा-रूप, एक वचन व बहु वचन रूप , काल के रूप , कृदन्तों के रूप एवं क्रियाओं के प्रकारों में न पूर्ण रूप से केवल साम्य है , अपितु एक प्रकार के नियमों पर संचालित हैं ।

भाषा की इस एकता को राजस्थान की लोक संस्कृति के अध्ययन से तो पृथक किया ही नहीं जा सकता । जब लोक कथा, लोकगीत, कहावतें , मुहावरे, रीति-रिवाज , जातीय गठन , अल्पनाएं , अनुष्ठान , त्योहार , देवी देवता , शकुन , मान्यताएं , विश्वास आदि आदि तथ्यों को देखते हैं तो सारा राजस्थान एक सत्व की तरह आंखों में घूम जाता है । विशेषकर वे कलात्मक अभिव्यक्तियां जिनका आधार भाषा है [यथा कथा , गीत] — उनको लिखित रूप देते हैं तो समानता का विस्तृत रूप एकदम स्पष्ट हो जाता है। इस लिखित रूप को यदि हम प्राचीन एवं मध्ययुगीन राजस्थानी के लिखित साहित्य के नियमोपनियमों से संचालित कर लेते हैं तो सभी बोलियों का विभेद समाप्त हो जाता है । यह आश्चर्य की बात नहीं माननी चाहिये कि आज के संपूर्ण राजस्थान में 'लोकगीतों' की भाषा में , उसके व्याकरणगत गठन में एवं सांगीतिक आवेग में सुस्पष्ट एकता है ।

यह लोक संस्कृति का अध्ययन राजस्थान के किसी भी अध्येता को, अपने ही तर्क और विवेक से इस बात को मानने के लिये मजबूर कर देता है कि राज-स्थान की संस्कृति का पुष्प एक ही है -- उसमें विभाजन नहीं है , उसमें विघ-टन नहीं है , उसमें अन्तर नहीं है और जो कुछ है वह एकत्व लिये हुए है ।

३

लोक गीत

लोक गीत — हमारे यहां लोक गीतों की परंपरा बहुत पुरानी है। वाल्मीकि और व्यास, भास और कालिदास तथा कबीर, तुलसी व सूर की कविताओं का तो समय निश्चित है, पर गीतों की रचनाओं का कोई समय निश्चित नहीं है। वेदों के मंत्र दृष्टाओं का तो पता है, पर गीतों के रचयिताओं का पता नहीं है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों में अनेक स्थानों पर गीतों के गाये जाने के उल्लेख मिलते हैं। किन्तु इनकी उत्पत्ति का समय और स्थान उपलब्ध नहीं होता। यह गीत रचने वालों की दृष्टि से अनाम और व्यक्तित्व की छाप से मुक्त होते हैं। किन्तु ऐसे सुन्दर एवं सरस गीतों की रचना करके समाज, नाम, ग्राम और समय की चिन्ता किये बिना अपनी अभिव्यक्ति कर लेता है। परन्तु गीतों का सृजन मानव उत्पत्ति के साथ ही हुआ ज्ञात होता है। इनकी प्राचीनता का पता हमें संस्कृत के आदि ग्रंथों से मिलता है। ऋग्वेद में गाथिक शब्द है। वह गाने के काम में लिया गया हैं। वैवाहिक गीतों के लिये नराशंसी अथवा रैमी नाम के शब्द रूप भी मिलते हैं। उक्त समय की सारी पद्य-बद्ध गाथाएं मंगल अवसरों पर गाई जाने वाली जान पड़ती हैं। ब्राह्मण एवं आरण्यक ग्रंथों में इस समय की अनेक गाथाओं से लोक गीतों की साकारता के प्रमाण मिलते है। ब्राह्मण ने ऋक को देवी से और गाथा को मानवी से संबंधित बताया है। अतएव गाथा शब्द के संबंध से लोक गीत की प्राचीनता का पूरा पता लग जाता हैं। महाभारत के आदिपर्व की बहुत सी गाथाओं के रूप भी अति प्राचीनतम हैं। गीत उल्लसित लोक-मानस से निकलने वाली अटूट धारा है, जिनका लोक प्रतिभा द्वारा विभिन्न अवसरों पर सृजन एवं गान होता आया है। यह कार्य पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों ने अधिक किया जान पड़ता है। गीतों की अनाम रचना करने में महिला समाज की अपनी विशिष्टता तथा अपना योगदान रहा है। स्त्रियों द्वारा गीत गाये जाने का वर्णन श्री सोमदेव ने ११ वीं शताब्दी के अभिलाषार्थ चिंतामणि ग्रंथ में भी किया है। संगीत रत्ना-

कर में ओवी को एक गेय प्रकार बताया है। रामचरितमानस में सयानी सखियों के गीत गाने का उल्लेख गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी किया है – "चली संग लइ सखी सयानी, गावत गीत मनोहर बानी।"

लोक गीत आदि-मानव के आनंदावेशमय उद्‌गार हैं। यह जन साधारण की प्रफुल्लित एवं मस्त अनुभूतियों के अजस्त्र श्रोत है। आदिम-मानव हृदय की भावनाओं का यह भंडार अपनी संजीवनी शक्ति के बल पर अब तक जीवित है और एक कंठ से दूसरे कंठ में, एक हृदय से दूसरे हृदय में प्रतिध्वनित होता चला आ रहा है। इसमें विशाल लोक समूह की भव्य भावनाएं भरी रहती हैं।

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में यह मत व्यक्त किया गया है कि कोई भी संगीत, यहां तक कि कैसा ही संगीत क्यों न हो, वह लोक गीतों पर ही निर्भर है। संगीत की दृष्टि से, लोक गीत बिना किसी वाद्य-यंत्र के, स्वाभाविक एवं हृदय-स्पर्शी स्वरों का प्रतिनिधित्व करते हैं। लोक गीत मानव जाति के हृदय से, अपने अनुभवजन्य प्रकृति - प्रदत्त आवाज के द्वारा अचानक घुमड़ कर प्रकट होने वाला संगीत है, जो हृदय का बोझ हलका करने के लिये एवं भावों की अभिव्यक्ति के निमित्त बोलने की अपेक्षा गाकर गीतों द्वारा व्यक्त किया जाता है। लोक गीतों में साधारण जनता की मधुर भावनाओं एवं जटिल समस्याओं का सुन्दर चित्रांकन मिलता है। हर एक राष्ट्र का इतिहास सृजन उसके शासन सत्ताधारियों से प्रेरित नहीं परन्तु वास्तविक इतिहास, लोक की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों पर आश्रित रहता है, जिसका अनुभव हमें लोक गीतों द्वारा प्राप्त होता है। इनमें जन-मानस, देश-काल और मानव मात्र की स्थिति का संपूर्ण वर्णन और प्रतिफलन मिलता है।

लोक वार्ता साहित्य में राजस्थानी लोक गीत अमूल्य हीरे हैं। इनका प्रादुर्भाव मानव वाणी के साथ ही हुआ है। इस तरह के लोक गीत विश्व भर के समस्त राष्ट्रों में पाये जाते हैं। ये मौखिक परंपरा पर ही आश्रित रहे हैं और ये कला गीतों से पृथक होते हैं। कला गीत साहित्यिक परंपरा में आते हैं। पर लोक गीत केवल अनुश्रुति पर ही अवलम्बित रहते हैं। लोक (जन साधारण) में कलामय काव्य कम प्रचलित होता है। संत साहित्य परंपरा-श्रुत होकर भी काव्य-कला प्रवीण होता हुआ साहित्य के नजदीक पहुंच जाता है। भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वान मौखिक प्रेरणा से मिलने वाले इस गीत साहित्य को कला पूर्ण साहित्य से भिन्न मानते हैं। पर ये गीत पैतृक निधि होते हुए भी अपने कई तत्वों में तो कला पूर्ण हो ही जाते हैं। कला गीत भी अपने मूल रूप में लोकाभिव्यक्ति से कतई दूर नहीं रह सकते।

लोक गीत, ग्राम गीत और जन गीत—लोक गीत लोक साहित्य का ही संगीत-

प्रधान अंग है–जिसका उद्भव मगर और ग्राम के संयुक्त साधारण मानव के द्वारा होता है, इसमें ग्राम गीत भी हैं और कस्बों तथा शहरों में गाये जाने वाले गीत भी। लोक गीत सामान्य जनता के मुखारविन्द से निःसृत मौखिक गीत हैं और ग्राम गीत लोक गीत के पुरवणी एवं सहायक गीत हैं। ग्राम गीत को लोक गीत कहा जा सकता है मर लोक गीत को ग्राम गीत नहीं। कई लोग लोक गीत का शब्दार्थ जन गीत कर देते हैं। पर जन गीत विशिष्ट मानव गीत होते हैं। लोक गीत और जन गीत में बहुत बड़ा भेद हैं। जहां लोक साहित्य के प्रणेता का व्यक्तित्व लोक समाज की अनुभूतियों में विलय होकर लोक स्वरूपी बन जाता है और अपने अस्तित्व को खो देता है। वहां जन साहित्य में उसका रचयिता अपने व्यक्तित्व की छाप को प्रत्यक्ष लिये रहता है। उसका साहित्य [जन साहित्य] कंठानुकंठ गति से नहीं चलता। वह तो प्रेस के मार्फत मुद्रित एवं प्रकाशित होकर जनता के सामने आता है अथवा अन्य साधनों से जन प्रिय (पोपुलर) बन जाता है। वस्तुतः जन - साहित्य शिक्षित जन द्वारा ही रचा जाता हैं और जन-सामान्य की संवेदना के आन्दोलन सहित अभिव्यक्त होता है। श्री नामवरसिंह के शब्दों में– "जन साहित्य औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न समाज व्यवस्था की भूमिका में प्रवेश करने वाले सामान्य जन का साहित्य है।"

यह किसी विशेष व्यक्ति की कलम से लिखा जाकर जनहित-रक्षक के रूप में सामने आता है। पर लोक साहित्य जन-साधारण के अनुष्ठानार्थ, विनोदार्थ तथा शिक्षार्थ जन साधारण द्वारा ही निर्मित होता है। यह गीत व्यक्ति सापेक्ष नहीं होता। यही अन्तर लोक गीत और जन-गीत के लिये लागू होता है।

डिंगल साहित्य में विशिष्ट छन्दों को भी गीत कहा जाता है। यद्यपि ये गीत कहे जाते हैं, मगर गाये नहीं जाते। इनका एक विशेष लय के साथ पाठ होता है। कई लोग इन्हें गाने की वस्तु समझकर लोक गीतों में मिलाने लग जाते हैं, पर ये डिंगल गीत अधिकांशतः चारणों की कृतियां हैं तथा ये डिंगल गीत वार्णिक एवं मात्रिक छन्दों के ही नियमों में प्रतिबंधित होते हैं। साथ ही इनका रचना विधान हमारे शास्त्रीय छंदोविधान से भिन्न होता है।

लोक गीत, लोक के मनोभावों को प्रगट करने के लिये सरलतम साधन हैं। इसमें मानव समाज की आदि मनोवृत्तियां और भावनाएं, उनके हर्ष-उल्लास, शोक-विषाद, प्रेम-ईर्ष्या, भय-आशंका, घृणा, ग्लानि, आश्चर्य, विस्मय, भक्ति, निवृत्ति आदि भाव अपने सरल से सरल और विशुद्ध रागात्मक रूप में प्रकाशित होते हैं। समाज में जो नर-नारी कोई विशेष काम करते हैं, जनता उनके गीत भी गाने लग जाती है। इनकी ध्वनियों में लोक संगीत के तत्व मौजूद होते हैं। इससे मानव के समूहगत भावों की अभिव्यक्ति प्रदर्शित होती है। पर इनमें

रचयिता का निजी व्यक्तित्व नहीं होता। निर्वैयक्तिक तत्व की महत्ता उन्हें समूह-परक बनाती है। तभी लोक गीतों की संज्ञा इन्हें मिलती है। इनका यही गुणात्मक तथ्य कला गीतों के तथ्य से भिन्न है।

प्रोफेसर किटरिज और जेम्स ग्रिम लोक गीतों का निमार्णकर्ता जन-समूह को ही मानते हैं। आदिम मानव समाज, नृतत्व शास्त्र एवं समाज विज्ञान के विज्ञाता भी पर्याप्त प्रमाणों से इस बात की पुष्टि करते हैं कि मानव प्रारम्भ से ही समूह में रहता आया है और उसने अपने मूल भावों की अभिव्यक्ति सदा सामूहिक गीतों में की है। विश्व भर के कार्य और उत्सव लोक गीतों से पूर्ण होते हैं। शास्त्रीय संगीत के विद्वान, गीतों को लयबद्धता एवं भाव सबलता का प्रमाण मानते हैं। वे सारे संसार के लोक गीतों की धुनों में भारतीयता का संमिश्रण एवं सार पाया जाना सिद्ध करते हैं। विश्व के लोक गीतों का लक्षण बताते हुए एक पाश्चात्य विद्वान लिखते हैं — "फ्रान्स के गीत या तो सुन्दर [स्वादु] होते हैं या नाटकीय, जर्मन गीत बोझिल एवं हृदय-स्पर्शी, सामान्य योरोपीय गीत गेय, गुनगुनाने योग्य, पुष्ट एवं असम्बद्ध, रूसी गीत उदास और अनगढ़, स्पेनी मंद आर स्वप्निल तथा हिब्रू गीत आध्यात्मिक और प्रभावशाली होते हैं। अमरीकी नीग्रो गीत विलक्षण, सुन्दर एवं गहरी मार्मिकता लिये होते हैं" [१]

हिन्दी साहित्य कोष के संपादकों ने अपने विशद ग्रंथ में लोक गीत शब्द द्वारा १. लोक में प्रचलित गीत २. लोक निर्मित गीत ३. लोक विषयक गीत आदि अर्थ संकेत दिये हैं। फिर लोक गीत का स्पष्ट विवेचन करते हैं और लोक-सृजनकर्ताओं के निर्वैयक्तिक गीतों को लोक गीत बताते हैं जो अत्यन्त महत्वपूर्ण लोकाभिव्यक्ति है।

लोक गीत लोक के लिये अपार ज्ञान के श्रोत हैं। वसुधा पर मानवता का अभ्युदय गीत-शिक्षा का ही अमृत फल है। इसी साहित्य केन्द्र से हमें सारी कलाओं की व्यंजनाएं मिलती हैं। लोक गीत हमें समाज-सापेक्ष नियम सिखाते हैं, नीति बताते हैं एवं अपने कार्य में ध्यान केन्द्रित कराते हैं। इनमें बुद्धि को सत्पथ की ओर ले जाने वाली एक महान शक्ति है। भारतीय लोक अति प्राचीन समय से गीत गाता आया हैं। उनमें गीतों का अपना गृहस्थ है, और उसमें उनका अनुशासित परिवार है। वह व्याकरण के संज्ञा शब्द की भांति आदमी, जानवर, जाति, स्थान और गुण आदि प्रत्येक वस्तु की संश्लिष्ट गौरव गाथा लिये हुए है। वास्तव में गीत मानव जीवन के छाया-स्वरूप पुरातन संगी हैं। उसके हर घड़ी के साथी हैं। फिर भी कभी कभी कोई भारतीय साहित्य शास्त्री लोक गीत संग्रह कार्य को देखकर नाक भौंह सिकोड़ते दिखाई देते हैं और गीत संग्रह के

---

१ भारतीय लोक साहित्य—श्याम परमार

हानि - लाभ विषयक प्रश्न भी पूछ लेते हैं। किन्तु ये प्रश्न उन्हें रसिक विधाता से ही करने चाहिये क्योंकि उसीने भारत भूमि को तमाम दुनिया से अनुपम बनाया है। मनुष्य के लिए प्रकृति के उन्माद से उन्मत्त होना स्वाभाविक ही है। जब प्रकृति का रूप सौन्दर्य ही आकर्षक एवं मनमोहक हो तो उनका दास [मनुष्य] कब कुंठित रह सकता है ? अस्तु, मैं यहां उन सर्व महानुभावों की शंका का समाधान लोक गीतों की उपादेयता का महत्व बताकर करना चाहता हूं।

गीतों में विवाह और जन्म के अवसरों को बड़े सरल ढंग से गाया जाता है। इसलिए गीतों द्वारा मानव रीति - रिवाजों का सरल रहन-सहन ही सामने आता है। उनमें न ओसर है, न दहेज, न पर्दा है, न अनमेल विवाह है। केवल अलौकिक आदर्शों के ही पाठ मिलते हैं। मातृ-पितृ भक्ति, आज्ञापालन, पतिवृत धर्म, भाई बहिन का प्रेम, पति-पत्नी का सुखी जीवन, सतीत्व की रक्षा, नीति के बोल, सरल शिक्षा, शील और साहस, शूरता - वीरता आदि की अनेक कोमल कथाएं गीतों में उच्च आदर्शों सहित व्यक्त हैं। गीत का मानव चरित्र के गठन पर प्रभाव पड़ता है। क्योंकि वे उनके अभिन्न मित्र हैं। और वे साधुता की ओर ही ले जाते हैं। गांव के वृद्ध स्त्री - पुरुषों से वार्तालाप किया है और वे जानते हैं कि गीतों से उनमें कैसी नीतिमयता आ जाती है। गीतों को सुनकर जब हम अपने चरित्र को टटोलते हैं कि हममें ये गुण कहां तक विद्यमान हैं और फिर उन्हें धारण करने का प्रयत्न करते हैं। सास-बहू की कलह, देवरानी जेठानी तथा ननद-भोजाई की लड़ाई और नव - वधू के साथ दुर्व्यवहार करने वाली स्त्रियों को सन्मार्ग दिखाने के पथ-प्रदर्शक हैं। गीतों में दुष्टों के कुकर्म की सजा को सुनकर तो कितने ही व्यक्ति गिरते गिरते बचते हैं। कौन सा ऐसा स्त्री पुरुष होगा, जो गीतों की पवित्रता और स्वच्छता सुन लेने के बाद अपने चरित्र को सशक्त बनाने के लिए प्रेरित न हुआ हो ? इनकी त्याग - विराग भावना से चरित्र शुभ गुणों से भरने लगता है। यह प्रभाव बालक, युवा और वृद्ध पर अनायास ही पड़ता रहता है। लोक गीत मानव - मात्र के अमुपम आदर्श हैं। जिससे इन्हें हृदय में स्थान दिया गया है, सज्जनता उनकी अपनी सीख है।

लोक गीतों का अध्ययन करने से हमें अपने देश के रंगीले स्थान, सुन्दर वस्तुएं, कला-कारीगरी और रीति-प्रथाओं का परिचय मिलेगा। जिनसे कवियों, लेखकों, नेताओं और कलाकरों को पर्याप्त लाभ होगा। इनके संग्रह संपादन से मौखिक एवं विस्मृत-साहित्य की रक्षा हो जायेगी और नारी जाति के बुद्धि विवेक तथा रचना विज्ञान के पवित्र तत्वों की अन्य कवियों से तुलना करना संभव होगा। कविता की नवीन विधाओं पर लोक गीतों की सरसता का प्रभाव भी उनके लिपिबद्ध होने से ही पड़ेगा। आधुनिक कविता की कृत्रिमता की अपेक्षा लोक गीतों की

स्वाभाविकता का असर मानव मात्र पर अधिक शीघ्र एवं स्थायी होगा। इनके द्वारा जन-साधारण को भी प्रभावित किया जा सकता हैं। इन गीतों में असंख्य सुन्दर, अनोखे, सरल एवं उपयोगी शब्द मिलते हैं, जिनको प्रकाशित करवा देना ही राष्ट्रभाषा की उन्नति में श्रेष्ठ सहयोग हैं। हिन्दी साहित्य में प्रवाद, पहेलियों, कहावतों, और चटपटे मुहावरों की अभी अत्यन्त आवश्यकता है। लोक नाट्यों और उनकी शैली से भी बहुत कुछ सीखा जा सकता है। इन नाटकों में अनेक मानवीय परिस्थितियों के सफल चित्रण मिलते हैं। प्रेमी को पाने का प्रयत्न, विघ्नों के बाद फल प्राप्ति, विश्वासघात, दुर्घटनाएं, सौतिया डाह, पहेलियों द्वारा सौभाग्य निर्माण, पुनर्जीवन की कल्पना, स्वर्ग-नरक, भूत-प्रेत, डायन-स्यारी, परीलोक, पशुओं की मनुष्य सेवा, प्रतिज्ञा की दृढ़ता, आवृत्ति, ध्रुवक, संख्या, वर्णन, लोक साहित्य के गंभीर तत्व हैं। संस्कृत शास्त्रियों व वैदिक वाङ्मय का मुंह फुलाकर अभिमान रखने वाले लोगों ने अपनी पेटपूर्ति के लिए दुनिया को बहुत गुमराह किया। उन्होंने धर्म के नाम पर अन्य लोगों को मूर्ख बनाने की सदैव चेष्टा की है। प्राचीन शिक्षा-शास्त्रियों को देखने से ज्ञात होता है कि उन्होंने जन साधारण को पढ़ने से रोका है। बाहर जाने से मना किया हैं। लुक छिपकर पढ़ या बढ़ जाने पर उनका सर्वनाश करवाया है। केवल कबीर, नानक, रैदास, मीरां जैसे भक्ति संप्रदाय के उन्नायक संत ही इसके अपवाद हैं।

वैदिक धर्मावलम्बियों ने अपने आप को सर्व-सर्वा बनाये रखने के लिए प्रत्येक संस्कार को वैदिक मंत्रों से पूर्ण करने का विधान प्रचलित किया है। जन-साधारण के लोकाचार को बंद करने का भारी प्रयत्न भी किया है। मगर प्रतिभा पर किसी जाति या वर्ग विशेष का अधिकार नहीं रहता है। प्रकृति का न्याय मानव मात्र पर एक जैसा होता है। तभी तो यह आचार व्यवहार आज भी ज्यों के त्यों चल रहे हैं।

लोक गीत क्या है — समस्त जन-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएं गीत-बद्ध होकर व्यक्त हुई, उनके लिए लोक गीत उपयुक्त शब्द है।[१] यह शब्द जन समुदाय द्वारा गाये जाने वाले गीत विभागों का एक विशेष परंपरागत गीतात्मक वृत्त है। गीतों की प्राचीनता तथा सत्यता हमें उनके मौखिक रूप से प्राप्त होती है। दादी-पोती और नानी-दोहिती के कथ्य संबंधों में यह लोकाभिव्यक्ति विकसित होती है। भारतवर्ष में आर्य आगमन से पूर्व की यह मूल समाज-शिक्षा पद्धति वैदिक सभ्यता से भिन्न होती हुई भी मूल सभ्यता के रूप में अमर, अखंडित एवं सतत् प्रवहशील है। आज भी प्रत्येक मांगलिक मौके पर आचार, परपरा एवं अनुष्ठान को मनाने के लिए लोक गीत ही श्रेष्ठ माने जाते हैं।

---

१ भारतीय लोक साहित्य पृ. २५ डॉ. श्याम परमार

लोक गीत तो मानव-जीवन के वेद, उपनिषद्, पुराण और महाकाव्य हैं। संभवतया आरंभिक युग के वेद भी आर्य जाति के गीत ही थे। अतः जिस प्रकार वेद आर्य संस्कृति के ज्ञानागार हैं, वैसे ही लोक गीत भी हमारी संस्कृति के भव्य भंडार हैं।

लोक गीतों की विशेषता — लोक गीतों की यह विशेषता है कि ये जीवन के साथ एकदम घुले मिले हैं। यह साहित्य जन-समुदाय का हीरक मंडित अमूल्य भूषण है। इसे हृदय का नवसर हार, कंठ का कंठाभूषण और कानों का शृंगार कहा जा सकता है। गीत जीवन के साथ तादात्म्य होकर चलते हैं। लोक इनकी आत्मा हैं और ये लोक की आत्मा हैं। किसी एक के नहीं, सारे लोक का अपनत्व इनमें निहित है। गीत जनता की मौखिक भावाभिव्यक्ति है, लिखित साहित्य नहीं। लिखित होने पर तो उन पर देश व काल की छाया दिखाई देने लगती है। मगर जन मानस का सरल स्वभाव उनसे कदापि अलग नहीं हो सकता। वह प्रेम और अभिन्नता को एकनिष्ठ भाव से व्यक्त करता रहता है। पल पल की पवित्र भावनाएं लोक गीतों में गुंफित हैं। पारिवारिक पोशाक का कौनसा ऐसा आंचल है, जो इन गीतों की लोकानुभूति से न गूंथा गया हो। जीवन की मृदुलता और कठिनाइयों की घड़ियां, दोनों ही दशाएं गीतों में आकर मिली हैं। ज्ञान की सरलता और सत्यता, विचारों की गंभीरता एवं व्यापकता इन लोक गीतों में ऐसी ओत-प्रोत हो रही है कि इनके कलात्मक महत्व को देखकर आश्चर्य करना पड़ता है। ये गीत दुख-सुख भरे जीवन का इन्द्रधनुष हैं। इनकी मौलिकता, विशेषता, आह्लाद, आह्वान और मर्म अपने ही निरालेपन में लवलीन हैं।

गीतों का महत्व एवं उपयोगिता — मनुष्य अपने सांस्कृतिक विकास में पीढ़ियों से राग-रंग रहस्य, एवं दुख-सुख की बातें लिये हुए चल रहा हैं। हर्ष और खुशी में उसने गीत गाकर आनन्द मनाया है और दुख व विषाद में भूलकर भी गीत द्वारा उसको सहन कर लेने की शक्ति पाई है। अतः कहना पड़ता है कि लोकगीत मानव जीवन को प्रमुदित करने वाली एक अचूक औषधि है। दुख-सुख के समय मानव मन में जैसे भी भाव उठे, वे सब रामबाण का काम कर गये। इनसे हमारी रागात्मक वृत्ति जागृति होती है, जिससे सारा संसार प्रिय भी लगता है। लोक गीत न होते तो दुखी और निराशामय संसार होता। लोक गीत विषाद को मिटाने, शोक को समेटने एवं दुख को मेटने वाले नित नये उपदेश हैं। विवाह, त्यौहार पुत्र-जन्म पर हर्ष का भाव – तो बहिन और बेटी की विदाई पर ये लौकिक-दुख की तीव्रता को सहने की शक्ति देते हैं। कहीं कहीं मृत्यु के अवसर पर भी लोक गीत या भजन गाकर आपत्ति बेला को शीघ्र व्यतीत किया जाता है। राजस्थान में वृद्ध की मौत पर हर के हिंडोले और शिशु की मौत पर 'छेड़े'

प्रचलित हैं। इन विरह गीतों को राजस्थानी में झुरावा या झोरावा कहते हैं।

लोक गीतों के साहित्यिक अरमान भी हैं। ये विशुद्ध भावों से परिपूर्ण हैं। तीज और भात के गीत किसी भी भाई और बहिन को विह्वल कर देंगे। ओळू, आम्बौ, इमली, इकथंभियौ महल, उमराव, निहालदे, नींबू, नारंगी, नीमड़लौ, नीमड़ली, नागजी, नींदड़ली, बड़लौ, बांवळियौ, बदळी, पीपळी, पपीयौ, पन्नामारू, पनजी, मरवौ, मूमल, मिरगौ, महल, सूवटो, सपनौ, कुरजां, कसुंभौ, लहरियौ, जल्लौ और हिंडोळौ आदि राजस्थानी लोक गीतों का महत्व जितना दाम्पत्य प्रेम के लिए संभव हुआ है, उतना किसी अन्य काव्य का नहीं। कितनी ही ऐसी काव्य व्यंजनाएं हैं जो हमारे पारिवारिक संबंधों को सशक्त बनाती हैं। लोक गीत प्रत्येक राष्ट्र की आत्मा होते हैं। ये प्राकृतिक प्रवृत्तियों का परिष्कार करके सुख शान्ति प्रदान करते हैं। सामूहिक लोक गीत अत्यंत रंजक और रमणीय होते हैं। कृत्रिम सौन्दर्य की व्यवस्था के अभाव में मनुष्य को अपने मनोरंजन की स्वयं ही व्यवस्था करनी पड़ती है। छोटे नाडों पर, मोटे टीबों पर, खेतों और खोडों में, पगडंडियों एवं पहाड़ों पर, सीर-सांझे में ठेके-चेजे पर, संयोग-वियोग में, रम्मत-रास के रागात्मक अवसर पर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव भावनाएं गीत बनकर उनके कंठ से निकलती हैं। खेती में हल चलाते हुए तेजा का गान, श्रम-कार्यों में रामभणत, कुओं पर दूहों का संगीत, पशु चराते हुए डोरी का गाना और फागुन में धमालें बोलना मानव प्रकृति के नाना रूपों को व्यक्त करते हैं। मनुष्य के इन्हीं गानों का नाम लोक गीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसके रुदन की, उसकी समस्त सुख-दुख की कहानी गीतों में चित्रित है। मानवीय जीवन की प्रसन्नता व झुंझलाहट या क्रोध व प्रेम या राग व विराग का लोक गीतों में सर्वोत्कृष्ट रूप मिलता है। जन जीवन में व्यापक रहने वाली आकांक्षाएं और इच्छाएं जितनी लोक गीतों में स्पष्ट और सजीव होती हैं, वैसी अन्यत्र दुर्लभ हैं।

गीतों में उपमान एवं विशेषण—राजस्थानी लोक गीतों में पारिवारिक व्यक्तियों के उपमान एवं विशेषण बड़े बेजोड़ रूप से उपस्थित किये जाते हैं। उनमें पति को भंवरजी, कंवरजी, ढोलामारू, जल्लामारू, गाढ़ामारू, पन्नामारू, बिलालो, बादीलो, आंटीलौ, हठीलौ, मदछकियौ, मनभरियौ जैसे अनेक विशेषणों से विभूषित किया गया हैं, पत्नी को इन्ही गीतों में, धण, गोरी, मरवण, नाजौ, मृगानैणी, मानेतण, तनक मिजाजण, सदा सुरंगी नार आदि नामों से पुकारा जाता है। पिता को जलधर, हेमाचल, माता को रातादेई, भाई को कांनकंवर और भोजाई को राधा आदि अपनत्व एवं श्रद्धा भरे उपमानों से गाया

जाता है। इनमें बहिन-बहिनोई, सास-स्वसुर, जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी, ननद-ननदोई और पुत्र-कन्या आदि के विशेषणों के सुन्दर रूप पाये जाते हैं। स्त्री सौन्दर्य के नखशिख उपमान तो गीतों की जान ही हैं। इनमें स्त्री शृंगार पति शृंगार, अभिवादन, आशीर्वाद के संकेत भी देखने योग्य होते हैं।

गीतों में प्रश्नोत्तर कीं कला — याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान एवं गार्गी जैसी विदुषी के वाद विवाद की भांति कुछ लोक गीतों में प्रथम प्रश्न करके फिर उसी में सीधा उत्तर दिया जाता है। इस संवादी पद्धति से गीत का रूप निखर जाता है। गीतों का मान और इज्जत भी प्रश्नोत्तर के ढंग से बढ़ती है। यह प्रवृत्ति सामाजिक भावना से संयुक्त होकर विशुद्ध रूप में चलती है और इसी से लोक मानस का सही पता पड़ता है तथा जीवन को विशालता का आकर्षण बढ़ता है। कांकरड़ी, कलाळी, पणियारी, लाडूड़ो, कुरजां, सारसड़ी, सुपनौ, ओळूं, इकथंभियो महल, वायरो आदि जवाब सवाल के श्रेष्ठ गीतात्मक उदाहरण है।

पशु पक्षियों को संबोधन — पशु-पक्षी मानव जाति से निकटतम प्राणी हैं। जगत में इनसे पर्याप्त सहयोग मनुष्य को मिलता है। पक्षियों के आकाश में उड़ने की विद्या और ऊंट घोड़ों की शीघ्र संचार कला, दुख-सुख के मौके पर मानव को सदा से सहायता देते आये हैं। महाकवि कालिदास ने अपने शृंगार वर्णन में अनेक पशु-पक्षियों को स्थान दिया है। लोक गीतों में भी ये पशु-पक्षी, मानव के सुख-दुख की अनुभूति में सरोबार दिखाई देते हैं। काग, कबूतर, कुरज, तीतर, कमेड़ी, सारस, सूवो, मिरगो, खोड़ो मिरगलो, मिनड़ी, कुत्तो, गऊमाता, रुणझुण बैल, भाजणो करहलो, लीली घोड़ी, सिंह, सूकर, रींछ आदि का सहयोग-वर्णन गीतों की एक प्रवृत्ति है। नाम जोड़ना, संख्या बताना और बाट जोहना भी राजस्थानी लोक गीतों के कुछ विशिष्ट तथ्य हैं।

लोक गीतों में नारी का स्थान — लोक गीतों के सृजन में जितना महिलाओं ने हाथ बंटाया है, उतना पुरुषों ने संभवतया नहीं। नारी जाति सीधी, सरल एवं भावप्रवण होती है। उसके मृदुल कंठों ने अपने अभावों और भावनाओं की अभिव्यक्ति सुख तथा दुख दोनों मौकों पर गाकर ही प्रगट की है। नारियां पुरुषों की तरह वाद्य का सहारा नहीं चाहतीं। भाई से भेंट करते समय बहिन अपनी जीवन-गाथा गीतों में व्यक्त कर देती है। उसके स्नेहपूर्ण विलाप में भी एक लयपूर्ण संगीतात्मकता होती है। स्त्री गीतों में शृंगार, प्रणय, वियोग तथा वात्सल्य का भाव प्रचुर मात्रा में है। हर्ष, विषाद, प्रेम-घृणा, उल्लास-उमंग, करुणा-विलाप भी नारी जीवन के बालिका, वधू एवं जननी आदि रूपों में एक एक कर यथा अवसर मिलते रहते हैं। उसके जीवन का धार्मिक स्वरूप लोक गीतों में चित्रित है। वह प्रत्येक उत्सव, त्योहार, रीति-रिवाज, पर्व, प्रथा को मनाने के

लिए गाती है। इन सब के माध्यम से उसका संपूर्ण जीवन ही संगीतमय है।

राजस्थानी लोक गीतों में नारी के दो चित्र प्रायः प्रस्तुत हुए हैं। वह एक ओर तो भाव-प्रवीण नागरी, पतिव्रता प्रियतमा, गृह-लक्ष्मी, सती-साध्वी तथा श्रेष्ठतम माता एवं सास है। उसके बालिका, युवती, प्रौढ़ा और वृद्धा के विभिन्न रूप अपनी सीमाओं में पूर्ण हैं। दूसरी तरफ स्त्री का अन्य रूप फूहड़, कर्कशा, कलहगारी, कामणगारी, छिनाळ, जैमतो, जेळू आदि व्यवहारों से विभूषित भी है। स्त्री अपने सामाजिक संबंधों में माता, ननद, सास, देवरानी जेठानी, मासी, विमाता, सौत आदि कई रूपों में नियोजित है। इन सभी संबंधों के बीच गीतों में उसे सुन्दर उपमानों सहित अत्यंत मनोहर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पत्नी-पद्मनी, ननद-सोदरा (सुभद्रा), सास-सावित्री, देवरानी-बाला, भोली-नार, जेठानी-नारादूती, विमाता-मांई मां, सोक, मा जाई-सी के नामों द्वारा गाई जाती है।

लोक गीतों में महिला जीवन की सभी परिस्थितियों एवं अवस्थाओं का अनुपम उल्लेख पाया जाता है। गीत उनके जीवन के बहुत प्रिय साथी हैं और वे बचपन से ही तन्मय होकर उन्हें गाया करती हैं। गीतों के काल्पनिक जगत की अभिव्यक्ति उनकी भावी इच्छाओं की पूर्ति के साथ शिक्षा का क्रम भी बन जाया करती है। नन्हीं बालिकायें लोक गीतों द्वारा अपने जीवन के रहस्यों की पूर्ण जानकारी प्राप्त कर लेती हैं। गीतों की क्रियाओं में वे सभी बातें प्रत्यक्ष होती हैं, जो उसे बड़ी होने पर निभानी पड़ती हैं। प्रायः देखा जाता है कि बालिकाओं के गीतों में गृहस्थी के कर्त्तव्य संभालने की सहज स्वाभाविक कामना व्यक्त होती है। एक बालिका गीतों में बड़े चाव से मां की इजाजत लेकर ही ऊंचे मगरे पर जाना चाहती है। वहां से वह पक्की काचरियां लाने की इच्छुक है। उनको छीलकर छोंकेगी और भैया को जिमायेगी। भैया उसका भाई है, वह भैया की बहिन है –

ऊंचे मगरे जाऊं अे माय, किरिया काचर लाऊं अे माय
छीलनै छमकाऊं अे माय, वीरा नै जीमाऊं अे माय
वीरो म्हारो भाई अे माय, हूं वीरा री बाई अे माय

बालिकाएं अपने छोटे भाइयों को सुलाने या खिलाने के लिए भी ममत्वपूर्ण लोरियां गाती हैं –

सोई रे भाई सोई, थारी मां करै रसोई
रसोई में खाजा, थारो बाप दिल्ली रो राजा
लोरी अे बाई लोरी, तनै दूध भरी कटोरी
ऊपर सक्कर भोरी।

बालिकाओं के हृदय की भावकुता का परिचय उनके प्रारम्भिक जीवन से ही पाया जाता है। वे नानेरा, दादेरा, गौरी-पूजा, घुड़ला-चुड़ला, अम्मा-धीवड़ गुड्डे-गुड्डी और साथण-सहेलियों से संबंधी अनेक भावी विषयों पर दुख-सुख के गीत गाने आरंभ कर देती हैं। बचपन बीत जाने के बाद उनका मिलन बड़ी मुश्किल से होता है। उसी का चित्रांकन इस गीत में है —

वीरा रै विवाह में बहिन सूं मिलस्यां
बाबल सूं मिलस्यां मायड़ सूं मिलस्यां
साथण सूं कद मिलस्यां अे
साथण मेळौ दोरौ अे

कीड़ी होस्यां नगरां फिरस्यां
नटणी होस्यां बास्यां चढ़स्यां
साथण सूं कद मिलस्यां अे
साथण मेळौ दोरौ अे

टाटी ओले नणदल बोली
जद म्हारौ जीवड़ौ दोरौ अे
मगरै (धोरां) लारै साथण बोली
जद म्हारौ जिवड़ौ सोरौ अे
साथण मेळौ दोरौ अे

वास्तव में नारी जीवन की यह एक मार्मिक स्थिति है। लड़के बड़े होकर अपने बचपन के साथियों से हर जगह मिल सकते हैं, पर लड़कियां विवाहोपरांत अपनी सहेलियों को कदापि नहीं पा सकतीं। ये पीहर और खेल के गीत उसे बड़ी होने पर भूलने ही पड़ते हैं। बालिका से किशोरावस्था में पहुंच कर उसे अपने नये जीवन के गीत गाने होते हैं। इन गीतों में बना-बनी, सास-ससुर, और देवर-जेठ, नणद-भोजाई आदि कुटुम्ब वालों के साथ अपने रहन-सहन और व्यवहारों का वर्णन होता है। कन्या का यह गीत व्यवहार ही उसको गृहरानी या गृह लक्ष्मी बना देता है। रमणी बन जाने पर उसके हृदय में सुमधुर, रमणीय एवं करुण कल्पनाओं के भव्य नीरद उमड़ पड़ते हैं। जिससे हर समय जीवन के अथाह समुद्र में गीतों की हिलोरें उठती रहती हैं। गीतों में स्त्री अपना सारा मन और मस्तिष्क लगा देती है। काल्पनिक वर्णनों में उन्हें खूब सोचना पड़ता है, जिसका प्रभाव उसकी बुद्धि पर पड़ता ही है। यही गीत स्वरों में अनुरंजित होते हैं और उनका सहज स्त्रैण कंठ उनका सहायक सिद्ध होता है।

बचपन से पीहर की धूल में खेलती हुई लाडली बेटी को औरों की होकर विदा होना पड़ता है। तब उसका जीवन एक नया प्रश्न बन जाता है। वह पिता के घर पर पराई बन जाती है। वह पशु की तरह दूसरों के हाथ संभला दी

जाती है। फिर तो वह कभी कभी अनजाने मौकों पर ही पुनः अपने घर आ सकेगी —

के आवूंगी मैं ओसर-मोसर, के वीरा रै विवाह

कन्या को ससुराल गमन के समय कोयल की उपमा दी जाती है। उसे वर के साथ विदा करते समय गीतों की हृदयद्रावक कल्पना से अभिनन्दित किया जाता है —

बन खंड री अे कोयल, बन खंड छोड़ कठै चाली ?
थारै आळे अे दीवाळै गुड़िया धरी, बन खंड री अे कोयल
थारी सात सहेलियां उणमणी, बन खंड री अे कोयल

उधर वही कन्या अपने ससुराल पहुंचकर पुनः लोक गीतों के द्वारा आव-भगत करवाती है। उसके विवाहित जीवन के प्रत्येक कर्त्तव्य का उल्लेख इन गीतों में अभिव्यक्त हुआ है।

गीत एक स्फूर्तिप्रद क्रिया है। इसके द्वारा स्त्रियां अपनी अन्तरंग इच्छाओं को प्रकाश में लाकर जीवन की परतंत्रता से थोड़ी देर के लिए मुक्त हो जाती हैं। राजस्थान में नारियां अपने जेठ एवं ससुर से बोलती नहीं हैं, मगर जब उनके गीत गाने बैठती हैं, तब सारा हृदय खोलकर आगे धर देती हैं। अपने गहने-जेवर तथा मकानादि के अभीष्ट अभावों और अपनी सारी इच्छाओं का निर्भय होकर वर्णन कर देती हैं —

सुसराजी म्हानै चोबारौ चिणवादौ
बैठै थारी कुळ, कुळ बहू जी म्हारा राज
बवड़ ओ म्हैं ई फेर चिणावस्यां
चेजारै रो बेटो घरां, घरां नही जी म्हारा राज
सुसराजी थै बोली रा मीठा
दमड़ा थास्यूं ना, ना कढ़ै जी म्हारा राज

वे नटखट देवरों को भी मीठे गीतों से खुश कर देती हैं—

आज तो म्हारै देवरियै नै सरदी गरमी लागी रे
सळसळ करतौ सीरौ करदू रे
पण सारौ कोनीं रे, देवर म्हारा रे।

ऐसे गीत महिलाओं के तृप्त जीवन, उज्जवल चरित्र तथा प्रौढ़ प्रवृत्तियों के द्योतक होते हैं। नारी के पास तो अपने आप को खुलकर अभिव्यक्त करने का साधन केवल ये लोक गीत ही हैं।

नारी ने अपनी गहरी मनोवेदनाओं को गीतों में गाकर समाज के सामने रखा है; अपने अन्तस्तल की पीड़ा को प्रगट करने का नारी ने गीत को एक सहज

आर सरल माध्यम बना रखा है। मानव का प्रेमोद्यान सदैव नारी की देवसरि के गीतों के नीर से ही सिंचित होकर लहलहाता है । सुख या दुख कैसा ही समय क्यों न हो नारी ने अपना गान विसर्जन नहीं किया । उसने हंसी-विनोद और व्यंग की जो विशुद्धता बिखेरीं है, वह सर्वोच्च साहित्य का कान्ता-सम्मत गुण है। इस प्रकार नारियों ने लोक गीतों में परंपरा, इतिहास और संस्कृति की संपत्ति को अपने कंठ के सहारे सुरक्षित रखा है।

भारतीय नारी परिवार के दैनन्दिन कार्यों में व्यस्त रहती है। इसीलिये वह गृहस्थ के प्रत्येक कार्य को गीत में गाकर मंगलमय भी बना देती हैं। हर घड़ी के कार्यों में उसके साथ लोक गीत लगे रहते हैं। खेती, चाकी-चूल्हा, चरखे आदि से ही स्त्री जाति की समृद्धि है। वे चरखा चलाती हुई गाती हैं—

चाल रै चरखला, हाल रै चरखला
ताकू तेरो सोवणो, लाल गुलाबी माल
चरकू मरकूं फिरै घणेरो, मधरो मधरो चाल

चरखा महिलाओं के लिए एक उत्पादन-क्रिया का साधन हैं। रूई पैदा करके कारीगरी के साथ कपड़ा बुनना और रंगना उनको अपनी परंपरा है। ये घरेलू धन्धों के छोटे छोटे कार्य ही नारियों के कल्पना बोध हैं। इन्हीं से प्रेरित होकर वे गीत रचना करती हैं और सहयोगी वस्तु एवं पात्रों के माध्यम से अपने वर्ग की घटनायें गुंफित कर लेती हैं। इन लोक गीतों के साथ माताओं की लोरियां, बहिनों का स्नेह और पत्नियों की विरह वेदना बड़ी तिक्त एवं हृदयस्पर्शी स्वाभाविकता से अंकित है। ये लोक गीत इतिहास, भूगोल, पिंगल, व्याकरण, तर्क और न्याय को आत्मसात किये हुये हैं और प्रकृति व कला का कोई प्रेरक तथ्य इनकी दृष्टि से अछूता नहीं रहा।

शिक्षा के विद्या-मन्दिर—लोक गीत नारी शिक्षा के महान केन्द्र हैं। इनकी शिक्षा को हृदयंगम करने के लिए कोई खास स्थिति, समय एवं व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती। यह तो स्वतंत्र रूप से हर समय प्रत्येक जन मन में जमा होती जाती है। लोक गीत अनादि काल से भारतीय संस्कृति के अभिन्न तथ्य की भांति मानव के साथ साथ चलते आये हैं। राजस्थान को तो गीत-रत्नाकर कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। यहां के गीत अपनी प्रादेशिक अभिव्यंजना के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। ये संगीत तथा साहित्य दोनों पक्षों से संपूर्ण होते हैं। उपदेश और नीति की दृष्टि से लोक गीत बड़े गौरवशाली परंपरा के नियामक हैं और यहां की स्त्रियों के लिए ज्ञान कोष का कार्य करते हैं। इस ज्ञान को ग्रामीण जनता आंखों द्वारा अंगीकृत नहीं करके, कानों द्वारा ग्रहण करती है। नारी इन्हीं गीतों से शील, साहस, सतीव्रत, सहृदयता एवं प्रेम आदि अनेक आदर्श गुणों के

ज्ञान एवं लाभ को प्राप्त करती है। छोटी - छोटी बालिकायें माताओं से अपने भावी वधू जीवन में पृथक पृथक प्रकृति वाले लोगों के साथ पृथक पृथक परिस्थितियों में रहने की बातें इन लोक गीतों को सुनकर गुन लेती हैं, जो नये जीवन में प्रवेश करने पर उन्हें सुखी गृहस्थ की नारी [रानी] बना देने में समर्थ होते हैं। वह मां का प्यार, बहिनों का दुलार, सखी-सहेलियों का प्रेम भूलकर श्वसुर, पति, सास और जेठानियों आदि से लाड़प्यार तथा दुलार को पाने की अधिकारिणी बन जाती हैं। वह अपने शिष्ट व्यवहार से सारे घर को सम्पन्न, यशस्वी एवं मंगलमय कर देती हैं। सचमुच राजस्थान की नारी घर की शोभा, शृंगार, त्याग और तपस्या की देवी है। धरती की भांति सहिष्णु, गंगा की तरह निर्मल, हिमालय की तरह अडिग और शरत् बाबू के शब्दों में मंदिर की भांति पवित्र है। सद्गुणों से संपन्न महिलाओं की उक्तियाँ भी गंभीर और चारित्रिक महत्ता को व्यक्त करती हैं। उनमें छिछोरपन या हलकापन कभी नहीं आ पाता। पीहर से विदा होती हुई एक वधू की मनोभावना को संवादात्मक शैली में इस प्रकार गाया गया है :

अेकर करहला थारा, मारूजी पाछा मोड़,
राजींदा ढोला श्रोळूं घणी श्रावै म्हारा बावौसा री।
सुन्दर गोरी श्रोळूं थारी परी रे निवार,
चम्पक वरणी, वावौसा री श्रोळूं सुसरौजी थारी भांगसी।

अेकवर मारूजी घुड़लाजी पाछा वेर
राजींदा ढोला श्रोळूं घणी श्रावै म्हारी माव री।
सुन्दर गोरी श्रोळूं थारी परी रे निवार
मिरगा नैणी, माऊजी री श्रोळूं सासूजी थारी भांगसी।

राजस्थानी में ओळूं याद को कहते हैं। इस गीत में पत्नी पति से प्रार्थना करती है कि केवल एक बार प्रियतम अपने ऊंट को लौटा लो। राजन ! मुझे अपने पिता की बहुत याद आती है। पति उसको विश्वास दिलाता है कि चम्पकवरणी प्रियतमा, तुम पिता की याद छोड़ो, पिता की कमी आगे तुम्हारे श्वसुरजी पूरी कर देंगे। फिर वह अपनी मां की बात कहती है। तब वह पुनः कहता है कि मां की कमी तुम्हारी सासूजी पूरी कर देंगी। इस तरह नव वधू को अपने नवीन जीवन में कर्त्तव्यों की याद भी दिला दी जाती है और उसके नये परिवार में ही अपने परिवार का समाहार होना आवश्यक बना दिया जाता है।

एक अन्य गीत में सास एवं बहू का सुखद संवाब है। इस गीत में नव वधू अपने परिवार रूपी आभूषणों की उपमाओं में ससुराल के संबंधों को पूर्ण आत्मसमर्पण के साथ व्यक्त करती है :

म्हारे आंगण आंबौ मोरियौ
पसवाड़े जी पसरी गज वेल
सहेल्यां अे आंबौ मोरियौ,
म्हारा सासूजी पूछे बहू थारे गहणां रो अरथ बताय
सहेल्यां अे आंबौ मोरियौ।
सासूजी गहणां जी गहणां कांई करो,
गहणां म्हारा देवर जेठ।
सासूजी गहणां जी म्हारो सह परिवार,
सहेल्यां अे आंबौ मोरियौ।

इसी गीत का एक अन्य रूपान्तर है:

मधुवन रो आंबौ मोरियौ
ओ तो पसरियौ आखो मारवाड़
बहू रिमझिम महलां ऊतरी
आई कर सोळा सिणगार,
सासूजी पूछयौ बहू म्हारा
गहणां पहर दिखाव
मधुवन रो आंबौ मोरियौ,
म्हारा सुसरोजी गढ़ रा राजवी
सासूजी म्हारा रतन भंडार
मधुवन रो अे आंबौ मोरियौ

मधुवन का यह आम्र मौर खिल आया है। वह सारे मारवाड़ में फैल गया है। सुखी संपन्न कुटुंब का प्रतीक यह आम्र वृक्ष है। सोलह शृंगार करके बहू महल से उतरी तब सासू ने कहा: बहू अपना शृंगार तो हमें बताओ? तब मुस्कराकर बहू कहती है: मेरे ससुर गढ़ के राजवी हैं और सासू रत्नों की भंडार है। इसी तरह सारे परिवार की सराहना मधुवन के आम्रमौर की भांति फैली हुई बताकर बहू कहती है कि वह सासू की कोख पर न्यौछावर है। तब सासू कहती है कि बहू मैं भी तुम्हारे बोल पर बलिहारी जाती हूं कि तुमने सारे परिवार को इस स्नेह से दुलराया है।

स्त्री का सच्चा आभूषण तो उसका परिवार ही है और पति की सेवा ही उसका शृंगार है। तुलसीदासजी ने भी कहा है—

एक ही धर्म एक व्रत नेमा, काय बचन मन पतिपद प्रेमा।

लोक गीतों की शिक्षा तुलसीदासजी की कविता की व्यापकता की तरह राजस्थान के प्रत्येक घर और गांव की नारियों में व्याप्त है। वह एक किसान की झोंपड़ी से लेकर राजमहलों की महारानियों तक यही उज्जवल संदेश देती है।

गीत रचना में नारी का योग—घर गृहस्थी के सांस्कृतिक एवं पारिवारिक लोक गीतों की रचयिता प्रायः नारियां ही हैं। इन्होंने भांति भांति के अवसरों पर अनेक प्रकार के गीत रचे हैं। नारी के गीतों में करुण रस के अनोखे झरने प्रवाहित हैं। इनकी भाषा बड़ी सरल एवं सरस होती है। स्त्रियों ने अपनी वृत्तियों के अनुरूप, सहज स्फूर्तिवश, औपचारिक एवं स्वयं के मनोरंजनार्थ इस साहित्य का निर्माण किया है। प्रकृति प्रेम तो इनमें कूट कूट कर भरा हुआ है और स्वाभाविकता इनका अविच्छिन्न गुण है। यहां आदर्श गृहस्थी का चित्र स्पष्ट रेखाओं में अंकित मिलता है। ये गीत मानव इतिहास के सुनहरे अनुभव हैं। अधिकांश लोक गीतों के सृजन का श्रेय नारियों को ही प्राप्त हो सका है। यह देवताओं एवं सिद्ध कवियों द्वारा सृजन किया हुआ साहित्य नहीं, ग्राम स्त्रियों के मुखारविन्द से निःसृत अपौरूषेय वाङ्मय है, जिसका तात्पर्य लोक साहित्य से है। अतः लोक साहित्य में विविध स्त्रियों के गीतों के अखूट खजाने भरे हुए है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे सांस्कृतिक गीत अपौरूपेय वाङ्मय कहलायेंगे। गीत ही क्या, अधिकांश कथायें, कहावतें, पहेलियां भी इसी वाङ्मय के अन्तर्गत आती हैं। पर गीतों का सामाजिक, आर्थिक, ऐतिहासिक एवं मनोवैज्ञानिक ढंग से पूर्ण अध्ययन होना चाहिये। क्योंकि समाज द्वारा सदियों से सताई जाने वाली स्त्री जाति के इन वैविध्य पूर्ण रत्नों का अब उनके स्वर, लय, टेक, चरण एवं काव्य आदि की सृजन क्रिया का मूल्यांकन किया जाना अत्यन्त आवश्यक बन गया है।

लोक गीतों के महिला समाज द्वारा सृजन किये जाने के विषय में राजस्थान संगीत नाटक अकादमी द्वारा प्रकाशित 'क्यूं दीनी परदेस' की भूमिका में विजयदानजी देथा ने लिखा है "लोकगीतों की कलापूर्ण अभिव्यंजनाओं का सृजक कौन हैं और वह सृजक स्वयं को किस प्रकार इतनी सदियों से छिपाये हुए चले आ रहा है। लोक गीतों में वर्णित विषयों की महत्ता, कल्पनाओं की अनोखी सूझ-बूझ, अलंकारों का सहज ताना-बाना और उनकी अभिव्यक्ति के सामाजिक दायित्व को आत्मसात करते हुए क्या हम सृजक के अस्तित्व का आभास नहीं लगा सकते? लोकगीतों रूपी भव्य महल के असंख्य गवाक्षों में से किसी एक गवाक्ष में बैठकर क्या हम अपनी कल्पना से इस महल के वैभवशाली स्वामी का पता नहीं लगा सकते? सच है कि कला में कलाकार अदृश्य है! किन्तु अदृश्य होने मात्र से ही कला का कारण अस्तित्व विहीन नहीं होता। वस्तुतः कलाकार के अनुभूतिमय और संवेदनशील मन में ही कला का जीवन प्रश्रय पाता है और कलाकार अपने को कितना ही छिपाने का प्रयत्न करले, उसके अस्तित्व की झलक निरपेक्षतम कला में भी मिल ही जाती है।

तब लोकगीतों का निरपेक्षतम एवं अदृश्यतम सृजक कौन है? कहने को

सभी लोक साहित्य के मर्मज्ञ एक स्वर में कहते हैं कि लोक वांगमय की कलिका समाज की सामूहिक औसत भावनाओं में खिलती है। ये औसत भावनाएं समाज की मूल धारणा, रहन-सहन, रीति-रिवाज, मांगलिक अनुष्ठान, पर्व-त्योहारों से रस संग्रह करती है और समाज की दिव्य वाणी में अपने आपको व्यक्त किया करती है। लोक-गीत सामूहिक व्यंजना है इसलिये इसका सृजन भी सामूहिक है और सृजक 'समूह' है। बात बिल्कुल सच है। किंतु हमें समूह नामक शब्द को कुछ और गहराई से समझना है।

किसी भी सामाजिक समूह को हम निश्चय ही दो विभागों में विभाजित कर सकते हैं। समाज का एक विभाग पुरुष है और दूसरा – स्त्री। सामाजिक जीवन के दायित्वों को निभाने के लिये, पर्वों-अनुष्ठानों को मनाने या मानने के लिये इन दोनों ही सहज विभक्त समूहों को हम पृथक पृथक करें तो एक नवीनतम सत्य का आभास होने लगता है। ये जो लोकगीतों की कलात्मक अभिव्यंजनाएं हैं, उनका सीधा व सहज संबंध हमारे स्त्री समुदाय से निकल आता है। मानों महिलाओं की मांगलिक कामनाओं का छंदोमय और गीतिमय स्वरूप ही लोक संगीत की जीवात्मा है।"

लोकगीतों का वर्गीकरण: किसी भी अध्ययन की सुचारुता के लिए यह आवश्यक है कि उसे अपनी प्रवृत्तिमूलक रूप में वर्गीकृत करके आत्मसात किया जाय। इसी दृष्टि से लोकगीतों का वर्गीकरण भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। भारतीय विद्वानों ने लोकगीतों का वर्गीकरण अपनी अपनी संग्रहीत सामग्रियों के अनुसार किया है। यदि अधिकांश विद्वानों के वर्गीकरण को सामने रखें तो मुख्यतया निम्नलिखित प्रवृत्तियां दृष्टिगत होती हैं:

१. गीत के विषयानुसार यथा दाम्पत्य प्रेम, भाई-बहिन, देवी देवता आदि रूपों में।
२. गीत गाने वालों की दृष्टि के अनुसार यथा पुरुष गीत, महिला गीत, बाल्य गीत आदि।
३. गीत के प्रयोग विधा के अनुसार यथा नृत्य गीत, नाट्य गीत, सामुहिक गीत, एकाकी गीत आदि।
४. गीत के रचना-तत्व की दृष्टि से यथा मुक्तक एवं प्रबंध।
५. गीत के उपयोग के अनुसार यथा अनुष्ठान के लिये या मनोरंजन के लिये।
६. गीत का भौगोलिक दृष्टि से वर्गीकरण यथा पहाड़ी क्षेत्र, समतल क्षेत्र आदि।
७. लोकगीतों का संस्कारों की दृष्टि से विभाजन यथा जन्म, विवाह,

मृत्यु इत्यादि सोलहों संस्कारों के अनुसार।

निश्चय है कि ये सभी वर्गीकरण लोकगीतों की विभिन्न वृत्तियों के प्रतीक हैं और सभी में तथ्यात्मक स्थिति का अल्पांश ही मिलता है। कहीं वर्गीकरण में अत्यंत सहज विभागों को ले लिया गया है तो कहीं उसे अनेक विभागों में बांटा गया है। जहां विभागों का अभाव है, वहां वर्गीकरण की सुविधा का लाभ नहीं मिलता और जहां विभाजन को बढ़ाया गया हैं, वहां समान प्रवृत्तियों का पुनरावर्तन भी हो गया है। ये सभी वर्गीकरण के स्वरूप मुख्यतया उसी सामग्री से संबंधी मानने चाहिये जो विशिष्ट संग्राहक एवं विद्वान ने एकत्रित की है और अपने अध्ययन की मुख्य प्रवृत्ति को स्थापित करने की दृष्टि से उसने उल्लिखित किये हैं।

अतः राजस्थानी लोक गीतों के विषय और प्रकारों का वर्गीकरण करना कोई साधारण प्रयास नहीं है। इनके असंख्य विषय और अनन्त प्रकार हैं। विभिन्न क्षेत्रों तथा जातियों के लोक गीतों में प्रकार ढूंढने पर प्रतीत होता है कि राजस्थान के सभी प्रदेशों और जातियों के लोक गीतों में अधिकांशतः समानता है। अतः लोक गीतों का सामान्य वर्गीकरण होगा [विषयानुसार गीतों का विभाजन] सामाजिक गीत, संस्कारों और रीति-रिवाजों के गीत, धार्मिक विश्वासों के गीत, वैलासिक रस सृष्टि के गीत और कार्य के गीत। गेय शैली की दृष्टि से यही वर्गीकरण हो सकता है: १. सामूहिक गीत २. एकाकी गीत ३. नृत्य गीत ४. नाटच गीत और ५. ख्याल गीत। गायक-गायिकाओं की दृष्टि से लोक गीतों के तीन भेद कर सकते हैं– १. महिलाओं के गीत २. पुरूषों के गीत ३. बालक और बालिकाओं के गीत। भारतीय विद्वानों ने अपने अपने दृष्टिकोण से लोक गीतों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है। पंडित रामनरेश त्रिपाठी ने भारतीय गीतों को ११ श्रेणियों में विभक्त किया है। श्री रामचन्द्र भालेराव ने गीत संग्रह की योजना में एक बार चार विभाग किये थे; अर्थात प्रथम संस्कार विषयक, द्वितीय माहवारी, तृतीय सामाजिक व ऐतिहासिक, चतुर्थ विविध गीत। इस योजना में ९० प्रकार के गीतों की सूची थी। बृज लोक साहित्य के विद्वान डॉ. सत्येन्द्र ने गाने के उद्देश्य को लेकर सरल गीतों को दो भागों [अनुष्ठान संबंधी और मनोरंजन संबंधी] में बांटकर गायन के समय के मुताबिक विभाजन किया है। इनके वर्गीकरण में पांच विभाग मान्य हैं। डॉ. शंकरलाल यादव ने लोक गीतों को लघुगीत और प्रबंध गीत नामक दो श्रेणियों में बांटा है। फिर लघु गीत के पांच प्रकार और प्रबन्ध गीत के [लोक गाथात्मक] चार प्रकार लिखे हैं।

सीता, दमयन्ती तथा लीला ने अपने धूलि धूसरित मणियां नामक लोक गीत विवेचन-ग्रंथ में गीतों के ६ खंड करके उनको १४ प्रकार में विभक्त किया

है। डॉ. श्याम परमार लोक गीतों की मुक्तक और प्रबन्धक दो श्रेणी मानने के बाद उनके पांच प्रकार बताते हैं। श्री कृष्णदेव उपाध्याय ने संस्कारों को महि-लाओं की अवसरोपयुक्त भाव भंगिमाओं से निखरे माधुर्य, संगीत एवं ऋतु-परिवर्तन से पैदा हुए गीतों के भेदों की दृष्टि से भोजपुरी लोक गीतों का वर्गी-करण किया है। श्री रामसिंह और उनके साथियों ने राजस्थानी लोक गीत साहित्य को पुरुष गीत और स्त्री गीत दो भेद बताकर इनके साथ बाल गीत नामक तीसरा भेद भी किया है। फिर इन तीनों के उपभेद भी बताये हैं। नरोत्तमदासजी स्वामी ने इन भेदों के बीस स्थूल प्रकार और २२६ सूक्ष्म भेद बताये हैं। श्रीमती लक्ष्मी कुमारी चूंडावत ने सात तथा श्रीमती स्वर्णलता अग्रवाल ने भी राजस्थानी लोक गीतों को विभिन्न प्रकार से विभाजित किया है। डॉ. स्वर्ण लता अग्रवाल ने संस्कार संबंधी गीत, व्यवसायिक गीत, अवसर के गीत एवं वैलासिक अथवा मनोरंजन संबंधी नाम से चार श्रेणियों में राजस्थानी लोक गीतों के करीब ५० प्रकार सम्मिलित किये हैं। श्रीमती अग्रवाल का यह विषय वर्गी-करण सन्तोषजनक नहीं है। श्री ओमप्रकाश ने बाल गीत, स्त्री गीत और पुरूषों के गीत नाम से मालवीय लोक गीतों का तीन प्रकार से वर्गीकरण किया है।

श्री मनोहर शर्मा ने राजस्थानी लोक गीतों में पौराणिक प्रकारों पर एक शोधपूर्ण निबन्ध लिखा है। उन्होंने धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक प्रचलित नाम प्रकार भी बताये हैं। श्री गींडाराम वर्मा ने राजस्थानी लोक गीतों का महत्व सामाजिक, पारिवारिक और संगीत तीन प्रकार की दृष्टि से माना है। उन्होंने शेखावाटी के लोक गीतों का भी वर्गीकरण किया है, जो नीचे दिया जा रहा है– १. त्यौहारों के लोक गीत २. पर्वों के लोक गीत ३. सामाजिक एवं पारिवारिक सन्तों एवं ऐतिहासिक वीर पुरूषों के गीत। श्री देवीलाल सामर ने लोक गीतों को ६ प्रकार से समझने का प्रयास किया है। साथ ही उन्होंने निम्नलिखित तीन और प्रकार संभव बताये हैं– १. मरूभूमि के गीत [बीकानेर, जैसलमेर आदि के गीत] २. पहाड़ी प्रदेश के लोक गीत [डूंगरपुर, उदयपुर, बांसवाड़ा, प्रतापगढ़, सिरोही और आबू आदि क्षेत्र के गीत] ३. चंबल तथा बनास की समतल भूमि के लोक गीत [कोटा, जयपुर, भरतपुर, अलवर, करौली तथा धौलपुर आदि के गीत].

आज से तीस वर्ष पूर्व स्वर्गीय पंडित सूर्यकरणजी पारीक ने राजस्थानी लोक गीतों में क्षेत्र विस्तार की कल्पना निम्नलिखित तालिका लिखकर की थी। तालिका इस प्रकार है: १. देवी देवता और पितरों के गीत २. ऋतुओं के गीत ३. तीर्थों के गीत ४. व्रत, उपवास और त्योहारों के गीत ५. संस्कारों के गीत ६. विवाह के गीत ७. भाई बहिन के गीत ८. साली-सालेलियों के गीत ९. पति-

पत्नी के प्रेम के गीत [संयोग-वियोग] १०. पणिहारियों के गीत ११. प्रेम के गीत १२. चक्की पीसने के गीत १३. बालिकाओं के गीत १४. चरखे के गीत १५. प्रभाती गीत १६. हरजस १७. धमालें १८. देश प्रेम के गीत १९. राजकीय गीत २०. राज दरबार, मजलिस, शिकार, दारू के गीत २१. जम्मे के गीत २२. सिद्धपुरुषों के गीत २३. वीरों के गीत एवं ऐतिहासिक गीत २४. ग्वालों के गीत, हास्यरस के गीत २५. पशु पक्षी संबंधी गीत २६. शान्त रस के गीत २७. गांवों के गीत २८. नाट्य गीत २९. विविध। यह तालिका गीत-प्रेमियों के लिए अत्यन्त ग्राह्य है। हम इसमें जन्म के गीत, नारी के शील और साहस के गीत, सती प्रथा के गीत, भोज्य पदार्थों के गीत, पक्षियों के संदेश गीत, रूढ़िवादी गीत आदि जोड़कर कुछ विषय और आप लोगों के समक्ष रखते हैं।

लोक गीतों की उत्पत्ति के दृष्टिकोण से पाश्चात्य विद्वान प्रोफेसर किटरिज ने परम्परागत लोक गीत, चारणी लोक गीत, साहित्यिक गीत और विकृत लोक गीत नाम के चार भेद बताये हैं। उक्त चार विभागों को ढोला मारू रा दूहा की साहित्यिक आलोचना करते हुए संपादकों ने काम में लिया है। मारिया लीच ने युगोस्लाविया के गीतों के पुरूष व नारी के रूप में दो ही भेद बताये हैं। परन्तु फोकलोर के साधारण वर्गीकरण में ६ भेद किये हैं। १. बालकों के गीत २. सगाई और विवाह के गीत [लव, कोर्टशिप एंड मेरीज] ३. मृत्यु संबंधी गीत ४. आवसरिक गीत ५. नृत्य गीत और ६. वैलासिक गीत। राजस्थान के लोक गीतों के लिए यह वर्गीकरण भी निर्दोष नहीं है।

राजस्थान में मेले, त्यौहारों, देवी देवताओं, सिद्ध पुरुषों, ऐतिहासिक व्यक्तियों, सतियों, शक्तियों और बायों, चारणी देवियों तथा आइयों, पितर-पितरानियों संबंधी गीतों के अनेक प्रकार उपलब्ध होते हैं। अतः उनके वर्गीकरण के साथ विषय विभाजन तालिका का होना भी अनिवार्य है। भिन्न भिन्न समयों पर भिन्न भिन्न गीत गाये जाते हैं। उन सबकी विधाओं का वैज्ञानिक प्रकटीकरण होना चाहिये।

संस्कार संबंधी गीत– १. जन्म के गीत – गर्भाधान और सीमन्तोन्नयन के गीत जन्म से पहले के हैं। इनका शास्त्रों में भी नाम आता है। प्रसव के गीतों का तो बहुत ही प्रचलन है। इनमें नौ महीनों का सांगोपांग वर्णन मिलता है। नामकरण के समय पीड़ा, घेवर, घूघरी, दाई, अजवायन, सूंठ-गूंद, पीला, पीपलामूल, जच्चारानी आदि विषयों से संबंधी कई मनोहर गीत गाये जाते हैं। इसके बाद जलवा, अन्नप्राशन, झडूले और कर्ण-छेदन के गीत गाये जाते हैं। इस तरह से समाज में बच्चा जनने वाली जच्चा का गीतों द्वारा भारी स्वागत किया जाता है। देश के अन्य स्थानों में कन्या-जन्म हर्ष एवं उल्लास का विषय नहीं

माना जाता, मगर राजस्थान में 'आंधी लारै मेह अर बेटी लारै बेटो' की कहावत प्रचलित है। 'धी बिना धरम किस्यो' की कहावत चलती है। इसी आशा की वजह से कहीं कहीं यहां कन्या-जन्म पर भी गुड़ बांटना, गीत गाना आदि खुशी के कार्य किये जाते हैं। सभ्य घरों में लड़की को छोरी कहकर नहीं पुकारा जाता। भूल से नाम आ जाने पर माताएं एक दिन का व्रत रखती हैं। उसको बाई या कुंवरी कहा जाता हैं। लोक गीतों में कन्या के लिए धीवड़ या धीया शब्द का प्रयोग अधिक होता है। हमारे यहां धीवड़ को दादी द्वारा बड़े सुन्दर ढंग से लोरियां भी दी जाती हैं। उदाहरण स्वरूप उनकी कुछ पंक्तियां नीचे लिख रहा हूं—

१. लोरी बाई लोरी, गाय ब्याई गोरी
दूध भरी कटोरी, ऊपर सक्कर भोरी
इण राजबहिन रै कारणै, दो साजन आया बारणै
काकलिया मनै ही नहीं, मामलिया मनै ही नहीं, मां रौ नाक नवै ही नहीं,
भूवा कवै भतीजी देस्यां, पण गहणा घणा लेस्यां।
सेर सोनो लो, थारी बाई म्हांने दो।
सेर सोनो बाळां, म्हारी धीवड़ नीं दिखाळां।

२. बाई अे बाई तूं बारै मती जाई, थारै सोनै रा केस कतर लेली काई,
बाई अे बाई तूं बारै मती जाई, थारा झबरक झूंटणा तोड़ लेली काई,
बाई अे बाई तूं बारै मती जाई, थारै साळूड़े री कोर कतर लेली काई,

३. बाई रा काकलिया किस्या? हाथां में कड़ी कड़ोला, रावतियां जिस्या।
बाई रा मांमलिया किस्या? हाथां में कसी कुवाड़ा, ओडड़िया जिस्या।

४. दुर कुतिया दुर जाई कुत्ता, बाणियै री हाट नै पाड़ी कुत्ता,
बाणियो बूढ़ो डोकरो, बाई रै लावै खोपरो, खोपरियै में कांकरिया,
बाई रा काका ठाकरिया, ठाकरिया ठकराई करै, हाटां बैठ बड़ाई करै,
कुतियो सोवै कांटां में, बाई सोवै हाटां में, कुतियो सोवै आकां में,
बाई सोवै काका में, कुतियो सोवै आंमा में, बाई सोवै मांमा में।

राजस्थानी लोक गीतों में कन्या जन्म के अवसर को अशुभ नहीं, निराशाजन्य जरूर मानते हैं। माता का वही खान-पान, मगर पिता को अर्थ संग्रह के लिये अभी से ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है और फिर उसी कन्या को भारी लाड़-प्यार से पाल कर सम्बन्धी को सौंपते हुए बड़ा विनम्र बनना पड़ता है। तभी तो किसी ने कहा है—बेटो जाई रे जगन्नाथ, जारां हेटै आया हाथ। परिणामत: राजस्थानी गीत जगत में जच्चा को पुत्री न जन्मने का आदेश रहता है। प्रत्येक परिवार पुत्र-जन्म के लिए लालायित होता है। देखिये गर्भिणी की नौ

मास की अवस्था, दोहद, मनरळी तथा हूँस पुरवाते हुए पति देवता पत्नी को पुत्री न जन्मने के लिए कैसी धमकी देते हैं, सो नीचे के गीत में बड़ी विशेषता सहित वर्णित है–

लुहार रो घण लाई कड़ालो
खुरपो कंदोई रो लाई ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

सळ सळ करतो घेवर सीजै
म्हारो जीवड़ो तरसै ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।
ले घेवरिया जीमण बैठी
बाहर सू राजन आया ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

गोडै हेटै घेवर लुकाया
गोरी धण गोडी सांमी ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

गोडै नीचै घेवर राजन
सासू नै ना कहज्यो ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

जे थै गोरी पूत जलमस्यो
घेवर और खुवाऊं ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में।

जे थै गोरी धीव जलमस्यो
घेवर चोड़ै करस्यू ओ राज
म्हारो मन रळियो घेवर में

गर्भिणी स्त्री को विभिन्न स्वाद की चीजें खाने की इच्छा रहती है और कुछ चीजों को वह कतई नहीं पा सकती है। इस गीत में नारी को घेवर खाने की इच्छा है और बड़ी मिन्नतों व प्रयत्न के साथ घेवर बनाती है। लेकिन खाने की तैयारी करते ही उसके पति सामने आ जाते हैं। नारी सहज ही घेवर को छिपाने का उपक्रम करती है। किंतु पति से यह क्रिया छिपती नहीं। तब वह कहने लगती है कि मैंने घेवर तो बनाया है लेकिन मेरी सास को यह बात मत कहना। लज्जा-वश ही वह घेवर को छिपाने का प्रयत्न करती है। इस पर पति ने हंसते हुए कहा कि अगर उसके पुत्र हुआ तो वह किसी को घेवर की बात नहीं कहेगा। लेकिन यदि पुत्री का जन्म हो गया तो वह निश्चय ही सास के सामने घेवर की बात प्रकट कर देगा। इस गीत में स्त्री सुलभ सहज स्वभाव की जन्म विषयक मान्यता

पर प्रकाश पड़ता है ।

(जी ओ) धण मुढ़लै पिव पिलंगै
तौ दोय जणा अे मतौ उपाइयौ ।
(जी ओ) पिया जे म्हारै जलमेगी धीव
तौ किसड़ा लाड लडावस्यौ जी ।
(जी ओ) गोरी जे थारै जलमेगी धीव
तौ खाट पिछोकड़ै घलावस्यां जी ।
(जी ओ) लाडू खारै लूण का जी
तौ पड़बौ दचां काळी कांमळी जी ।
(जी ओ) मुख सैं कदेई नीं बोलस्यां
तौ म्हे सिधावांगा चाकरी जी ।

गर्भिणी को राजस्थानी में दो जीवों वाली कहते हैं । उसकी इच्छा को मन रळी, ऊख करना और हूंस पुरवाना कहते हैं । हिन्दी में इसको दोहद, उकाई तथा हरियाणा में इसको ओजणा कहते हैं । राजस्थानी में हूंस [गर्भिणी की इच्छा] के अनेक गीत हैं, जिनमें गर्भिणी अपने सास ससुरादि से भांति भांति की खट्टी मीठी वस्तुएं मांगती है । पर उसकी बात को सब टाल देते हैं । केवल पति ही उसकी इच्छाओं को तृप्त करते हैं । इस तरह के गीतों में घेवर, केर, मतीरा, फलियें एवं बोर की इच्छा पूर्ति के गीत उद्धृत हैं :

घेवर व अन्य हूंस का क्रमिक गीत

पेलौ मास ज जच्चा राणी नै लागियौ
म्हारौ मन पड़छायां जाय
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारौ सुसरौजी पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

दूजौ मास ज जच्चा राणी नै लागियौ
खाटियै मन रळियौ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारी पाड़ोसण पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

अगुओ मास ज जच्चा राणी नै लागियौ
म्हारौ नीबूड़ां मन रळियौ राज

म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारौ देवरियौ पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

चोथौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ खिचड़ली मन रळियौ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारी भाभीसा पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

पांचवौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ खोपरियां मन रळियौ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारौ नणदोई पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

छठौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ घेवरियां मन रळियौ ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारौ माऊजी पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

सातवौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ साथड़ली मन रळियौ ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारी माऊजी पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।

आठवौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ घेनड़ियै मन रळियौ ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारी रामइयौ पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में ।
नवौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ सीरैयै मन रळियौ ओ राज

म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारी सासूजी पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।

दसवौ मास ज जच्चा रांणी नै लागियौ
म्हारौ पीळीयै मन रळियौ ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।
आ तौ हूंस भली छै घर री नार
थारौ वीरौजी पुरावै ओ राज
म्हारौ मन हरख्यौ घेवर में।

केर की हूंस का गीत

लाग्यौ धण नै पेलौ जी मास, पड़ छाया सुहावै
ओ म्हारै ससुराजी रै हाथ री जी।
आ तौ हूंस भली छै घर नार, थारौ ससुरौजी पुरावै
ओ वडभागण जच्चा थारी मनरळी।
भावै धण नै फीणा रोटी दाळ, केरिया तो भावै
ओ जच्चा रांणी नै छापर वाळै ताल रा।

मतीरे की हूंस का गीत

सुसराजी आगै वीनऊं
म्हानै भावै ओ सुसराजी हरियौ रे मतीरौ
लाल मतीरौ गुलाब गिरी रौ
भावै ओ म्हांनै सुसराजी हरियौ रे मतीरौ
सळ सळ करतौ सीरौ थे खावौ
म्हारी कुळ बहू कांई खास्यौ ओ सरद मतीरौ।

जेठजी आगै अरज बहू री
म्हांनै भावै ओ जेठसा हरियौ रे मतीरौ
लाल मतीरौ गुलाब गिरी रौ
भावै ओ म्हांनै जेठसा हरियौ रे मतीरौ
कच कच करतौ घेवर थे खावौ
कुळ बहू म्हारी कांई खास्यौ ओ सरद मतीरौ

मारूजी रै आगै अरज गोरी री
कोई भावै ओ जोड़ी रा ढोला हरियौ रे मतीरौ
चढ़िया मारूजी ढळती ओ रात
सूरज ऊगायौ अगूणा खेतड़ां म्हारा राज
लायौ जोड़ी रौ ढोलौ बोरा भराय

भावै जितरा खावो म्हारी गोरी धण हरिया मतीरा

थें जुग जीवो म्हारा वसदेवजी रा सींव
थें म्हारी रळी रे पुराई जीं म्हारा राज
थें जुग जीवो बड़ सजना री जाई
थें तो म्हारो वंस बधायो जी म्हारा राज

गर्भवती को मतीरा खाने की इच्छा हो गई। उसने अपने ससुर, जेठ, देवर सबसे मतीरा मंगाने की विनती की। मगर सर्द मतीरे प्रतिकूल जान कर सबने सीरा, घेवर आदि खाने के लिए कहा। अन्त में उसने अपने पति से कहा, पति आधी रात को ही चढ़े और मतीरों का बोरा भर लाये।

फलियों की हूंस का गीत

ऊंचे धोरै चंत्रळा बाया, उग्या गोळ-मथोळ
हरी हरी फळियां भावै ओ राज
हरी हरी फळियां घी में तळियां
फळियां बडी सुवाद ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

रसोई बैठया माऊजी म्हारा
गोरी धण पतळा कांस्यूं पड़िया ओ राज
म्हे नीं जाणां बेटा म्हारा
जाय थारी भोजायां नै बूझो ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

मैलां में बैठ्या भोजायां म्हारा
गोरी धण पतळा कांस्यूं पड़िया ओ राज
म्हे नीं जांणां देवरिया म्हारा
जाय थारी दासी बांदी नै बूझो ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

सेज बिछावता दासीजी म्हारा
गोरी धण कांस्यूं कुमळाया ओ राज
अेक अेक ढोलियै दो दो सूता
अगूंवो जे रतन उपायो ओ राज
गोरी नै फळियां भावै।

बोर की हूंस का गीत

लाल पिलंगडो पिछोकड़ै
सूती, जे कोई बूझै वात
भंवर म्हांनै बोरिया भावै।

बारै सूं म्हारा सुसराजी आया
आज बहवड़ क्यूं सूत्या ओ राज
भंवर म्हांनै बोरिया भावै ।

खारक खोपरा खावौ म्हारी बहवड़
बोरां री रुत काहू ओ राज
भंवर म्हांनै बोरिया भावै ।

जन्म से पूर्व के इन गीतों के पश्चात् जन्म का सुअवसर आता है । पुत्र के जन्म पर थाली एवं पुत्री के जन्म पर सूप बजाया जाता है । इसी समय के कुछ गीत इस प्रकार हैं :

कंवळी तौ ऊभा राजीड़ा री कुळ बहू , अब कसमस दूखै छै पेट
पींडघां ओ धण री धगधगै जी
सासूजी म्हारा आळा-भोळा , नणदल बाई राजकुंवार
म्हारी चिन्ता कुण करसी म्हारा ओ राज
देराणी जेठांणी मांड्यौ रूसणौ म्हारी माय बसै परदेस
म्हारी चिन्ता वे करसी म्हारा ओ राज
ओरै जी मांयली ओरड़ी , ज्यां में सूत्या वसुदेवजी रा सींव
म्हारी चिन्ता बे करसी ओ राज

अंगूठौ मोड़ जगाणिया , जागौ बाई सोदरा रा वीर
खाली तौ करदयौ ओवरौ जी म्हारा राज
लटपट सूं पेच संवारिया , मुळकत लियौ रूमाल
ओल्यौ गोरी धण ओबरौ
ओल्यौ पिलंग नीवार रौ म्हारा राज
जणज्यौ गोरी लाडण पूत , खिलतौ फूल गुलाब सो
वधाई मारूजी नै वेगी दिराज्यौ जी राज
मरूं ओक जीऊं म्हारी माय , मारूजी मोसौ बोलियौ
धरती माता उदै करियौ , हुयौ हुयौ चांद उजास
छेनांड्यौ जलमियौ जी म्हारा राज
भली करी भगवांन , मारूजी रा चिंत्या हो गया जी म्हारा राज

प्रसव वेदना की सूचना देने में संकोचशील पत्नी की व्याकुलता बढ़ जाती है । वह लज्जा के वश संकेतों से पति को वस्तु स्थिति का निर्देश देना चाहती है । ऐसी ही मार्मिक अवस्था का गीत है :

नान्ही सी नार नारेळी सो पेट
पीड़ चलै उतावळी जी
पीड़ चलै ओ धण लुळ लुळ जाय
करै भंवर सूं वीणती जी

अेकर पीवजी बागड़लै पधार
बागां में घुड़ला फेरज्यो जी म्हारा राज
आंगण अे गोरी बाग लगाय
महलां घुड़ला फेरस्यां जी म्हारा राज

अेकर मारूजी बावड़यां पधार
बावड़यां में जाय न्हावज्यो जी म्हारा राज
आंगण अे गोरी हौद कराय
हौदां में बैठर न्हावस्यां जी म्हारा राज

नीं समझ्या ओ सासू सुगणी रा पूत
नीं समझ्या भोळी बाईसा रा वीर जी म्हारा राज
अेकर ओ ढोला नीचै पधार
जाय थारा माऊजी नै मेलज्यो जी म्हारा राज

मग छूटया जी ढोला भाज्या जाय
माऊजी नै जाय मेल्या जी म्हारा राज

इस सम्बन्ध में उदयपुर की तरफ गाया जाने वाला गीत भी नीचे देखिये—

ऊंची ऊंची मेड़ियां लाल किंवाड़
झबर झबर दिवलौ जगै जी राज
अेक बर जी ढोला बागां में आय
बागां में कळी ओ मरोड़ज्यो जी राज
म्हे बाग थे कळी अनार
मैलां में कळी ओ मरोड़स्यां जी राज
नीं समझ्या सासू सुगणी रा पूत
नीं समझ्या भोळी बाईजी रा वीर

दाई को निमंत्रित करने का गीत :

सार रमन्ताजी पीव पासा, साहब दूर करो जी ।
सदा सुरंगा नार आज बिरंगा क्यूं खड़ा जी
लाज सरम री बात, मारूजी आगै कांई कहूं जी

कसमस दुखै छै पेट ; पींडयां धण री घगधगै जी
जे म्हारा देवर जेठ, दाई माई नै लावौ नीं बुलाय जी

सूना छै देवर जेठ, आप मारूजी जीण करै जी
बूझै सहरिया रो लोक, दाई माई रो घर किस्यो जी

सूरज सांम्ही पोळ, सूवटा दाई रै केळ करै जी
बैठया दाई तखत बिछाय, बोलै दाई गरब भरया जी

कांईं थारै कस्टी छै बहन, कांईं उळझी छै भावजा जी
जै थारै जलमै जी धीव, दाई माई नै कांईं देवौ जी

रोक रुप्पयो हाथ , कगुमा कांचळी जी

जं थारै जलमैं पूत दाई माई नैं कांई देवौ जी
पांच रुप्पया रोक पीळो दाई नैं गोठरो जी

थें छो जच्चा रांणी री मांय चालो नीं उतावळा जी
झिर-मिर बरसै मेह , गळियां में है कीचड़ो जी

दाई माई नै घुड़लै चढ़ाय , आप उपाळा होय चाल्या जी
आया दाई डोढ़यां रै मांय , सुगन दाई नै भला हुया जी
आया दाई आंगणियै रै मांय घेनड़ गीगो जलमियो जी

भलो रै करी भगवांन , दाई म्हारै कांई करियो जी
आंगण मूखै छै सूठ दाई माई चोरटी जी

दाई माई रो बडो पेट , जच्चा रांणी लाज मरै जी
दाई माई री दुखै आंख , जच्चा रांणी सूग मरै जी

बाड़ै में बियाई गाय , पिछोकड़ै कूकरी जी
दौड़ सकै तो दाई दौड़ म्हारी कुतड़ी खावणी जी
हुवै म्हारा देवर जेठ , दाई माई नैं दो धक्का जी

बुलावो घेनड़ियै रो बाप , जका सूं म्हैं कौल करया जी
पांच रुप्पया हाथ पीळो दाई नै गोठरो जी
सुगणो घेनड़ियै रो बाप नुगरी जच्चा हैं घणी जी
थे दाई घरां पधार , बरसोदी बुलावस्यां जी ।

पींपळा मूळ का गीत

डूंगरियै रै डावै पास अलबेलो हाळी हळ खड़ै जी
और तो बावै तिल बाजरो , मारूजी बावै पींपळो जी

ऊग्यो ऊग्यो गोळ-मथोळ , पींपळा मोळ उग्यो गोखरू जी
लाया-लाया पोट घुराय , पड़छांया लाय सुखाइयो जी

कूटयो कूटयो ऊखळती री कोर , झीणै सैं साळू सूं छांणियो जी
भेयो भेयो हिरण्यां रै दूध , रतन कटोरै घोळियो जी
रतन कचोळो सुसरैजी रै हाथ , सुसरोजी ऊभा बीनवै जी

बहवड़ ओ म्हारै बडा साजनां री धीव , पींपळा मोळ पीओ म्हारी बहूजी
दाझै दाझै म्हारी लाल कदम सी जीभ , पींपळा मोळ लागै म्हांनै चरचरो जी
घेनड़ियै नै आवै ठंडो बासी दूध , थांनै तो आवै घणी नींदड़ी जी

इस तरह से रतन कचोला सासू , जेठ , जेठानी के हाथ से दिया जाता है और जबाब सवाल किये जाते है । फिर रतन कचोला देकर पति के हाथ से पींपळा मूळ पिलाया जाता है ।

रतन कचोळो म्हारै मारूजी रै हाथ , मारूजी ऊभा बीनवै जी

गोरी अे म्हारी बडा साजनां री धीव , पींपळामोळ पीग्रो म्हारी गोरड़ी जी
घेनड़ियें नैं ग्रावें ठंडो बासी दूध , थानें भल ग्रावें नींदड़ी जी .
दाभें दाभें लाल कदम सी जीभ , पींपळामोळ लागें म्हांनें चरचरो जी
दीनी दीनी डावोड़ी ग्रांख गटकाय पीयो गोरी पींपळो जी ।

पींपळामूळ पीने के लिए बहुत मनुहारें की गईं, तब जाकर जच्चा ने इसको पिया । इन गीतों के द्वारा पुत्रवती मां का मान - सम्मान किया जाता है । नामकरण संस्कार पर गाये जाने वाले गीत—

खाटड़लें सूं ऊठ सखी
पाटड़लें पग मेल सखी
सूरज रो मुख देख सखी
म्हारी सरल सखी

राजन रो सुख देख सखी
दाई माई बेग बुलाय पिया
गीगें नैं झबल झुलाय
म्हारी सरब सखी

दादी नैं बेग बुलाय
सोवन थाळ बजावसी
म्हारी सरब सखी

भुवाजी नैं बेग बुलाय
साळां रैं सखिया पुराय
म्हारी सरब सखी
राजन रो सुख देख सखी

इस तरह से गीत को भुवाजी , सासूजी , बडियाजी , भौजाईजी आदि करके बढ़ावा दिया जाता है ।

बालक के जन्म हो जाने के बाद जच्चा पुनः अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जाती है । उसे विनोद और मनोरंजन का जीवन प्राप्त हो जाता है । मान-मनुहार और नखरों का यह गीत इसी नवीन स्थिति का द्योतक है :

पड़वलियो [घास से छाया हुआ छोटा मकान]

म्हानें ओ जोड़ी रा ढोला पड़वलियो चिणाय , पड़वलियें पोढ़ण रो धण नैं चायबो जी म्हारा राज !
पड़वलियें अे म्हारी मिरगानैणी , पोवरियें में पोढ़ , म्हां घर पोढ़ो नीं महलर माळियां जी म्हारा राज !
म्हांनें ग्रो जोड़ी रा ढोला खीचड़ली रंधाय , खीचड़ली जीमण रो जच्चा-राणी नैं चायबो जी म्हारा राज !

खीचड़ली अ गोरी धण पीवरियै में जीम, म्हां घर जीमो नीं लाडू
दोवटा जी म्हारा राज !

सूती ओ जोड़ी रा ढोला सुखभर नींद, सूती नै सपनो म्हांनै
आइयो जी म्हारा राज !
लाध्यो ओ सपना में म्हांनै नौसैरो हार, सोळा मासां री लाधी म्हांनै
सांकळी जी म्हारा राज !
हूसी अ मिरगानैणी थारै लाडण पूत, अेकज होसी सुगणी
धोवड़ी जी म्हारा राज !

थै हो गोरी म्हारी हुकम हुलदार, हुकम करो तो रसोइयां
आ वड़ूं जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार, रसोइयां में स सूजी म्हारा
सो रह्या जी, म्हारा राज !

थै हो मिरगानैणी हुकम हुलदार, हुकम करो तो ओरै म्हूं
आ वड़ूं जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार, ओरै में जेठजी
सो रह्या जी म्हारा राज !

थै ओ मिरगानैणी हुकम हुलदार, हुकम हुवै तो महलां
आ वड़ूं जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला क्यांनै ही पधार, मैलां में म्हारो धेनड़-मीगो
सो रह्यो जी, म्हारा राज !

थै ओ जोड़ी रा ढोला खापरिया चोर, चोरीला धेनड़ रा पीळा
पोतड़ा जी म्हारा राज !
थै ओ मिरगानैणी म्हारी नखराळी नार, इतरा तो नखरा
थै करया जी, म्हारा राज !
थै ओ जोड़ी रा ढोला दिल रा दरियाव, इतरा तो नखरा म्हारा
थै सह्या जी म्हारा राज !

सचमुच शिशु ही दाम्पत्य प्रेम की ग्रंथि है। एक पुत्ररत्न के जन्मने पर संसार स्वर्गोपम, समृद्धि और सम्मान का स्थल बन जाता है।

शिशु जन्म के साथ ही माता-पिता को उसके भावी जीवन-पथ की चिन्ता प्रारंभ हो जाती है। बालक के भाग्य में क्या बदा है? वह सुखी रहेगा क्या? उसे कहीं दुःख, संताप और कष्ट की यात्रा तो पूर्ण नहीं करनी है। नवजात शिशु के भाग्य-लेखन के लिए ही बेमाता का सहारा ढूंढ़ लिया गया है। राजस्थान में यह मान्यता है कि शिशु जन्म के छठे दिन बेमाता रात्रि को घर आती है और शिशु के भाग्य को लिख जाया करती है। बेमाता के लिखे 'आंक' कभी मिटाये नहीं जा सकते। बेमाता के विषय में एक ऐसी मान्यता भी है कि

वह शिशु को कभी हंसाती है और कभी रुलाती है। यदि हम नवजात शिशु की मुखाकृति को कुछ समय तक ध्यान से देखें तो ज्ञात होता हैं कि वह कुछ क्षणों के लिए मुस्कराता है और ठीक बाद में रोने- सा भाव उसके मुंह पर आ जाता है। मांस पेशियों की यह क्रिया ही बेमाता के हंसने - रुलाने के विश्वास में बदल गई है। मां का कहना है कि जब बेमाता बालक को कहती है — मां मर गई तो वह रोता है। दूसरे ही क्षण जब बेमाता कहती है कि वह जिन्दा है तो वह मुस्करा देता है। इस प्रकार शिशु के जन्म और बेमाता का चिर संबंध जुड़ गया है। अत: इस अवसर पर बेमाता के अनेक गीत भी गाये जाते हैं। दो गीतों के उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं :

सब गांवड़ला ढूंढ़्यां, गांव काळू सुवायौ
सब बासड़ला ढूंढ़्यां, बास सांडां रौ सुवायौ
सब कूखड़ली ढूंढ़ी
कुखड़ली माता देवकी री सुवाई

बेमाता के गीत कृतज्ञता ज्ञापन स्वरूप गाये जाते हैं। बृज में बेमाता को बेह कहते हैं। बेह विधि का द्योतक है। पुत्र जन्म बेमाता की ही कृपा का फल है। ऐसी जनसाधारण की धारणा है। अन्य उदाहरण है :

कुण सुणेगौ वीणती, कुण सुणेगौ बीणती,
कोई बेमाता आगे पुकार, कुखड़ली सावळ हुसी।
राम सुणी वीणती, राम सुणी म्हारी बीणती,
मां म्हारी बेमाता सुणी अे पुकार, कुखड़ली सावळ हुई।

अर्थ – कौन सुनेगा मेरी विनती ? ए मेरी मां किसके आगे पुकार करूं ? मेरी कोख बैरण हो रही है। तेरी विनती राम सुनेगा। बेमाता के आगे पुकार। तेरी कोख सौभाग्यशालिनी होगी। धन्य है बेमाता को जिसने अबला की विनती सुनी ! धन्य है विधाता को जिसने उसकी कोख को पुत्रवती बनाया।

बालक के जन्म के बाद जननी को राजस्थान में सीरा, गूंद के लड्डू, अजवायन, सूंठ आदि से बने पौष्टिक पकवान खिलाये जाते हैं। एक दो मास तक उसके खानपान का पूरा ध्यान रखा जाता है। पुत्र जन्म तो खुशी का बड़ा कारण होता है। महीनों तक पारिवारिक लोग गुड़ बंटवाते हैं और गीत गवाते हैं। जन्मोत्सव के ये गीत धेनड़िये या हालरे कहलाते हैं। हिन्दी में इसको सोहर और बृज में सोभर कहते हैं। इनमें आनन्द बधावे, जच्चा की इच्छा, पुत्र कामना, पीला और नाना भांति के नेगों के गीत होते हैं। पुत्र कामना के गीतों में भैरूंजी के एक दो गीत यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

भैरूंजी काठै तो गवां री चाढूं गूघरी

मांय रळाऊं बूरा खांड
कासी रा वासी चढ़ती असवारी म्हारी हेलो सांभळो

लिचपिच तो रांधू लापसी
मांय सुरै गायां रो घीव
कासी रा बासी चढ़ती असवारी म्हारी हेलो सांभळो

बारा मण रा रांधूं बाकळा
कोई तरै घाणां रो तातो तेल
कासी रा बासी चढ़ती असवारी म्हारी हेलो सांभळो

तेल सिन्दूर भर बाटको
कोई मधरी मधरी ढाळूं थारै धार
कासी रा बासी चढ़ती असवारी म्हारी हेलो सांभळो

तोलाणै रै मारग चिणाऊं
थारो देवरो, देवूं थारी बरसोदी जात
भैरूंजी अेक तो अरज म्हारी म्हारी हेलो सांभळो

सासू तो केवै म्हारी बहवड़ बांझड़ी
परण्योड़ो ल्यावै ल्होड़ी सोक
अेकलिये रा सीरी चढ़ती असवारी हेलो सांभळो

सासू नै करद्यो गूंगी बावळी
परण्योड़ै री मरज्यो नूंवी नार
अेकलिये रा सीरी चढ़ती असवारी हेलो सांभळो

भैरूंजी कदैयन भीजी म्हारी दूधां कांचळी
काळूड़ा कदैयन भीज्यो कांचो लाळ सूं
कासी रा बासी अमर बंधाद्यो नीं जुग में पालणो

देरांणी जेठांणी जुग में बोलै बोलणा
जकांरै होडै पूतज पालणै
तोलाणै रा भैरूं अेक तो पुत्र बिन म्हैं कुळ में बांझड़ी

पुत्र जन्म के बिना स्त्री अपने जीवन को असफल मानती है। वह इसी चिन्ता में सदैव झूली रहती है। जप-तप, व्रत उपवास, जादू-टोने एवं देवी-देवताओं की पूजा उपासना में लगी रहती है। पुत्र होने पर स्त्रियां जच्चा को तरह तरह के गीत सुनाकर प्रमुदित किया करती हैं। कामना गीतों में भैरूंजी के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं—

ऊंची नीची ओ भैरूं सरवरिया री पाळ
पांणीड़ो भरै नवलो पिणिहार
हार दै हार दै हरखिला भैरूं ।

हारलड़ै रै चून्यां चौसठ चार
अस्सी रै कळां री गोरी री हार
हार दै हार दै चन्नण चौवटा रा राजा

हारला रै कारणै म्हारा सुसराजी रूसाया
सुसरोजी रूसाया सासू देवै म्हांनै गाळ
हार दै हार दै भींभळिया भैरूं

हारला रै कारणै म्हारा जेठसा रूसाया
जेठांणी जुदा होवण जाय
हार दै हार दै हरखिला भैरूं

पुत्रोत्पत्ति के समय राजस्थानी गीतों में गाडूलौ, गूघरी आदि गीत भी प्रसिद्ध हैं। वे जन्म पर गाये जाते हैं और गृह स्वामी दिल खोलकर खर्च करता है –

रण चढ़ण कंकण बंधण, पुत्र बधाई चाव
औ तीनू दिन त्याग रा, कांईं रंक कांईं राव

नाई, ब्राह्मण, दाई, सास ननद और देवरानी-जेठानी, ढाढ़ी-ढोली इन सबके नेग होते हैं। इन सबने जच्चा-राणी की सेवा चाकरी की थी। अतएव अब नेग लेने के सब हकदार हैं। इनमें ननद नेग के गीत बड़े सुन्दर होते हैं। बधाई के बधावों में चंदर हार, पोमचौ, चुनड़ी, पूंचिया, भूरी झोट, धोळी गाय, मोहर, रुपया, झोळी भर मोती आदि वस्तुएं मांगी जाती हैं। पुत्र जन्म के छठे दिन, छठी का संस्कार सम्पन्न किया जाता हैं। इस दिन बेमाता बच्चे का सौभाग्य लिखने को घर आती है – ऐसा विश्वास है। घर की सफाई, रातीजगे और नाम करण संस्कार नवमे दिन किये जाते हैं। पंडित यज्ञ कराता है, भाट या सेवग कुटम्बियों के लिए बुलावा देता है। मिष्ठान्न पकावा जाता है। भोजन के लिए दसौटण या, सिर धोवण नाम से सबको जिमाया जाता है। बच्चे के लिए भूवा टोपी, रुपये-खोपरे आदि भेंट में आते हैं। नव शिशु के लिए खाती पालना चमार तागड़ी, कुम्हार कलस आदि लाते हैं। भाट वंशावली बनाता है। ढाढ़ी यश गाता है और गीतेरणें गीतों से सम्मान प्रदान करती हुई सहानुभूति प्रकट करती हैं। जच्चा के पीहर से छुछक आता है। जिसमें सबकी भेंट होती है और सभी के लिए गीत गाये जाते हैं। इन सब में जलवा पूजन के समय का एक पीळा नाम का गीत बड़ा प्रसिद्ध एवं मधुर हैं।

दिल्ली महर सूं सायबा पोत मंगाय दो, हाथ पचीसां गज तीसां
याढ़ा मारूजी पीळो रंगादो।
गढ़ नै बीकाणै रो सायबा, रंगारो बुलादो, बूंदी रो बंधारो बुलादो
अपणै आंगणियै सायबा कुंड खुदादो, आप नानड़िया बैठ रंगादो

अल्ला तो पल्ला सायबा मोर पपीहा, बीच में चांदी रो चांद कुरादो
आपरी जोड़ी रा दोय छैला बुलायदो, दे दे फटकारा खूब सूखा दो
रंगियो रंगायो सायबा हुवै रे तैयारी, जच्चा नैं पड़दै में पकड़ा दो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा पाटै जी बैठा, पीळै नै जोसीजी सरायो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा रसोयां पधारया, पीळे नैं सासूजी सरायो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा पळिंडै पधारया, देरांणी जेठांणी मुख मोड़्यो
थे म्हारा भाभीसा क्यूं मुख मोड़ो, पीळो म्हारै पीवर सूं आयो
पीळो तो ओढ़ म्हारी जच्चा महलां पधारया, लारली पाड़ौसण निजर लगाई
आंख्यां नीं खोलै जच्चा मुखड़ै नीं बोलै, जच्चा रो राजन विलखो डोलै
दिलड़ी सहर रो सायबा वेद बुलादो, जच्चा री नाड़ दिखादो
ताव नहीं छै मथुवा नहीं छै, लारली पाड़ोसण निजर लगाई
लारली पाड़ौसण सायबा उरै रे बुलाय दो, जच्चा नै थुथकारो घलादो
आंख्यां भल खोली जच्चा मुखड़ै भल बोलो, गोरी रो राजन हरख्यो बोले
तूं रे वेदां रा बेटा बड़ो रे ठगोरो, सूधै राजन नै ठग लीनो
थे म्हारी जच्चा रांणी चिलता गारी, भोळै राजन नै चिलत दिखाया
म्हे तो मारूजी थारो मनड़ो लेवा छां, प्यारा हो या दुप्यारा
थे म्हारी जच्चा रांणी घणा पियारा, धेनड़ सूं इधक पियारा
जच्चा रांणी पीळो भल ओढ़ो ओ

[प्रत्येक पंक्ति के बाद 'गाढ़ा मारूजी पीळो रंगादो' का पुनरावर्तन होता है] पीळो नामक गीत बहुत प्रसिद्ध है। पीळै चार प्रकार से गाये जाते हैं। पीळै की भांति एक बीरा [वैवाहिक गीत] भी बड़ा कारुणिक होता है। ब्राह्मण जाति में लड़के के विवाह पर जनेऊ के गीत भी गाये जाते हैं।

संस्कार गीत २. विवाह के गीत – संस्कारों में जन्म के बाद विवाह ही महत्व-पूर्ण संस्कार क्रम है। यह केवल प्राकृतिक नियम ही नहीं, किन्तु मनुष्य समाज द्वारा एक स्वीकृत विधान भी है। इसमें वैदिक आचारों से कहीं अधिक लौकिक आचारों का प्रभाव रहता है। विवाह संस्कार जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग है। नगर निवासियों से लेकर जंगली जातियों तक में इसकी मान्यता व्यापक है। यह प्रथा विश्व भर में बड़ें आनन्दोत्साह के साथ मनाई जाती है। सभी देशों में इस संस्कार के लिए सुन्दर गीत मिलते हैं। महिलाएं मौके मौके के गीतों से विवाह को रोचक मांगलिक एवं कारुणिक बना देती हैं। विवाह का बीज वपन सगाई से होता है। लड़की वाले अपने ब्राह्मण या नाई के साथ मुद्दा भेजते है। इसमें कुछ सिक्के, गहने, कपड़े मिठाई और फल रहते हैं। लड़के को पाट पर बैठाकर यह भेंट दी जाती है। गुड़ बांटा जाता है। मीठे चावल पकाये जाते हैं और औरतें बनड़े नामक गीत गाती हैं। विवाह के मांगलिक कार्यों का आरंभ चीकणी कोथळी से होता है। चीकणी कोथळो [द्रव्य, भेंट] के साथ लग्नपत्रिका सहित

कन्या पक्ष की ओर से विवाह की लग्न तिथि लिखी होती है। इसी दिन से बहन बेटियां बुलाई जाती हैं तथा वर और कन्या की माताएं अपने अपने भाइयों को न्यौंतने जाती हैं। पांच - सात दिन पहिले बान या विरद बैठती है। तेल चढ़ाना या हाथ पीले करने का अनुष्ठान पूरा होता है। एक दो दिन पहिले रातीजगे के गान होते हैं। इन सर्व अनुष्ठानों को स्त्रियां गीतों द्वारा पूर्ण करती हैं। उबटण, पीठी, मेंहदी, तेल, झोळ, कांकण डोरा, विनायक, मूंदणौ, बेह, वीराटीकना, बनड़े, हथणी आदि अवसरों पर अनेक गीत गाये जाते हैं। गीत ही से भात या मायरा की जीमणवार होती है। फिर लड़के को वींद [दूल्हा] बनाया जाता है। फिर वर निकासी होती है। इस समय टोरड़ी, घोड़ी आदि के बड़े मनोहर गीत गाये जाते हैं। इससे प्रथम वह [वर] अपनी मां का स्तन पान करता है। यहां एक दूसरे की न्यौछावरें होती हैं। वोंद के विदा होते समय उसकी ब्रहिन वर वाहन की मोरी पकड़ती है। इस तरह से राजस्थानी दूल्हा की विवाह के लिए विदाई होती है।

आगे जान [बरात] कन्या के ग्राम में पहुंचती है। तब कन्या पक्ष की ओर से सामने पड़जान आती है। भेंट के साथ कलेवा जलपान करवाकर जान को निश्चित स्थान पर ठहराते हैं। एक बराती, मांढ़े [बेटी वाले के घर] में वर की वधाई लेकर जाता है, वहां उसकी स्त्रियों द्वारा गीतों के साथ पिटाई भी होती है। भोजनोपरान्त सायंकाल के समय तोरण, सहेले होते हैं। राजस्थानी में इसे ढुकाव भी कहते हैं। कहीं कहीं बरातियों का भी इस समय स्वागत होता है। तोरण के समय दही देना, आरती करना, माघरड़ीं घमकाना आदि नेग गीतों के साथ सासू के द्वारा संपन्न किये जाते हैं, तब कन्या पक्ष की स्त्रियां बड़े स्नेह से वर को घर में ले जाती हैं। इस समय केवल एक नाई ही वर के साथ रहता है। इसके बाद वह मुख्य संस्कार होता है जिसे चंवरी या फेरा कहते हैं। यह संस्कार वेद मंत्रों की साक्षी के साथ पंडित लोग संपूर्ण कराते हैं। मगर गायिकाएं भी साथ साथ अपने मधुर गीतों द्वारा रस बरसाती चलती हैं। फेरे उठने पर वर के पिता को बरात के डेरे पर वधाई भेजी जाती है। तब दूल्हा जाकर अपनी वरात में सम्मिलित होता है। इसके बाद मींडी-हाथ, परिचय, मुंह देखाळी आदि के गीत - नेग होते हैं। दूसरे दो दिनों में भात या जीमणवारों के गाली गीत, दहेज की वस्तुओं का सजाना आदि के गीत और बरात को विदा करने के व्यवहारी गीत गाये जाते हैं। इसके साथ कन्या की कारुणिक विदाई भी बड़े समवेत गीतों के साथ होती है। इसके [कन्या के] साथ एक छोटे भाई को भी भेजा जाता है। वह भी बहिन के ससुराल में गीत सुनता है। यदि कंवारा होता है तो उसको काली कुती का गींत भी गाया जाता है।

विवाहित होने पर उसको मधुर गालियां सुनाई जाती हैं। मात्र एक सुरीली गाली का नमूना नीचे पेश किया जा रहा है:

भाटै ऊपर भरी तळाई, हां क हां रे लाल।
सगैजी नै कूटै घर री लुगाई, हां क हां रे लाल।
रोवत कूकत म्हारै आया, हां क हां रे लाल
म्हारै कांनजी ले बुचकारया, हां क हां रे लाल।
आओ म्हांरा निमळा सगां, हां क हां रे लाल।
कण थांनै मारया, कण थांनै कूट्या, हां क हां रे लाल।
घर री तिरिया लार पड़ी है, हां क हां रे लाल।
मांगूं रोटी, तांणै चोटी, हां क हां रे लाल।
मांगूं पापड़, दै पड़ापड़, हां क हां रे लाल।
मांगूं चावळ, बोलै कावळ, हां क हां रे लाल।
मांगूं दाळ, काढ़ै गाळ, हां क हां रे लाल।
मांगूं सीरो, धामै खीरो, हां क हां रे लाल।
घी मांगूं घूतां सूं घालै, हां क हां रे लाल।
राबड़ी नै रात्यूं रोयो, हां क हां रे लाल।
छाछ खातर छींकै चढ़ग्यो, हां क हां रे लाल।

वर के घर वधू का गीतों से स्वागत होता हैं। उसका मुंह देखना, गोद में लेकर नाचना, पग पकड़ाई करवाना, कोथली में हाथ डलवाना, जुआ खिलवाना, देवी देवताओं के ले जाना, छापें लगवाना आदि रीतें गीतों के साथ ही चलती हैं। वर-वधू के वयस्क होने पर सुहाग रात की रस्म भी गीतों द्वारा अदा की जाती हैं। नहीं तो दो दिन ठहरकर वधू अपने पीहर चली आती है। वींद भी अपने ससुराल मांढ़े झांकने के लिए वापिस आता है। अतः दो दिन बाद दोनों [वर-वधू] वापिस वर के घर पहुंच जाते हैं। कई जगह इस समय मुकलावा या गौना भी कर देते हैं।

देवताओं के बनड़े गीत—ये विवाह से महीने भर पहले ही प्रारम्भ कर दिये जाते हैं। इनमें सर्व प्रथम विनायक [गणपति] के निमन्त्रण पूजा वाले गीत होते हैं। स्थानाभाव के कारण कुछ गीतों के अंश भर दिये जा रहे हैं:

गढ़ रणत भंवर सूं आयो विनायक
करो नीं अचिन्ती बिड़दड़ी
बिड़द विनायक दोनों जी आया
आय तो उतरिया हरियै बाग में
ढूंढ़त ढूंढ़त नगरी जी ढूंढ़ी
घर तो बताओ लाडलै रै बाप री

ऊंची सी मेड़ी लाल किवाड़ी
केल भवरको राजीड़ा रै बारणै

रणथम्भोर गढ़ से विनायक आये हैं। हे विनायक हमारे इस मंगल काम को चिन्तारहित करो। विनायक ने आकर बाग में डेरा दिया। नगर में दूल्हे का घर ढूंढ़ने के लिए चारों और घूम गये। ज्ञात किया कि लाल किवाड़ों वाला ऊंचा महल जहां दरवाजों के सामने हरे पेड़ हैं, वही दूल्हे के पिता का घर है। दूसरा विनायक गीत है :

गोरी बूझै सुणो ओ विनायकजी
इण नगरी रो राजा किण विध परणीजै
फळसाळै आवण ओ विनायक जी
चन्नण चौकी बैठण ओ विनायक जी
छाछड़ल्यां रा नावण ओ विनायक जी
दूधड़लै रा पीवण ओ विनायक जी
लापसड़ी रा जीमण ओ विनायक जी
सुपारयां रा साता ओ विनायक जी
रोळी केरा चिरचण ओ विनायक जी
नाळेरां रा लगन ओ विनायक जी
इण नगरी रो राजा इण विध परणीजै ।

विनायक के पश्चात घोड़ी संबंधी गीत बहुतायत से गाये जाते हैं। इन्हें वर के गीतों की श्रेणी में लिया जाता है। घोड़ी का एक उदाहरण प्रस्तुत है :

घोड़ी म्हारी चन्दर मुखी इन्दर लोक सूं आई ओ राज
हरी हरी दूब चरै ओ राज, दूधां सूं धाई ओ राज
जठै ठाकुरजी घोड़ी ठांण बंधाई ओ राज
चौकी पर बैठा ठाकुरजी नै देवता जवारचा ओ राज
देवता जवारचा ठाकुरजी नै रुक्मण परणास्यां ओ राज

बनड़े के लिए चंद्रमुखी घोड़ी इन्द्र लोक से आई है। वह हरी दूब चर रही है। दूध से छक रही है। इस घोड़ी को ठाकुरजी [श्री कृष्णजी] ने ठाण पर बंधवाई और आप चौकी पर बैठे है। उनको देवता पूज रहे हैं। देवता इसलिए पूज रहे हैं कि उनका रुक्मणीजी के साथ विवाह होने वाला है। इसी विषय पर दूसरा गीत है :

म्हे तो आज सैर में इचरज देख्यो
देख्या ओ ठाकुरजी पाट बिराज्या
माय जसोदा ओ बांटै बधाई
बहनज ओ सोदरा आरतो संजोवै

म्हूं तो लेसां ओ बीरा
अंसण घोड़ी बंसण घोड़ी
कड़्यां रो कटारो मळकंद वाळो
उड़ दांतू रो चुड़लो
घोड़ी बांधो ओ रूंख चनण रै, रूंख अगड़ रै
रूंख चढ़ै दो चंपा री कळियां
घोड़ी छूटी ओ बीरी हाल पड़ै
हलकार पड़ै ललकार पड़ै
कोई तेजण नै समझावो
समझावै ओ बाबा नंदजी रो कांन्ह
पून्यू रो चांद हीरां रौ हार
गढ़ गोकळगढ़ रो वासी

[इसके आगे लड़के लड़कियों और उनके माता-पिताओं के नाम लिये जाते हैं।]

अर्थ – आज सखियों ने शहर में एक आश्चर्यजनक बात देखी। श्री कृष्ण चौकी पर विराजमान थे। उनकी माता यशोदा बधाइयां बांट रही थी। बहिन सुभद्रा आरती के लिए दीपक सजा रही थी। बहिन ने कहा — भाई मैं तो अमीर सजी हुई घोड़ी, कमर बांधने की तलवार, कंठों का हार और तारों से जड़ी हुई चूड़ियां लूंगी। भाई ने कहा — घोड़ी, तलवार, हार और चूड़ियां वही दूंगा। तब बहिन ने आरती की और घोड़ी को अगड़ चनण तथा चंपा के पेड़ों से बांधने का हुक्म दिया गया। घोड़ी खुलकर चल दी। सब उसके तेज से डर गये। कोई पकड़ो। पकड़ेंगे बाबा नन्दजी के बेटे श्री कृष्ण, जो पूर्णिमा के चांद तथा हीरों के हार की तरह गोकुल ग्राम के गढ़ में वास करते हैं। घोड़ी विषयक तीसरा उदाहरण है:

घोड़ी चतर सुजांण
हे म्हारै गोविन्द रै मन भावै
अेक चालै मधरी चाल
सुवावै हे म्हारी तेजण खड़ी रे
सुवावै हे घोड़ी चतर सुजांण

यह चतुर सुजान घोड़ी गोविन्द के मन को अच्छी लगती है। तेज मय घोड़ी सुन्दर चाल से चलती है, तब बहुत सुहावनी लगती है। यह खड़ी भी सुन्दर लगती है। अन्य गीत है:

इन्दरियो घररायो अे घोड़ी
मधरी मधरी चाल

चौमासौ लग छायौ अे मगेजण
हळवां हळवां हाल
थारा बाबोजी मोलावै अे घोड़ी
धीमी धीमी चाल
माऊजी निरखण आय अे मगेजण
ठुमराई सूं हाल बछेरी ।

[ऐसे ही काका मामा के आगे नाम लेकर गीत वृद्धि की जाती है ।]

अर्थ– हे घोड़ी । इन्द्र के बादल गहर उठे है । तू धीरे धीरे चल । सावन लग गया हैं । तू धीमे धीमे चल । दूल्हे के पिता घोड़ी का मोल करवा रहे हैं, उसकी मां देखने आई है । घोड़ी तू धीमे धीमे चल । बछेरी तू धीमे धीमे चल ।

विवाह संबंधी गीतों में सर्वाधिक गीत बना एवं बनड़ी के नाम से प्रचलित हैं । विवाहोत्सव के मंडन के साथ ही वर एवं वधू के घरों में ये गीत गाये जाने लगते हैं । इन गीतों में वर-वधू के सौन्दर्य, सुख जीवन, आभूषण - अलंकार, वेशभूषा और पारिवारिक समृद्धि की कल्पनाएं प्रस्तुत की जाती हैं । इन गीतों के आंशिक उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं :

काची दाख हेठै बनड़ी पांन चाबै, फूल सूंघै, करै ओ बाबैजी सूं वीणती
बाबाजी, देस देता परदेस दीज्यौ, म्हारी जोड़ी रौ वर हेरज्यौ

कच्ची दाख की बेल के नीचे खड़ी बनड़ी पान खाती है और फूल सूंघ रही है । वह अपने पिता से अर्ज करती है कि मुझे देश की अपेक्षा किसी अन्य देश भले ही व्याह देना, मगर वर जोड़ी का देखना । कन्या अपने समान ही सुन्दर वर की कामना करती है ।

बाई रा दादोजी चाल्या रथ जोड़, बाई रथ थाम लियौ,
दादौजी वर मांगूं भगवांन, देवर तौ छोटौ लिछमणजी ।

बाई के दादा रथ पर चढ़कर कन्या की सगाई के लिए चले तब पुत्री ने रथ रोक कर कहा — दादाजी, मैं आपसे राम जैसे वर और लक्ष्मण जैसे देवर का वरदान मांगती हूं ।

१ बनड़ी ऊभी गोखड़ियै, दादाजी ओह म्हारी जोड़ी रौ सासरै

२ बीकांणै मत दो म्हारा बाबल, सासरियै अे लोय
बीकांणै रौ पांणी घणौ दूर, सासरियै अे लोय

३ कसूंबी रा डागळ डागळ पांन
गूंथ लाय अे म्हारी मालण सेवरौ
सेवरियौ ना पैरै म्हारी बनड़ी हठ करै
लाय अे म्हारी मालण सेवरौ

परणूं परणूं वसदेवजी री सींव
नीं तो रैवूं कुंवारड़ो जी
लाय अे म्हारी मालण सेवरो ।

४ बनी म्हारी असल गंवार, बनी म्हारी चतर सा जी चतर सा

ये सब संवादात्मक गीत होते हैं, जो रोचकता की दृष्टि से बड़े सुन्दर लगते हैं। इनमें वसुदेवजी, ठाकुरजी आदि के नाम लेकर फिर गीत को भावना सहित गाया जाता हैं। वर वधू के संवादात्मक बनड़े और देखिये —

हस्ती तो कजळी देसां रा लाज्यो जी, घुड़ला तो पारस देस रा लाज्यो जी
वाहण रै भळकै आज्यो जी बना, करवां रै रळकै आज्यो जी बना

बनी कहती है कि हे बना कज्जल देश के हाथी और फारस के घोड़े लेकर आना। ठाट की सवारी सजा कर ऊंटों के समूह से सजधज कर आना।

१ सिरदार बना जी, हस्ती थैं लाइज्यो अो कजळी देस रा
उमराव बना जी, हस्ती थै लाइज्यो खुरसांणी देस रा
सिरदार बना जी, सेवरियै भळूकै अो आभा बीजळी

२ बना थै हस्ती भल लाज्यो, घुड़लां रै घमकै आज्यो जी बना
बनाजी म्हारै दादोसा रै बुलाया, थैं मोड़ा किण विध आया
बनी थारी थोथोड़ी थळियां में म्हारा घोड़ला थाक्या अे
बना थारा घोड़लां नै घीरत दिरास्यां, भायां नै लूंग सुपारी
बना थै आप पियो भांगड़ली भायां नै सरबत पावो

बान बैठने के बाद प्रतिदिन वर-वधू को उबटन करके नहलाते हैं। ये पीठी के गीत कहलाते हैं। उदाहरण है :

मगरै रा मूंग मंगाओ अे, म्हारी पीठी मगर चढ़ाओ अे
म्हारी तेलण आ भल आई अे, तेलण तेल घड़ो भर लाई अे
म्हारी माळण भल आई अे, आतो चंपो मरुओ लाई अे
चंपलै री चोसठ कळियां अे, बनो पूरै बनी री रळियां अे

इसी भांति पतासा, तमासा, डोरी, गोरी, कूंची, ऊंची की तुक मिलाकर वर से वधू को विशेष बताकर विनोद किया जाता है। पीठी के गीतों में हल्दी का विशेष महत्व होता है। हल्दी संबंधी भी अनेक गीत प्रचलित हैं।

म्हारी हळदी रो रंग सुरंग निपजै माळवै
हळदी अमोल पंसारी री हाट, बनड़ै रै सिर चढ़ै
चिर जीवो रायजादा रा बाबोजी, हळदी मोलावै
बांरी माता मन कोड घणा, म्हारी हळदी रो रंग सुरंग

मेंहदी सुहाग का एक चिन्ह है। दाम्पत्य जीवन में प्रेम का रंगीन शृंगार

है। हिन्दू स्त्रियां विवाहोत्सवों पर सदैव इसे लगाती हैं। औरतें विवाह की पहली रात इसे लगाकर रातीजगा रखती हैं –

मेंहदी बाही बाही बालूड़ा री रेत, प्रेम-रस मेंहदी राचणी,
मेंहदी सींची सींची जळ जमुना रै नीर, प्रेम रस मेंहदी राचणी

इसी भांति सेवरौ, कांमण, जली, ओळूं, चंवरी, फेरा, वायरौ, बधावौ, भात, जंवाई आदि के असंख्य वैवाहिक गीत गाये जाते हैं।

संस्कार गीत ३. मृत्यु संस्कार के गीत—यह मानव जीवन की अन्तिम व चिर-शान्ति का संस्कार है। कहीं वृद्ध पुरुष या स्त्री की मृत्यु हो जाती है, तो उसकी बैकुंठी निकाली जाती हैं और आध्यात्मिक गीत गाये जाते हैं। इनमें मृत व्यक्ति का स्मरण गुण-गान रहता है। उर्दू साहित्य के मरसियों की भांति ये गीत बड़े मार्मिक तथा कारुणिक होते हैं। इनमें व्यथा तथा शोक के भाव भरे रहते हैं। मृत्यु के अवसर पर सामाजिक रूप से स्वर एवं लयपूर्ण रुदन बीकानेर की पुष्करणा जाति में भी हृदयद्रावक अभिव्यक्ति के साथ चलता है। यह लय सहित रोना केवल स्त्रियों का ही नहीं, पुरुषों द्वारा अधिक होता है। बालकों की मृत्यु पर भी रोने के साथ छेड़े नामक दुखद गीत गाये जाते हैं। उनको घर का दीपक बुझ जाने या उजास [प्रकाश] मिट जाने की उपमा द्वारा याद किया जाता है। दड़ी गेडियो जैसी उनके खेलने की वस्तुओं का शून्य भाव भी प्रस्तुत किया जाता है। बूढ़े को मेढ़ी [घर का स्तम्भ] और बूढ़ी को मेढ़ण नाम से पुकारा जाता है।

खूब अवस्था प्राप्त करके मरने वाले पुरुष-स्त्रियों को भाग्यवान माना जाता है। इनके बेटे पोतों का ठाट-बाट होता हैं। अतः उनकी मृत्यु के अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को हर के हिंडोले या हरजस कहते हैं। मैं एक प्रसिद्ध हर का हिंडोला यहां दे रहा हूं जो मरणोत्सव पर गाया जाया है:

कठै सूं आई बडेरां थांनै पालकी, कठै सूं आया रे वीमांण
जी ओ बडभागण, आयौ हलकारौ स्री भगवांन रौ, राजा रांम रौ
सुरगां सू आई बडेरां थांरी पालकी, दरगा सूं आया रे वीमांण
जी ओ बडभागण आयौ हलकारौ स्री भगवांन रौ, राजा रांम रौ
खाली तौ मेलां बडेरां थांरी पालकी, छळियोड़ी जासी वीमांण
जी ओ बडभागण ऊभा थै रहज्यौ कदम्ब री छांवळी, राजा रांम रौ
कुणा जी घड़ावै, बडेरां थांरी पालकी, कुणा जी मोलावै रे वीमांण
जी ओ बडभागण हर रौ हिंडोळौ बडेरां थांरै संग चालै
बेटा जी घड़ावै बडेरां थांरी पालकी, पोता जी घड़ावै रे वीमांण
कुणा जी उठावै थांरी पालकी, कुणा जी उठावै रे वीमांण
बेटा जी उठावै थांरी पालकी, पोता जी उठावै रे वीमांण
हर हर करता बडेरां थे उठ चाल्या, तुळछां री माळा थांरै हाथ

बेटा जी उठावै थांरी पालकी, कोई पोता जी करै रे डंडोत
जी श्रो बडभागण ऊभा थैं रहज्यौ, कदम्ब री छांवळी
किणनैं थैं सूंप्या चोकी चूंतरा, किणनैं थैं सूंप्या घर बार
बेटां नैं सूंप्या चोकी चूंतरा, बहूश्रां नैं घर बार
जाय उतारया बडेरां थांनैं भोमका, कांप रही बनराय
तूं क्यूं कांपै श्रे बनरी लाकड़ी, म्है हां फूसैं जी री माय
बेटा तौ पोता घरां सिधाइया, होज्यौ थांनैं बेंकुंठा रा बास
चावळ तौ रांधां बडेरां थांनैं ऊजळा, श्रमल जाळापुर री खांड
पोळी तौ पोवां थांनैं लड़छड़ी, कोई तीवण तीस बत्तीस
पोहर उगंतौ बडेरां थांनैं पांतियौ, जीमौ नीं फूसैं जी री माय

बूढों [स्त्री पुरुषों] की मौत पर हर का हिंडोला गाया जाता है। इस गीत के साथ सगी बहिन बेटियें रोती भी रहती हैं। मृत्यु एक अवश्यम्भावी तथ्य है, उसे स्वीकार करके ही जीवन की गति चल सकती है। इसलिये मृत्यु में ही जीवन का संदेश छिपा हुआ है। ऐसा ही दूसरा गीत है

थांनैं रांम जी बुलावै श्रो बडेरां, थैं माइनैं सूं बारै आव
जावांला द्वारका
थैं दस दिन भगवत धीरज धरौ, म्हारा कंवरां नैं लेवां समझाय
थैं दस दिन भगवत धीरज धरौ, म्हारी माया नैं लेऊं मुळभाय
थैं सुणज्यौ हो कंवरां इग्याकारी, म्हारौ पीछौ दीज्यौ सुधार
थांनैं प्रभु जी बुलावै बडेरां थैं माइनैं सूं बारै श्राव
थैं दस दिस भगवत धीरज धरौ, म्हारी बहुवां नैं देवां समझाय
सुणौ थैं बहुवां इग्याकारी, म्हारी ताळा कूंची लेवौ नीं संभाळ,
थांनैं रांम जी बुलावै श्रो बडेरां माइनैं सूं बारै श्राव
थैं दिन दस भगवत धीरज धरौ, म्हारी धीवड़ल्यां नैं देवां समझाय
सुणौ थैं धीवड़ल्यां लाडली, म्हारी गुवाड़ी दीज्यौ जगांण

[प्रत्येक पंक्ति के बाद 'जावांला द्वारका' की कड़ी दुहराई जाती है]

शोकावस्था में भी सरल रीतियों सहित लौकिक तत्वों के सूक्ष्म विधि-विधान होते हैं। बाप दादे की मृत्यु पर बेटों, पोतों को बाल कटवाने पड़ते हैं। पति की मृत्यु पर स्त्री की चूड़ियां तोड़कर उसके साथ भेजी जाती हैं। मृत व्यक्ति को डोरे तागड़ी उतार कर नहलाते हैं। फिर नवीन कपड़े [खापण] ओढ़ा दिया जाता है। सुहागिन स्त्री की मृत्यु पर मोती मिणिये, चूड़ियां, काजल आदि करके उसे पीला या कसूंमल ओढ़ना ओढ़ाते हैं। सबके वक्ष पर आटे का पिंड और पैसा रख देते हैं तथा श्मशान के निकट स्थान पर जल का कलश फोड़ते हैं। यदि मृत्यु पंचकों में होती है तो घास के पूलों की पुतली बना कर साथ जलाई जाती है। श्मशान में पहुंचकर जलाने की जगह पर उल्टा श्रीराम लिखा जाता

है। मां और बाप को बेटा, स्त्री को उसका पति दाग देता है। चिता के आधी जल जाने पर दाग देने वाला घी, डाल कर कपालक्रिया [सिर फोड़ना] करता है। इस समय उसके द्वारा जोर से बांग भी दी जाती है। श्मशान से घर आते समय हरे वृक्ष की एक डाली को लांघ कर निकलते हैं। संख का छींटा लेते हैं। स्वर्ण स्पर्शित जल से नहाते हैं, चंदन लगाते हैं और नीम के पत्ते चबाते हैं। किसी गर्भिणी स्त्री का पति साथ होता है तो वह मृत के खापण [कफन] से फाड़कर एक लीरी अपने हाथ के बांधता है। पहले दिन खाना घर पर नहीं बनाया जाता, कुटुम्बियों के यहां से आता है। फिर बारह दिन तक घर के लोग एक समय खाते हैं। इसे इकोळिया करना कहते हैं। जमीन पर सोते हैं और खड़ाऊ पहिनते हैं।

मृत व्यक्ति की अस्थियां गंगाजी भिजवाना, गरुड़ पुराण बिठाना और तीन दिन का तीसरा करना आदि मृत्यु के लोकाचार हैं। बारह दिन तक सर्व परिचित सगे सम्बन्धी मिलने आते हैं। ग्यारहवें दिन क्रिया - कर्म और बारहवें दिन द्वादशा होता है। गांव के सारे ब्राह्मणों का भोजन ब्रह्मपुरी और सारे ग्राम के लोगों की जीमणवार 'सरसारिणी' कहलाती है। महीने के बाद महीने का घड़ा और छः महीने के बाद छः माही का घड़ा 'भराया' जाता है। अस्थियां गंगाजी में डालकर आने के बाद गंगेड़े भी किये जाते हैं। साहित्य में यह वर्णन एक नवीन वस्तु माना जायेगा।

अन्य गीत ४. मौसमों के सामयिक गीत – इनमें देवी-देवता और व्रत त्योहारों के गीत होते हैं। प्रकृति अपने नये नये स्वांग बनाती है। ॠतुएं आकर उसको सजाती हैं। समयानुसार मानव भी गाता चलता है। ये गीत संस्कारी गीतों से अलग होते हैं। ॠतुएं अपने अपने उत्सव, त्यौहार, पर्व, और देव पूजन साथ लाती हैं। फाल्गुन में होली, चैत्र में गणगौर और सावन भादों में तीज तथा झूले के गीत उल्लासपूर्ण एवं रसीले होते हैं, जिनका थोड़ा विवरण प्रस्तुत कर रहा हूं।

चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से चैत्र शुक्ल पक्ष की चतुर्थी तक कुंवारी लड़कियों के गौरी पूजन और गीत महामधुरता के आदर्श कारण हैं। प्रातः काल कन्याएं टोली बनाकर जवारों एवं कुंकुम आदि से गौरी पूजन करती हैं। शीतलाष्टमी से वे घुड़ला घुमाती हैं –

१. घुड़लो घूमै छै जी घूमै छै, घुड़लै रै बांध्यौ सूत,
घुड़लो घूमै छै जी घूमै छै
ठाकुरजी रै जायौ पूत, घुड़लो घूमै छै जी घूमे छै

२. जाळोड़ी जळ नीपजै रे वीरा, पाटण भुकी रे जवार

साडुळसिंगजी रा करणीसिंगजी म्हांरै घुड़लै रै सांमा आव
म्हे घुड़लै री तीजण्यां ओ वीरा थै घुड़लै असवार
घुड़लौ मांगै रोक रुप्पयौ, जिणरौ नेग चुकाय

तृतीया एवं चतुर्थी को गवर के बड़े भारी मेले लगते हैं। गवर को ढोकळों का चूरमा चढ़ाया जाता है। गौरी के एक नख-शिख वर्णन के गीत का प्रारंभ इस प्रकार है:

गवरल रूड़ौ हे नजारौ तीखै नैणां रौ
गढ़ां कोटां सूं गवरल ऊतरी
हो जी बांरै हाथ कंवळ केरौ फूल

ईसर-गणगौर के अनेकानेक गीत राजस्थान प्रदेश में गाये जाते हैं। इस त्यौहार के साथ कुमारी कन्याओं की आशा - आकांक्षाओं का संसार भी चित्रित हुआ करता है। साथ ही साथ विवाहित जीवन के आनंद एवं हर्ष का वर्णन भी इनमें मिलता है। गवर को विभिन्न आभूषणों से सजाने की क्रिया का निम्न-लिखित गीत राजस्थान भर में व्याप्त मिलता है:

खेलण दौ गिणगौर भंवर, म्हांनै पूजण दौ गिणगौर
ओ जी म्हारी सैयां जोवै बाट
भंवर म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

कै दिन री गिणगौर, थांरै कै दिन री गिणगौर
ओ जी थांनै कितरा दिन रौ चाव
भंवर म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

दस दिन री गिणगौर ओ भंवर, म्हारै दस दिन री गिणगौर
ओ जी म्हांनै सोळा दिन रौ चाव
भंवर म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

ओ अे म्हारी रात रिझावण, थांनै नहीं पूजण दां गिणगौर
ओ अे म्हारी दिन बतळावण, थांनै नहीं खेलण दां गिणगौर
भंवर म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

माथा नै मैंमद ल्याव भंवर, म्हारै कांनां कुंडळ ल्याव
ओ जी म्हारी रखड़ी रतन जड़ाव
भंवर म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

मुखड़ा नै वेसर ल्याव भंवर, म्हारै हिवड़ा में हांस घड़ाय
ओ जी म्हारै बाजूबंद में लूंब लगाय
भवर म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

नहीं पूजण दां गिणगौर, भायां री बैनड़ नहीं पूजण दां गिणगौर
म्हारी सेजां री सिणगार, थांनै नहीं खेलण दां गिणगौर

भंवर म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

बहियां नै चुड़लौ ल्याव भंवर, म्हारै बहियां नै चुड़लौ ल्याव
ओ जी म्हारै गजरा बैठ पुवाय
म्हारा साईणा सिरदार, म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

पगल्यां नै पायल ल्याव भंवर, म्हारै बिछिया रतन जड़ाव
ओ जी म्हारी चूंदड़ी इश्क रंगाव
म्हारा बादीला सिरदार, म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

म्हारी रात रंगीली गिणगौर, नहीं पूजण दां गिणगौर
म्हारै सेजां री सिणगार, थांनै नहीं पूजण दां गिणगौर
खेलण दौ गिणगौर भंवर, म्हांनै पूजण दौ गिणगौर

ओ जी म्हारी सैंयां जोवै बाट
भंवर म्हांनै खेलण दौ गिणगौर

इसी तरह वरदान-याचना, खोल किवाड़ी, जवारों और बाड़ी के गीत बहुत सुन्दर होते हैं। इनमें ब्रह्मादत्त जी के दो पुत्र ईसरदास और कानीराम तथा रोवां और सूरजमल नाम आते हैं। नवरात्र और रामनवमी इसी मास के उत्तर पक्ष में आते हैं। वैसाख शुक्ल तृतीया को अक्षय तृतीया पूजन होता है। राजस्थान में यह पर्व कृषकों का माना जाता है। जेठ में निर्जला एकादशी और अषाढ़ में सुद नवमी के धार्मिक एवं मांगलिक दिन होते हैं।

सांवण पहली सुद नवूं, घण बादळ घण बीज,
ढांडा ढोरा सामलौ भेळौ करल्यौ बीज।

सावण में तीज का त्यौहार बहुत प्रसिद्ध है। बालिकाओं के मेंहदी, चूड़ियां, झूले और गुड्डे गुडियों का विवाह विशेष शोभनीय होता है।

सावण रा सतरह गया, आज नौलड़ी तीज,
घाल तराजू तोल दै, के मारगी बीज।

रक्षा बंधन, गुरु पूर्णिमा और श्रावणी भी इसी मास के मान्य पर्व हैं। भाद्र पद से जन्माष्टमी, गोगा नवमी और जळझूलनी एकादशी मनाई जाती है। अनन्त चतुर्दशी भी इसी मास का पर्व है। आश्विन में फिर नवरात्र, दशहरा, अस्त्र पूजा और लीलटांस के दर्शन शुभ माने जाते हैं। कार्तिक में कार्तिक स्नान, कार्तिकेय पूजा, करवा चौथ, अहोई अष्टमो और तुलसी पूजन होता है। इस मास में दीपावली और देवोत्थान एकादशी के पर्व भी प्रसिद्ध हैं। इसमें गोवर्धन पूजन और लक्ष्मी पूजन होते हैं। मिगसर पोष में संक्रांति पर्व आता है। माघ में वसन्त पंचमी और फागुन में शिव रात्रि का उत्सव मनाया जाता है। इसके उत्तर पक्ष में होलिकोत्सव मनाया जाता है। लड़कियां होली के साथ गोबर

के भरभोलिये जलाती हैं। स्त्रियां पानी का लोटा भरकर खेत बीजती हैं। लड़के फेरे देकर खोपरे खाते हैं। कृषक आज के दिन कुश्ती खेलते हैं और तेजा गाते हैं। अगले दिन गहर या धूलंडी मनाते हैं।

साल के आरम्भ में देवी-देवता अधिक पूजे जाते हैं। राजस्थान में माताओं के बहुत से मंदिर हैं। काळू की कालिकाजी, पलू की माताजी, देशनोक की करनी माई, खुड़द में इन्द्र बाई, सिन्धु मोरखाने में मेहआई माता, बीकानेर में नागणेचियांजी और ओसियां में ओसियां माता विशेष प्रसिद्ध हैं। झडूले और गंठजोड़े की यात्रा के लिए दूर दूर से चलकर यात्री आते हैं। उनके द्वारा जोत और त्रिशूल का मंगल कार्य मनाया जाता है। सच्चिया माता और नगर कोट की ज्वाला का भी विशेष महत्त्व है। इनके सिवाय जमवाय माता, सकराय माता, जीण माता, खीमेल माता, शिलादेवी, नाय पोचिया का नाम लिया जा सकता है।

इन माताओं के अतिरिक्त एक विशेष माता मनाई जाती है, जिसका नाम है – शीतला माता। राजस्थानी में इसे सेढ़ळ माता भी कहते हैं। इसका मढ़ नोखा ग्राम में हैं। शेखावाटी में बाघोर की शीतला विख्यात है। इस माता का भक्त कुम्हार और वाहन गधा माना जाता है। इसका त्यौंहार ठंडा वासी खाकर मनाते हैं। इसके त्यौंहार को वासीड़ा कहते हैं। यह चेचक की अधिष्ठात्री देवी है। इसके कई गीत हैं। इन गीतों में बच्चों की चेचक से रक्षा करने की प्रार्थना की जाती है। जैसे–

सेढ़ल आई माता देस में अे माय, देस में अे माय
अड़सट गधियां पलांण मोरी माय
डरप्या राजा राजवी अे माय, राजवी अे माय
डरपी टाबरियां री अे माय
सेढ़ळ धोकै म्हारै तीरथ री अे माय, तीरथ री अे माय
हाथ कुंडाळो पग नेवर अे माय
नवनेवज कर धोकस्यां अे माय, धोकस्यां अे माय
टाबरियां नै ठंडा झोला देय मोरी माय
उदो रै उदो कर नीसरी अे माय, नीसरी अे माय
उदो करी परिवार मोरी माय
उदो रै उदो कर नीसरी अे माय, नीसरी अे माय
उदो संस्करता री पोळ मोरी माय

१. माता सेढ़ळ आई देस में
गाता अड़सठ गधिया पलांण
म्हैं सेढ़ल रा जातीड़ा
वीरै जुगराज नै तूठी पंचफूली

वीरै वीरथ रा जतन कराय
माता सेढ़ळ आई देस में
वीरै सिवराज नै तूठी पंचफूली
बाई राजू रा जतन कराय
माता सेढ़ळ आई देस में

शास्त्रीय विधानानुसार चैत्र के नौ दिनों में शक्ति पूजा की जाती है। इस अवसर पर स्फुट एवं कथात्मक दोनों प्रकार के गीत गाये जाते हैं। पुरुष बड़े गीतों को जागरण के नाम पर रात भर गाते हैं और स्त्रियां रातीजोगे में दोनों प्रकार के गीत गाती हैं। स्फुट गीतों में देवी की यात्रा, महत्ता और सुन्दरता का वर्णन रहता है। लंबे गीतों में देवी के बलिदान, देवी की महिमा, मंदिर की शोभा और भैरूं-लंगड़िये के पराक्रम का उल्लेख होता है। प्रबन्ध गीतों में धन्ना भगत का नाम बार बार आता रहता है। इन गीतों में ध्वजा, नारियल, सिन्दूर, माला का वर्णन भी होता है। इन में बाव की सवारी और राक्षसों का संहार विशेष बताया गया है। शीशदान और बलिदान की कथाएं भी बहुत आती हैं। जगदेव पंवार, बाळूडो, दूधळो आदि शीश चढ़ाने वाले भक्त इसी समय स्मरण किये जाते हैं।

देवी रातीजगे का एक स्फुट गीतोदाहरण —

माता काळी सी बदळी भवांनी बीजळी चमकै अे माय
माता वीजळी चमकै भवांनी मेहलासा बरसै अे माय
माता मेहलासा बरसै भवांनी थारै ताल छिलीजै अे माय
माता ताल छिलीजै भवांनी डेडर डरपै अे माय
माता डेडर डरपै भवांनी रै मोर झिलोरै अे माय
माता मोर झिलोरै भवांनी रै चातक सुरंगा बोलै अे माय
माता चातक सुरंगा बोलै भवांनी रै कोयल कुलकै अे माय
माता कोयल कुलकै भवांनी रै जीवड़ो जातीड़ां रो हुलसै अे माय
माता परबत चढ़ती भवांनी रै चोळी चीन्हो अे माय
माता कित लख चीन्हो भवांनी कित लख रह्यो अे माय
माता नव लख रह्यो भवांनी रै दस लख चीन्हो अे माय
माता सारै री सूई भवांनी रै पाट्ट रो तागो अे माय
माता सींव लावै दरजीड़ै रो बेटो पहरै सकड़ भवांनी अे माय
माता सोवण पिलंग पालखड़ी भवांनी सोनै रा पाया अे माय
माता घड़ लावै सोनीड़ै रो बेटो पोढ़ै सकड़ भवांनी अे माय
माता पाट्ट री बेग दावण दो मखतूल री अे माय
माता बण लावै पटवारै रो बेटो पोढ़ै सकड़ भवांनी अे माय

माता म्हारी रैं सोनैं री छत्तर कुण चढ़ावैं अे माय
चढ़ावैं रामेस्वर री भागीरथ पेरैं सकड़ भवांनी अे माय

आगे इस देवी के गीत में नाम लेकर इसे बढ़ाया जाता है। पुरुषों के कथात्मक गीतों में बाळूड़े का गीत बड़ा मनोहर एवं मार्मिक है।

गीत बाळूड़ो–

भलां म्हारा बाळा माई के जायौ इक लाल, बाळूड़ो म्हारो चाकरी गयौ
हां रे बाळा, गयौ मुगलकै देस, नौकरी जवेरियां लागी
हां रे बाळा माया कमाई लख चार, ग्रा सुरता वैरण देस नैं गई
भलां म्हारा बाळा पैलोड़ौ वासौ विसवावीस, दूजोड़ै वासैं बहन रैं गयौ
भलां म्हारा बाळा वीरैं नैं ग्रावतो देख, बहन थांरी पांणी नैं चाली
भलां म्हारा बाळा दीठो माया रौ कनै जोर, वीरैं सूं बहनड़ जोर री मिली
भलां रे बाळा गयौ दिक्खण रैं देस, बहनड़ नैं ग्रातौ कांई तो ल्यायौ
भलां अे बाई, बहनड़ नैं ल्यायौ दिखणी चीर, जीजैं नैं पिचरंग पागड़ी ल्यायौ
भलां अे बाई, भाणजियां नैं फामड़ली चीर, भाणजड़ा मैंमद मोळिया ल्यायौ
भलां म्हारी बाई, जीजैं नैं मुरक्यां कांन, बहनड़ नैं भत्ररक भूंटणा ल्यायौ
भलां म्हारा वीरा, रैंज्या तू ग्रेकण रात, भोजनियां म्हारा जीमतौ सरी
भलां रे बाळा गई मोदीकै री हाट, मोदीड़ा सीधी तोलती सरी
भलां अे लिच्छू के ग्रायौ जामण जायौ वीर, कुणां रौ सिगरथ पांवणौ ग्रायौ
भलां रे मोदी, नीं ग्रायौ जामण जायौ वीर, नहीं तो सिगरथ पांवणौ ग्रायौ
भलां म्हारा बाळा रांध्या है चावळ भात, साळो बहनोई जीमनैं रह्या
भलां रे बाळा उजळा चावळियां री खीर, मुट्ठी भर खांड घिरत लेवौ
भलां म्हारा बाळा, खूंणी में ढाळी ऊंडी खाट, ग्रोरैं में वीरा सुख भर सूत्रौ
भलां म्हारा सायब, तारां छाई है मांभळ रात, परण्योड़ा म्हारी ग्ररज सुणौ
भलां म्हारा परण्या वीरैं नैं लेवां ग्रापां मार, तो माया ग्राखी आपणैं रैवै
भलां म्हारा परण्या माया है सात हजार, जकां नैं दुनियां ब्याज भरै
भलां ग्रे रंडी, जूत लगाऊं दोय चार, कुळ में बहनोई कुण तो कवै
भलां म्हारा देवर, वीरैं नैं लेवां ग्रापां मार, तो सारो धन आपणैं रैवै
भलां म्हारा बाळा देवरियै पकड़्या दोनूं हाथ, लिच्छूड़ी छाती गोडो धरयो
भलां म्हारी बहनड़, ग्रबकै तू जीवतो छोड, ओ सारो धन तनैं ही दियो
भलां म्हारा बाळा देवरियै पकड़्या दोनूं हाथ लिच्छूड़ी माथो काट तो लियो
भलां रे बाळा धड़ तो नाखी है कूवै मांय, ग्रर माया माथो कोठी में धरयो
भलां म्हारा बाळा मूवैं नैं हुग्या दिन चार, मायड़ रैं बाळो सपनैं गयौ
भलां म्हारी माता मूवैं नैं हुग्या दिन चार, बाळूड़ो थांरो मार तो दियो
भलां रे सपना पड़ज्यो नीं ग्राळ जंजाळ, बाळूड़ो मेरो चाकरी गयौ
भलां म्हारी माता नहीं बहनोई जी नैं दोस, जायोड़ी तेरी करम करया
भलां म्हारी माता, धड़ तो नाखी है कूवै मांय, पण माया माथो कोठी में धरयो

भलां ओ माता हाथ लीनी है तिरसूळ , रीसाळू मायड़ मदा तौ चढ़ी
भलां मेरी बेटी , आयौ नीं जामण जायौ वीर , आयोड़ौ भाई कुनीनैं गदौ
भलां म्हारी माता आयौ हौ जामण जायौ वीर , सौदागर बाळौ पाछौ ही गयौ
भलां म्हारी बेटी खोलौ नीं सजड़ किवाड़ , कोठी में मेरौ भरम गयौ
भलां अे माता , अें खोल्या सजड़ किवाड़ , मायड़ नैं माथौ हंसतौ मिल्यौ
भलां अे बेटी , भारी हत्यारी पापण रांड , बाळूड़ौ मेरौ मार तौ लियौ
भलां अे माता कुवें सूं धड़ लीनी काढ़ै , माथौ धड़ दोनूं जोड़नैं दिया
भलां म्हारी माता मिळग्या झट भोळा सिभू नाथ , बाळूड़ौ झट अमर कियौ
भलां म्हारा बाळा काळी जोगण रौ उपदेस , मा , बेटौ दोनूं गांव नैं गया
भलां म्हारी माता , नहीं बहनड़ नैं देवूं दोस , लिख्योड़ा लेख कदै ना टळै

बालूड़ा नौकरी से धन कमा कर वापिस घर लौटता है । रास्ते में बहिन के यहां ठहरता है । बहिन अपने भाई को देवर की सहायता लेकर मार डालती है । उसका सिर अपनी कोठी में छिपाकर , धड़ [शरीर] कुए में डाल देती है । तथा सारा धन हजम कर जाती है । मगर देवी इस घटना को प्रकट करके बालूड़े को पुनः प्राणदान देती है । इस कथा का बालूड़े के गीत में वर्णन है । विशेष कारणों से मरे हुए अनेक सेवकों को पुनः जीवन दान देने के कथात्मक अगणित गीत मिलते हैं । ऐसे चमत्कारिक गीतों में बादशाह की कैद से देवी द्वारा मुक्त किये जाने के कुछ गीत भी मिलते है । थोड़ा दूसरा उदाहरण देखिये—

कुळ छत्री राजा भवीचन्द राजा , कुळ छेत्र में नहांण कियौ
जागौ सूंवैं चोक वाळी , तेरैं भवन में उजियाळी
गढ़ दिलड़ी सूं चढ़ियौ है मुगल को , भवीचन्द नैं कैद करावै ।
हाथां तौ पगां में बीरैं बेड़ी घलाई , गळैं बिच तोप जड़ायी
जागौ सूंवैं चोक वाळी तेरैं भवन उजियाळौ ।
काळा पाड़ां सूं माजी सिह पलांणै अर भगतां री मदा पवारैं ।
सिह चढ़ी माता हाकळ मारैं मेरौ भवीचंद बारैं आवै
हाथां पगां री वेड़ी कटाई , गळ सूं तोप कढ़ाई
जागौ सूंवैं चोक वाळी तेरैं भवन में उजियाळौ ।
पकड़ पछाड़्यौ तेरे बादसाह नैं औ हुरमां अल्ला जपैं
जागौ सूंवैं चोक वाळी तेरे भवन में उजियाळौ ।

एक राजा को मुगल बादशाह ने कैद कर लिया । तब राजा ने देवी का स्मरण किया । देवी जेल के द्वार खोल कर भक्त को मुक्त कर देती है । बादशाह और उसकी हुरमें घबराकर देवी की शरण में आते हैं । इस तरह के चमत्कारिक गीत काफी मिलते हैं । उक्त दोनों गीत भोपे माता जी के जागरण में गाते हैं ।

कथात्मक गीतों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के द्वारा गाये जाने वाले गीत अधिक हैं । इनमें सहसण माता और जीण माता के गीतों की कथा भी बड़ी अमर

एवं आदर्श है । गीत सैंसण माता का —

उत्तर दीखण सूं दोय मुनिवर श्राया हो, श्राय उतरिया हरियै बड़ तळै
ढूढ़त ढूढ़त संतां नगर ढिढ़ोळचौ सैंसण माता रौ बतावौ घर किस्यो
ऊंची सी मेड़ी माता अजब झरोखा, केळ झबरकौ माता रै बारणै
म्हारा सासूजी श्रो साधां रै पधारिया, मुनिवर गोचरी पधारिया जी
सीरौ बेरायौ माता साबू बैराया, मोदकिया बैराया बळ भाव सूं जी,
लाडू बैराया माता जळेबी बेराई, घेवर बैराया बळ भाव सूं जी ।
दाल वेराई माता चावळ बैराया, घीव बैराया बळ भाव सूं जी ।
साग बैराया माता फलका बैराया, पापड़ बैराया बळ भाव सूं जी
श्रोगा बैराया माता पातरा बैराया, टोपसियां बैराई बळ भाव सूं जी ।
सुण सुण अे म्हारी लाल पाड़ौसण, म्हारी सासूजी नै मत कहियौ जी
गून्द - गिरी रौ इक लाडू देस्यूं, भळे कसूंबा कांचळी जी
गूंद - गिरी रौ लाडू नदी ववाड़ूं, कांचळी फाड़ धजा करावूं जी
म्हांरी जीभ बाई लर - लर चालै जी, कद थारी सासू श्रावै अर म्हैं कहूं
हमैं म्हारी सासूजी घरां पधारिया, पाड़ौसण दौड़ सामी गई जी
सुण - सुण अे म्हारी लाल पाड़ौसण, थारी बहूड़ साध बैराइया जी
देई ना धोक्या देवता ना धोक्या, सै सूं पैल्या साध बैराइया जी
उठौ बेटा हठीसिंह सपूत म्हारा, वेगी तौ काढ़ौ घर री कुळ बहू जी
कांई रै विगाड़ियौ माता कांई रै उजाड़चौ, किण विध काढ़ौ घर री कुळ बहू जी
सारौ बिगाड़चौ बेटा सारौ ही उजाड़चौ, सारा सूं पैल्यां साध बैराइया जी
काळा बळदां सूं रथ जुड़वायौ, काळा वसतर पैराइया जी
उठौ बेटा सिवकरण उठौ बेटा देवकरण, थारी दादी देसूंठौ दे दियौ जी
पीत्रर ना छोडी वांनै सासरै ना छोडो, अन्न रोही में छोडचा अेकला जी
सिवकरण बेटा नै भूख लग आई, देवकरण तौ तिसाइयौ जी
सूकी तळायां दूध भर श्रायौ, सूका रूंखां रै फळ हुया जी
हमैं म्हारा सासूजी रसोयां पधारिया, रसोयां रा थांभा रतन जड़चा जी
सीरौ संभाळचौ दाळ भात संभाळचा, सारी तेवड़ दूणी डोढ़ी हो रही जी
उठौ बेटा हठीसिह रथ जोड़ावौ, वेगी तौ ल्यावौ घर री कुळ बहू जी
बहू बिना म्हारौ श्रांगणियौ अडोळौ, पोता बिना वाखळ विरंगी जी
धोळै बैलां रौ रथ ले पौंच्या, थांनै थारी सासू चेतै करचा जी
श्रो लेवौ देवकरण श्रो लेवौ सिवकरण, म्हे नहीं श्रावां थारै बारणै जी
पाट्ट पहरतां सूतौ पंहरस्यां, भळै नहीं श्राबां थांरै बारणै जी
साबती खांवता आधी खास्यां, भळै नहीं श्रावां थांरै बारणै जी
सतरंज जास्यां माता सैंसण कुवास्यां, कुळ में नावौ वधारस्यां जी
बेला चोलां पख, तप बळ देस्यां, महीणांळा मोख पुगावस्यां जी

साधुओं की सारी चीजें सैंसण माता ने बैरादी, मगर ये सब बातें पड़ौ -

सिन के नजर में आ गई। लाख प्रलोभन देने पर भी पड़ौसिन ने उसकी सास से साधुओं के परोसने की सारी वात कह डाली। सासू ने अपने बेटे से शिकायत की। और बहू को घर से निकालकर बाहर छोड़ आने की बात कही। बेटे को वही करना पड़ा। न पीहर न सासरे, जंगल के अन्दर जाकर सैंसण माता को छोड़ा। वहां उसके पुत्र देवकरण शिवकरण को भूख प्यास लगी। सत के कारण पेड़ पौधे फूल गये। पोछे सासू के भंडार भी भर गये। अब तो सैंसण माता को वापिस घर बुलाया गया। किन्तु सैंसण माता ने कहा –

ढोलियै पौढ़तां धरती पर पौढ़सां, भळै नहीं आवां थारै बारणै जी।

सैंसण तपस्या के कारण माता कहलाई। जैन धर्म के तेरा - पंथी सम्प्रदाय में सैंसण माता की भारी मान्यता है। जैन मंदिरों में प्राय: सैंसण माता की मूर्ति स्थापित होती है। श्रावकों में नास [उपवास], दो दिन, तीन दिन, पंचोला एवं अठाई तथा क्रम से महीने भर तक निराहार तपस्या करने वालों को सैंसण माता ही बल देती है, ऐसी उनके धर्म में गाढ़ी धारणाएं हैं। इन उपवास रखने वालों की जब तक तपस्या चलती हैं; उनके घर रात्रि को अन्य गीतों के साथ 'सैंसण माता' का उक्त गीत भी गाया जाता हैं। अंत में तपस्या पूर्ति के दिन [पारणा करने दिन] यही गीत गाती हुई महिलाएं तपस्या करने वालों को माता के मंदिर में ले जाती हैं। इसकी भांति एक जीण माता भी भावज द्वारा पीड़ित होकर पहाड़ों की गुफाओं में जाकर तपस्या के द्वारा प्रसिद्ध देवी हुई है। जीण का भाई पहाड़ों में मनाने जाता है, तब बहिन कहती है –

हरसा भाई म्हारा रे सिखर आयोड़ो रे सूरज मुड़ चले
समय भी गयोड़ो मुड़ आय, जामण रा जाया जीण आयोड़ी रे पाछी ना मुड़ै।

इस गीत का कुछ भाग राजस्थान भारती भाग एक अंक १ में और पूरा गीत मरुभारती वर्ष १० अंक दो में छपा है।

तपस्या गीतों की भांति शील और साहस के कथात्मक गीत भी राजस्थानी लोक साहित्य की जान है। सुपियार दे, हंजर, बेना बाई, चंद्रावळी, निहालदे, जसमल, सजनां जतणी, उदली भीलणी आदि के गीत प्रसिद्ध कथानक हैं। इन गीतों की नायिकाओं ने अपनी आन पर हंसते हंसते मृत्यु का आलिंगन किया है। ऐसी इनकी करुण कथाएं हैं। तभी तो जनता इनके गीत गाती है। नारी साहसोदधि में पातिव्रत्य धर्म की हिलोरें बड़े वेग से प्रवाहित होती हैं। उनकी भाव लहरियां दृढ़ता, सबलता और बड़े धैर्य के साथ तरंगित होती हैं, जिनमें अनेक राजा महाराजाओं की लोलुपता विलीन हुई है। ऐसी ऐसी सती नारियां अपने पति के समक्ष राजा ही क्या सुर तक का तिरस्कार कर चुकी हैं। वे अपने स्वामी के सामने

किसी को कुछ भी नहीं मानती । घर, खेत और पशु सब सराहने योग्य हैं और उन सब पर उसे अभिमान है । अपनी वस्तुओं के आगे वह दूसरों की धन-संपत्ति और रूप-यौवन को तृणवत् समझती है । इन गीतों में नारी का चरित्र कठिन परिश्रम करके अपने आत्मबल द्वारा औरों के ऐश्वर्य को सहज ही ठुकरा देता है ।

देखिये एक जसमल का गीत—

राजाजी तो कागद मोकळचा अे
जसमल झिलती जोधांणै वेगी आव
प्यारी म्हांनै लागो ओडणी अे
जसमल थां पर रीझ्यौ राव, राव खंगार

बसवांनै देस्यां अे जसमल धोरियो अे
जसमल खिणवानै देस्यां समंद तळाव
जिमवांनै देस्यां अे जसमल बाजरी अे
जसमल दुयवानै देस्यां धोळी गाय

ओड खोदै ओडणी ढोवै अे
जसमल झूलरिया तो बांधै धोळी पाळ
थोड़ी थोड़ी ढोवौ अे जसमल ढोकरी अे
जसमल पतळी कमर बळ खाय

राजाजी तो बैठा है पाळ तळाव री अे
जसमल चुग चुग कांकरड़ी सी वाय
मतना वावौ राजाजी कांकरी ओ
सांमी राजा देखै म्हारा देवर जेठ
अकल अलूंणा राजवी ओ
ठरक्योड़ा ठाकर भूल्यौ भूल्यौ राव खगार

किपड़ै उंण्यारै थारो घर धणी अे
जसमल किसड़ै उंण्यारै देवर जेठ
सांवळी सूरत म्हारो घर धणी ओ
सांमी राजा लाल दुमालै देवर जेठ

कवै तो मरादयूं थारो घर धणी अे
जसमल कवै तो मरादयूं देवर जेठ
मारूजी मरायै बाजूं रांडड़ी ओ
सांमी राजा देवर जेठां सूं हुवै कुनांव

राजाजी बुलावै अे जसमल ओडणी अे
जसमल महल जोवण म्हारा आव
कांई तो जोवां थांरै महलां रो ओ
भूल्या राजा म्हांनै म्हारी सरक्यां रो कोड

राजाजी बुलावै अे जसमल ओडणी अे
तनक मिजाजण कंवर जोवण म्हारा आव
कांई तौ जोवांला थारै कंवरां री ओ
भोळा भूपत म्हांनै म्हारै ओडड़ियां रौ कोड

राजाजी बुलावै अ्रे जसमल ओडणी अे
ऊजळदंती राणियां जोवण म्हांरी आव
कांई तो जोवांला थांरी राणियां ओ
कांमी राजा म्हांनै म्हांरा ओडणियां रौ कोड

राजाजी बुलावै अे जसमल ओडणी अे
रेसम रंजी घोड़लिया जोवण म्हारा आव
कांई तौ जोवांला थांरा घोड़ला ओ
पापी राजा म्हांनै म्हारै रासबियां रौ कोड

ओडणियां लदी है सूंई सांझ री ओ
कुबधी राजा ओड लद्या है ढळती रात
काग पड़ै कुतड़ा भुसै ओ

जुलमी राजा ओड ऊंचाळौ घाल्यां जाय
इसड़ी जै जांणतौ जसमल ओडणी अे
केसर वरणी डेरा थांरा देवतौ लुटाय

तूं म्हारा धोरिया सोभागियौ रे
धोळा धोरा थां पर लोटी, जसां दिन चार
तू म्हारी सिलड़ी सोभागणी अे
पक्की सिलड़ी थां पर धोया जसमां पांव
तू म्हारी कुतड़ी सोभागणी अे
सूधी सिबदी जसमल राळचा तन्नै टूक

सौ घोड़ा सौ हाथियां ओ
ठरक्योड़ो राजा फौज वणायर चढ़ियौ वार
कांकड़ जावतां नरपत नावड़्या ओ
बगनै राजा जसमां रा पकड़्या दोनूं हाथ

म्हूं छूं राजाजी थारी धीवड़ी ओ
बाबल राजा थें म्हारा जळहर जामी बाप
मरण मारण नै मच गई ओ
कोपी नारी हाथां में झांप दुधार

जलमी ही रंग महल में ओ
बाबल राजा दीनी मनै संमदरियै तिराय
तू म्हारी धरती देई बराड़ी अे

धीवड़ली नै बोल्यौ भारी पाप
सें घोड़ै गडणो चावू अे
भोमी माता किसड़ै मुख जाऊं राव खंगार

[राजा के पद में 'प्यारी म्हांनै लागो ओडणी अे' और ओडणी के पद में ठरक्योड़ा राजा भूल्यौ भूल्यौ राव खंगार' के वाक्य बार बार दुहराये जाते हैं]

गीत क्या है ? गीता के अट्ठारह अध्यायों का सार है। सुख सम्पत्ति में शील-संयम का पालन करना कोई बड़ी बात नहीं, परन्तु दुर्बल परिस्थिति में उसकी रक्षा करना बड़ा कठिन कार्य है। जसमा के उज्जवल विचारों सें राजा का हृदय साफ हो गया। उसने फौज को घर वापिस लौटाकर स्वयं ने वहीं जीवित समाधि ले ली। राजस्थान में मांगलिक अवसरों पर यह शिक्षाप्रद गीत गाया जाता है। ऐसा दूसरा गीत कलाळी का प्रस्तुत किया जा रहा है:

गीत कलाळी—

चांदड़लो भंवर जी चढ़चो गिगनार, हां ओ भंवर जी
कोई किरत्यां ढळ आई, गढ़ रै कांगरै जी राज

सूत्या पन्ना मारू सुख भर नींद, हां ओ भंवर जी
कोई सुपनै में दीखी, नार कलाळ री जी राज
चढ़िया सेळा मारू, ढळती मांझल रात हां ओ मदछकिया जी
कोई दिन तो उगायौ कलाळी रै देस में जी राज

बूझ्यो पन्ना मारू गायां रा ओ गुवाळ, हां ओ भायेलां रे
म्हांनै देस बताओ असल कलाळ रो जी राज
बावों कंवरसा जावै जैसलमेर हां ओ मदछकिया जी
थांरै जीवणो तो जासी देस कलाळ रै जी राज

बूझ्यो भंवर माळीड़ै रो पूत हां ओ माळीका जी
म्हांनै बाग बताद्यो असल कलाळ रो जी राज
यो ही छै भंवर जी कलाळी रो बाग, हां ओ बादीला जी
कोई आंबा तो पाक्या नींबू रस भरचा जी राज

बूझी पन्ना मारू पांणी री पणिहार, हां ओ सहेल्यां जी
म्हांनै पोळ बताओ असल कलाळ री जी राज
सूरज सांमी कलाळी री पोळ हां ओ मदछकिया जी
है केळ झबरखो कलाळी रै बारणै जी राज

पोळीड़ा रे भाई पोल तो उघाड़ हां ओ पोळीड़ा जी
कोई बारै तो ऊभा सिगरथ पांवणा जी राज
पोळ खुलण रो प्यारा जी दीखै नाहीं जोग, हां ओ भंवर जी
खुद पोळ्यां में सूतो पूत कलाळ रो जी राज

खोलौ अे कलाळी प्यारी सजड़ किवाड़ हां श्रो कलाळी जी
थांरै बाहर तौ ऊभौ है बेटौ राव रौ जी राज
होळै भंवर जी धीमा मघरा बोल, हां श्रो मदछकिया जी
कोई पोळचां में सुसरौ जी सूत्या सांभळै जी राज
सुसरै जी नै बकसावां कलाळी गांवड़ला दो चार, हां अे नखराळी जी
कोई अेक दिल्ली दूजो आगरो जी राज

घुड़ला भंवर जी पाछा थांरा घेर हां श्रो बादीला जी
म्हारौ श्रांगण तौ फूटै है जड़ियौ काच रौ जी राज
श्रांगण श्रे कलाळी देऊं रतन जड़ाय, हां श्रो कलाळो जी
थारा बारणा ढुळाद्यूं जाभा हींगळू जी राज

होळा भंवर जी धीमा मधरा जी बोल, हां श्रो मदछकिया जी
कोई सेज्यां में सूत्यौ पूत कलाळ रौ जी राज
थांरै अे भंवर नै देऊं दोय नारी परणाय, हां श्रो कलाळी जी
कोई अेक गोरी दूजी सांवळी जी राज

थे छौ कलाळी रांणी इधक सरूप, हां ओ मतवाळी जी
थांनै घाल तौ पटां में प्यारी ले चढूं जी राज
पटां में पन्ना मारू तेल फुलेल हां श्रो रंग रसिया जी
कोई नार पराई संग में ना चलै जी राज

थे छौ कलाळी प्यारी इधक सरूप, हां श्रो कलाळी जी
थांनै घाल नैणां में प्यारी ले चलूं जी राज
नैणां में वादीला सुरमैं री रेख, हां श्रो विलाला जी
कोई नार विरांणी थांरो जीव क्यूं डुळै जी राज

दीसौ कलाळी धण इधक सरूप, हां श्रो मांनेतण जी
थांनै पहर गळै में प्यारी ले चढूं जी राज
गळै में छैला मारू कंठी डोरा पैर, हां ओ भंवर जी
कोई नार पराई थांरै संग ना चलै जी राज

थे छौ कलाळी प्यारी घणी श्रो सरूप, हां श्रो कलाळी जी
कोई घाल डबी में थांनै ले चलूं जी राज
डबी में भंवर जी रुपिया मोहरां घाल, हां श्रो परदेसी जी
कोई नार पराई थांरै साथै ना चलै जी राज

थे छौ कलाळी प्यारी इधक सरूप, हां श्रो मिजाजण जी
थांनै बांध कड़चां में साथै ले चलूं जी राज
कड़चां में कंवर जी राखो भंवर कटार, हां ओ बिलाला जी
कोई नार छैलां री थांरै संग ना बधै जी राज
दीसौ कालाळी म्हांनै घणी श्रो सरूप, हां श्रो मगेजण जी
कोई घाल पगां में थांनै ले चलूं जी राज

पगां में पातलिया ल्यौ मोचड़ल्यां पैर, हां ओ नादीदा जी
थांनै नार पराई हरगज ना मिलै जी राज

कैसा उपयुक्त उत्तर है ? राजकुमार का सारा नशा उतर जात है और वह सीधा अपने घर का रास्ता ले लेता है ।

राजस्थानी स्त्रियों के गीत, लोक साहित्य की अमूल्य संपत्ति है । उनकी संपत्ति पुरुषों के गीतों की अपेक्षा काफी विशाल है । जन्म, विवाह, व्रत, त्यौहार और अनुष्ठानिक गीतों के अतिरिक्त जिन अनेक कथानकों के प्रवेश इन गीतों में पाये जाते हैं वे उन्हीं के [स्त्रियों के] जीवन से अवतरित हुए हैं । विशेष पात्रों के माध्यम से स्त्रियां अपने वर्ग की घटानएं गुंफित कर लेती हैं । अपने सजातीय हृदय की उथल-पुथल, सुख-दुख, संयोग-वियोग आदि भावनायें भिन्न भिन्न स्थानों पर गीतों के रूप में व्यक्त कर देती हैं । इन गीतों में भव्य भावों का अशेष भंडार भरा रहता है ।

नारी जाति की विराट आत्मानुभूति गीतों की प्रत्येक कड़ी पर जड़ी हुई है । इनके पावन मन की महानता जीवन क्षेत्र के पग पग पर जागृत है । बालक के लिए मां की सुमधुर लोरियां, प्रियतम के लिए विरह में तड़पने वाली नववधू की तड़पन, विधवा की कसक, कन्या का हास्य, झूले की बहार, पति पत्नी के मिलन विरह की कथा, उलाहने, पहेलियां आदि मानव जीवन से एकात्म हैं । उनके हृदय से निकल कर बाल विवाह, वृद्ध विवाह एवं अनमेल विवाह के सरलोद्-गार भी अपने विवेकपूर्ण परिणाम तक पहुंच गये हैं । इनकी रागात्मक व्यंजना सम्पूर्ण कलाओं में प्रकट होकर लोक प्रिय बन गयी है । अतः मैं दो छोटे कंत विषयक लोक गीत आपके सामने प्रस्तुत करता हूं । ये जन-जन में प्रचलित एवं अनुभूत्यात्मक अभिव्यंजना से ओत-प्रोत है और जगह जगह अलग अलग नामों से मुखरित होते हैं । पहिले एक दुलजी नाम का बाल-विवाह विषयक गीत लिख रहा हूं ।

इस बाल-विवाह की कुरीति के कारण लोक गीतों में पति को पत्नी द्वारा शिशु की तरह हुलराया - दुलराया जाता है । दुलजी गीत में बाल-विवाह प्रथा की खिल्ली एवं उपहास दर्शनीय है, ऐसे गीत जंवाई के लाड़-प्यार के लिए गाये जाने वाले गीतों में शुमार किये जाते हैं । बाकी शील और साहस के गीतों में भी ये गीत गिने जा सकते हैं ।

गीत दुलजी—

दुलजी छोटो सो, छोटो म्हारा स्यांणा रे छोटो सो
बड़लै रा पांन बड़ाबड़ बोल्या, दुलजी नै मंड्यो हिंडोळो रे, दुलजी छोटो सो
बड़लै रै डाळै झोटा लेवै, रेसम री तणियां रो हींडो मांड्यो रे

बाट वहंता राह बटाउड़ा , दुलजी नैं झोटौ देई रे
कांई लागै थांरै भाई भतीजौ , कांई थारै छोटोड़ौ देवर रे
ना म्हारै लागै भाई भतीजौ , ना म्हारै छोटोड़ौ देवर रे
म्हारै बाबल ओ वर हेरचौ , वेलण सूं वर छोटौ रे
सासूजी रौ जायौ नणद बाई रौ वीरौ , म्हां सुगणी रौ ढोलौ रे

आधी आधी रात पहर रौ तड़कौ , दुलजी मांगै दही रोटौ रे
सासूजी सूता बाईसा सूता , कठै सूं लावूं दही रोटौ रे
सासूजी म्हांरा सूता के जागौ , बेटौ थांरौ मांगै दही रोटौ रे
छींकै पड़ियौ दही रौ कुलड़ियौ , चूलै पड़चौ आधौ रोटौ रे

आधी आधी रात पहर रौ तड़कौ , कन्दोई हाट्यां खोली रे
म्हांनै लाडू म्हांरी बाईसा नै जळेवी , [म्हांरै] दुलजी नै घेवर छंटाई रे
आधी-आधी रात पहर रौ तड़कौ , सोनीड़ै हाट बखेरी रे
म्हांनै नाथ, बाईसा नै तिमणियौ , [म्हांरै] दुलजी नै डोरौ घड़लाई रे

आधी-आधी रात पहर रौ तड़कौ , म्हारै दरजीड़ै हाट वखेरी रे
म्हांनै अंगियां बाईसा नैं कांचळी , [म्हारै] दुलजी नैं चोळी सींव लाई रे
छोटौ छोटौ मत कोई कैंज्यौ , छोटकियौ गजब गुदारै रे
आधी आधी रात पहर रौ तड़कौ , मोढ़ीड़ै हाट वखेरी रे
म्हांनै चूंदड़ी बाईसा नै घाघरो , दुलजी नै पेचौ रंग लाई रे
छोटौ छोटौ मत कोई कैंज्यौ , छोटकियौ लूंगां रौ वोपारी रे

पति बच्चा है, दाम्पत्य जीवन की बातें वह क्या जाने ? परन्तु उसकी युवा स्त्री बड़ी मतवाली है। वह अपनी खिन्नता - प्रसन्नता को रोकने में असमर्थ होकर अपार हृदय - वेदना को उल्लास मुस्कराहट में परिवर्तित कर देती है । वह अपने छोटे पति के लिए छोटी गुडिया जैसी बहू भी ब्याह देने की किसी संबंधी से प्रार्थना करती है ––

आधी आधी रात पहर रौ तड़कौ , सगै व्याही हाट वखेरी रे
म्हांनै सोक म्हांरी बाईसा नै भाभी , दुलजी नै छोटी लाडी लाई रे
छोटौ छोटौ मत कोई कैंज्यौ , छोटकियौ दो - दो नारयां राखै रे

[इस गीत की प्रत्येक पंक्ति के बाद ‘ दुलजी छोटौ सौ ’ का पुनरावर्तन होता है ।]

इस गीत में नैराश्य विहीन हृदय को वेधकर विरह की मूक पुकार, अनोखी मखौलबाजी के साथ प्रतिध्वनित होती है । पति के छोटे होने से थोड़े दिनों के लिए अभाव होता है । वह अभाव मीठी आशा एवं अनुपम उम्मीद के सहारे पलता है । वह अल्प समयोपरांत नारी के मनोमालिन्य को अपने यौवन की प्रबल धारा में बहाकर प्रियतम में एकाकार कर देता है , अतः पति की लघु वय

का दारुण होते हुए भी मधुर है। क्योंकि उसमें प्रियतम के वयस्क होने का दीर्घ सुख अन्तर्हित हैं। अतः इन गीतों के मनोवैज्ञानिक तथ्य दृष्टव्य है। जिस प्रकार प्रातः काल की पंखुड़ियां आल - बाल में बिखर जाती हैं, उसी प्रकार छोटे कंत की नारी हास्य-परिहास में विलम कर पति की लघु वय के दारुण समय को गीत गाकर व्यतीत कर देती है। उसके जीवन प्रसंग के प्रत्येक अंग पर गीत बन जाता है। आगे आप छोटे बालम का ऐसा ही एक और गीत देखिये —

बालम छोटो सो—

बारा बरस रो बालमो, पच्चीसां ढळ गई नार, बालम छोटो सो
अस्सी कळचां रो घाघरो, वो लावण में लुक जाय

खातीड़ै रै जातां ढोलो हठ पड़ियो, म्हनै गाडुलो घड़ादे नार
गाडुलो घड़ावै थांरो बापजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार
छोटो छोटो तू-मत करे, अब राख मरद री कांण मोटो होय जासी

दरजीड़ै रै जातां ढोलो हठ पड़ियो, म्हनै टोपली सींवादे नार
टोपली सींवावै थारी माऊजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार
छोटो छोटो गोरी मत करे, तू राख मरद री कांण, आखर परण्योड़ो

बजारां नै जातां ढोलो हठ पड़ियो, म्हनै लाडुड़ा तुलादे घरनार
लाडू तुलावै थारो वीरोजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार
पांणीड़ै नै जातां ढोलो हठ पड़ियो, म्हनै गोदी चढ़ाले घरनार
गोदी लेवै थारा बापजी, म्हनै लाजां मती मारे भरतार

नणदल बूझै भावज नै, तूं कठै भजायो म्हारो वीर
म्हारो जोबन झिल रह्यो, थांरो वीरो डर लुक जाय, भोळी नणदोली
अन - धन री घर कमी नहीं, म्हारै दूझै भूरी भोट, मोटो हो जासी
नणदल घाटो म्हैं सैवूं, पण ओ दुख सह्यो न जाय, बालम छोटो सो

यौवन का सुख बाह्य साधनों में नहीं मिलता। वह तो अन्तः करण के उपकरणों से ही प्राप्त होता है। पर छोटे कंथ की स्त्री ऐसे आशा जन्य समय को हास्य - परिहास तथा गीत - गान द्वारा बड़ी सरसता से बिता देती है। वह बड़े ही धीरज के साथ कहती हैं—

म्हारी जोड़ी बणती सी बणसी
चुण चुण कंकरी मैल बणायो
बैठण री रुत आसी
चुग चुग कळियां सेज बिछाई
पौढ़ण री रुत आसी
म्हारी जोड़ी बणती सी बणसी

आखिर छोटे कंत की नारी जोड़ी बना ही लेती है मगर बूढ़े की स्त्री की

जोड़ी बनती नहीं ; दिनोदिन बिगड़ती जाती है ।

इस तरह के गीतों में जुवार मल, काळवों, मेघूड़ौ, ढोलौ, काळौ, आंगणै में गिडो खेलें, जोड़ो को नहीं स्यांम आदि गीत मिलते हैं। इन सब में अनमेल विवाह की हंसी समाज की कुरूपता तथा रूढ़िवादिता की भयंकरता के दिग्दर्शन होते हैं। 'वडी बहू वडा भाग, छोटी बनड़ौ वड़ौ सुहाग' की कहावत पर कुठाराघात है। ऐसे गीतों में से जुवार मल के गीत का कुछ अंश भी पढ़िये —

मैं मेरी मां के लाडली, जुवार मल नै परणाई – जुवार मल डावड़ौ
पीसत गोडै, पोवत गोडै, पाणीड़ै नै जातां जी जुवार मल आंगळी
हाथज कसियो, कांधै जेळी, सिर धर चाली जी जुवार मल को पालणू
आडौ सौ गैलौ हरियौ सौ पींपळ, जैं चढ़ घाल्यौ जी जुवार मल को पालणू

लोक साहित्य का आदर्श और ज्ञान, मानव व्यवहार में छाया की भांति साथ साथ चलता है। वह रिकार्ड बजने, रेडियो सुनने और सिनेमा देखने की तरह हमारे दिल दिमाग का सौख्य मात्र साधन नहीं, वरन जन-जन की मनोरंजित एवं जागृत व्याख्या है। जीवन के हर एक पहलू का परम प्रतिष्ठित गौरव है। समाज की ऊंची से ऊंची चोटी से लेकर नीची से नीची श्रेणी तक में इसकी शिक्षा का प्रसार है। वह केवल इने गिने प्रथायुक्त विषयों के पीछे ही नहीं रहता, वह तो लोक के शाश्वत, स्वस्थ एवं निश्छल अभिव्यजंनास्वरूप मानवीय तत्वों का ही प्रदर्शन करता है। उसका वास्तविक लक्ष्य जीवन के जटिल मार्ग का रसमय निर्देशन करना एवं भव्य भावों को सरल भाषा में उतारकर अपने पवित्र सामाजिक उद्देश्यों को पूरा करना है।

ये लोकगीत जन-जन के मुख से उद्भूत होकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी को सदुपदेश देते हैं। राजस्थान के जन जीवन की ये अभिव्यक्तियां उसकी सच्ची आत्मा है। राजस्थान और लोक वाङ्मय का संश्लिष्ट वर्णन इतिहास की अपूर्व शोभा है।

शोध-पत्रिका

सम्पादक : डॉ. देवीलाल पालीवाल

यह त्रैमासिक पत्रिका सन् १९४७ से निरन्तर साहित्यिक ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक क्षेत्र में अनुसंधान का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। अद्यावधि इस में अनेक महत्वपूर्ण शोध-निबंध, ताम्र-पत्र, प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ तथा अन्य प्रकार की मूल्यवान् शोध-सामग्री प्रकाशित हुई है।

एक प्रति : तीन रुपये
वार्षिक : दस रुपये

सम्पर्क :

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ,
[उदयपुर राजस्थान]

लोक साहित्य

सम्पादक : डॉ. रामप्रसाद दाधीच

लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन और शोध की हिन्दी में महत्वपूर्ण पत्रिका

वार्षिक शुल्क ८ रुपये
अध्यापकों एवं छात्रों के लिए ६ रुपये

सम्पर्क :

लोक साहित्य केन्द्र, सरदारपुरा
१ ए, जोधपुर [राजस्थान]

हिन्दी नवलेखन की सशक्त मासिकी

लहर

सम्पादक : प्रकाश जैन, मनमोहिनी

नियमित हिन्दी पाठकों के समक्ष कहानियों, कविताओं के अतिरिक्त समसामयिक घटनाओं–समस्याओं पर विचारयुक्त सामग्री प्रस्तुत करती रही है जिसके विशेषांक स्थायी महत्व के रहे हैं

एक प्रति : एक रुपया
वार्षिक : दस रुपया

सम्पर्क :

महात्मा गांधी मार्ग,
पो. बॉ. ८२, अजमेर

अभिनव विचारों का साहित्यिक मासिक

वातायन

साहित्यिक मासिक

प्रति माह
सृजन के सभी पक्ष आप पढ़ेंगे.
समसामयिक साहित्यिक समस्याओं पर
गंभीर चिन्तन प्रधान निबन्ध.
साहित्येत्तर समस्याओं पर लेख.
पुस्तकों की सम्यक समालोचना.
एवं अन्य स्थायी स्तम्भ.

एक प्रति : एक रुपया पचीस पैसे
वार्षिक : बारह रुपये

सम्पर्क :

५, डागा बिल्डिंग
बीकानेर [राजस्थान]

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

शोध , सन्दर्भ एवं दुर्लभ्य महत्वपूर्ण ग्रन्थों का
राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के अंतर्गत प्रकाशन

प्रकाशित ग्रंथों की सूची

संस्कृत - प्राकृत

प्रकाशन का नाम	सम्पादक	मूल्य : रुपये
दशकण्ठवधम्	श्री गंगाधर द्विवेदी	४-००
श्री भुवनेश्वरीमहास्तोत्र	श्री गोपालनारायण बहुरा	३-७५
रत्नपरीक्षादि सप्त ग्रन्थ - संग्रह	पद्मश्री मुनि जिनविजय , पुरातत्वाचार्य	६-२५
स्वयम्भूछंद	प्रो. एच. डी. वेलणकर	७-७५
वृत्तजातिसमुच्चय	,, ,, ,,	५-२५
कविदर्पण	,, ,, ,,	६-००
वृत्तमुक्तावली	स्व. प. श्री मथुरानाथ भट्ट	३-७५
कर्णामृतप्रपा	पद्मश्री मुनि जिनविजय , पुरातत्वाचार्य	२-२५
पदार्थरत्नमंजूषा	पद्मश्री मुनि जिनविजय , पुरातत्वाचार्य प्रस्तावना — श्रीदलसुख मालवणिया	३-७५
त्रिपुराभारती लघुस्तव	पद्मश्री मुनि जिनविजय , पुरातत्वाचार्य	३-२५
प्राकृतानन्द	,, ,, ,, ,,	४-२५
इंद्रप्रस्थ प्रबन्ध	डॉ. दशरथ शर्मा	२-२५
एकाक्षर नाम कोश संग्रह	पन्यासप्रवर मुनि रमणीकविजय	६-००
वासवदत्ता कथा	जे. एम. शुक्ल	४-५०
वृत्तमौक्तिक	म. विनयसागर	१८-२५
चांद्रव्याकरण	प. बेचरदास दोशी	७-००

पुस्तक विक्रेताओं को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है

[राजस्थान सरकार द्वारा प्रसारित]

सार्वजनिक संपर्क कार्यालय द्वारा प्रसारित — स. । विज्ञा. । डी । ६८ । ८ । ६६–८३ बी.



रूपायन संस्थान , बोरुन्दा


दिसम्बर १९६८
लोक संस्कृति

चित्र सज्जा	सानि गोस्वामी
मुद्रक	रूपायन प्रेस
प्रकाशक	रूपायन संस्थान, बोरुन्दा
	बरास्ता — पीपाड़ [जोधपुर]
मूल्य	एक प्रति १ रुपया
	वार्षिक १२ रुपया

लोक संस्कृति

वर्ष ८ दिसम्बर, १९६८ अंक ६

संपादक

कोमल कोठारी, विजयदान देथा

कथा, गीत, गाथा, कहावत, मुहावरा,
धर्म, देवी-देवता, त्योहार, नाट्य, चित्र,
मूर्ति आदि लोकात्मक कलाओं का मासिक पत्र

अनुक्रम



लोक - वाद्यों की प्रदर्शनी

केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी , दिल्ली ने नवम्बर [१९६८] माह में भारतीय संगीत के लोक-वाद्यों की प्रदर्शनी एवं उसके साथ एक सेमीनार का आयोजन किया। यह प्रथम अवसर था जब संपूर्ण देश के लोक-वाद्यों को एक साथ एकत्रित किया गया और इसी विषय पर विद्वानों ने विचारों का पारस्परिक आदान-प्रदान भी किया। प्रदर्शनी में लगभग ४०० वाद्य संकलित हो चुके थे और यह अनुमान था कि इतनी ही संख्या में वाद्य प्रदर्शनी तक पहुंच नहीं पाये। यह संख्या स्वयं अपनी महत्ता एवं विषय की गंभीरता को स्थापित करने में समर्थ है।

भारतीय संगीत का अध्ययन तब तक अधूरा एवं अपूर्ण ही रहेगा जब तक कि लोक-वाद्यों का समुचित अध्ययन एवं उनके सांगीतिक योगदान को आत्मसात नहीं कर लिया जायेगा। क्योंकि संगीत के ऐतिहासिक विकास की परम्परा को यदि किन्हीं प्रामाणिक तथ्यों से जोड़ा जा सकता है तो लोक-वाद्य निश्चय ही अपनी इतिवृत्तात्मक कथा कहने में समर्थ हैं। ये लोक-वाद्य जिस स्थिति , जिस आकार-प्रकार एवं जिस सांगीतिक आवश्यकता की तुष्टि करते हैं , उसी के बीच से उनका इतिहास भी मुखरित हो उठता है। इतिहास संबंधी गूढ़ पहेली को इन लोक-वाद्यों में खोजा जा सकता है, यह बात वस्तुतः संपूर्ण भारत के लोक-वाद्यों को देखने समझने से ही ज्ञात हो सकती है।

किन्तु , लोक-वाद्यों का महत्व केवल 'भूत काल' को समझने के लिए ही किया जा सकता है , यह बात भी अधूरी है। वस्तुतः लोक-वाद्यों की विविधता एवं उनकी विराट संख्या नव-संगीत की संयोजना में महत्वपूर्ण भूमिका भी अदा कर सकती है। वस्तुतः लोक-वाद्यों का सही मूल्यांकन और सामाजिक उपयोगिता का पक्ष भी तभी स्थापित हो सकेगा। इस दृष्टि से भी लोक-वाद्यों की क्षमता अपार है। प्रश्न यही है कि लोक जीवन में प्रचलित

लोक-वाद्यों को हम आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं में कौनसा स्थान प्रदान कर सकते हैं और उनको किस रूप में नवीन प्रयोगों का आधार बना सकते हैं ?

भारत के शास्त्रीय संगीत के अध्येताओं एवं संगीतज्ञों का ध्यान अभी लोक-वाद्यों पर नहीं गया है — वे शास्त्रीय संगीत की परंपरा और उनमें निर्मित घरानों के संघर्ष से ऊपर उठने को तत्पर नहीं दिखाई देते । संगीत के इतिहास की सामग्री में खोज करते हुए भी वे प्राचीन ग्रंथों एवं उनके साल-संवत् की प्रक्रिया में से नहीं निकल पाये हैं । यह प्रश्न तो उनके सामने कभी आया ही नहीं कि लोक-वाद्यों के मार्जन-परिमार्जन का प्रयत्न किया भी जाय या नहीं । यदि वैयक्तिक निष्ठा एवं योग्यता से कोई वाद्य शास्त्रीय संगीत वाद्यों में आ जाय तो उन्हें कष्ट नहीं है किन्तु इन लोक-वाद्यों को निकट से देखने–समझने की ललक बिल्कुल दिखाई नहीं देती ।

भारत के आधुनिक संगीत—वह चाहे शास्त्रीय हो, चाहे सुगम, चाहे लोक-संगीत अथवा चाहे लोकप्रिय फिल्म संगीत—की संपूर्णता सभी को मिलाकर ही निर्मित होती है और प्रत्येक संगीत आन्दोलन का सुप्रभाव–कुप्रभाव हमारी गतिशील सांगीतिक परंपरा पर पड़ता ही है। ऐसी अवस्था में लोक-वाद्यों की विपुल और अतुलनीय निधि दृष्टि से ओझल रहे, इसे स्वीकार करने में दर्द अनुभव होता है ।

केन्द्रीय अकादमी द्वारा आयोजित सेमीनार में ऐसे अनेक प्रश्न उठे, लेकिन उनका कोई व्यावहारिक और सहज उत्तर नहीं मिल पाया । उत्तर, वस्तुतः आसान भी नहीं है । पहिला कार्य तो यही है कि हम लोक वाद्यों की सांगीतिक उपलब्धि से गायकों, वादकों एवं संगीत सर्जकों को परिचय देने का प्रयत्न करें—तभी उनके सृजनात्मक चेतन मन को हम छू सकने में समर्थ होंगे । तब दूसरा प्रश्न सामने आयेगा कि आधुनिक संगीत रचना में कहां व किस प्रकार लोक-वाद्यों का उपयोग हो सकेगा । इस दृष्टि से सेमीनार की यह सिफारिश अत्यंत महत्वपूर्ण सिद्ध होगी कि लोक-वाद्यों के 'डिस्क रेकॉर्डिंग्स' तैयार कराये जांय । निश्चित रूप से यह रेकॉर्डिंग प्रामाणिक होना चाहिए । इनके साथ लोक-वाद्य के क्षेत्र, उनके बजाने वालों का परिचय एवं अन्य सभी सूचनाओं का होना भी अनिवार्य माना जाना चाहिये । इस कार्य में यदि हम सफलता प्राप्त कर सके तो भारतीय संगीत की संपूर्णता को स्थापित करने में बहुत बड़ा योगदान दे सकेंगे ।

सेमीनार की अन्य उपलब्धि इस अवसर पर श्री केशवसिंह कोठारी द्वारा लिखित लोक-वाद्यों संबंधी पुस्तक है । भारत में यह पहिला अवसर है जब प्रामाणिक रूप से संपूर्ण देश के वाद्यों का हवाला हमें प्राप्त हुआ है और अब अध्येता इस अध्ययन को पूर्णता की ओर ले जाने में अग्रसर हो सकेंगे ।

—संपादकीय



ठाकुर की तस्वीर

एक बनिये ने तीन मंजिल की हवेली बनवाई । घड़ाई का नाजुक और कीमती काम करवाया । झरोखों की कारीगरी देखते ही बनती थी । सेठ ने बड़ी उमंग से हवेली की प्रतिष्ठा करवाई । गांव के ठाकुर साहब को खास तौर पर आमंत्रित किया । उन पर न्योछावर करके रुपये पैसे गरीबों में बांटे । ठाकुर साहब को खुश करने के लिये हवेली के मुख्य द्वार पर उनके पिताजी की तस्वीर जड़ा कर लगाई ।

तस्वीर को दिखाते समय सेठ ने कहा — छोटे मुंह बड़ी बात तो नहीं करता पर तो भी मुझे कहना पड़ेगा कि ठाकुर साहब की तस्वीर से हवेली की शोभा दुगुनी हो गई । ऐसा सुन्दर चेहरा तो मेरी नजर में कहीं नहीं आया ।

ठाकुर साहब ने कहा — क्यों सेठजी , सच कहना, बड़े ठाकुर साहब की कठोर दृष्टि का तो जीवित सिंह से भी अधिक डर लगता है । क्यों ?

सेठ ने जवाब दिया — इसमें क्या झूठ ? ऐसे तेवर बनते देर लगती है । उनके नाम से हरिण लंगड़े हो जाते थे । आज दिन तक उनके नाम की धाक से बड़े बड़े चोरों और डाकुओं की काया कांपती है ।

ठाकुर साहब ने मूंछों पर हाथ फेरकर और गरदन हिलाकर कहा — हां , इसमें क्या मीनमेख ! कद्र जानने वाले ही उनकी कद्र करना जानते हैं । ठाकुर साहब के गुणों को आपसे ज्यादा कौन जानता हैं ! आप के ऊपर तो उनकी विशेष कृपा थी !

उस दिन की बात के बाद तीन साल बीत गये । एक दिन ठाकुर साहब खुद चल कर अपने आप सेठजी की हवेली पर आये । सेठ बहुत खुश हुए । बोले--आज यह सूरज किधर उग आया । गरीब की झोंपड़ी पर कैसे कृपा की ? कुछ आज्ञा हो तो फरमाइये !

ठाकुर साहब ने कहा-- यों ही मन में आ गई आप से मिलने की । कुछ हिसाब किताब भी करना था । ज्यादा दिन होने पर गोटाला हो जाता है ।

इसलिए मैं खुद ही चला आया। कोई दूसरा काम करने को था नहीं, सोचा आप से हिसाब ही नक्की करलें।

हिसाब किताब की बात सेठ के कुछ समझ में नहीं आई। आश्चर्य से पूछा — हुकुम, कैसा हिसाब किताब? मुझे तो कुछ पता नहीं!

ठाकुर साहब बात बदल कर बोले—ऐसी कोई खास बात नहीं। हिसाब तो बैठेंगे तब ही हो जायेगा। घर की ही बात है। कहिये, राजी खुशी तो रहे? कुछ डर भय तो नहीं। हवेली में इतने वर्षों से चोरी चकारी तो नहीं हुई?

सेठ ने कहा — ये बातें आपसे क्या छिपी हुई हैं? आपके प्रताप से सब ठीक है। आनन्द है।

ठाकुर साहब ने नम्रता से कहा — मेरा क्या प्रताप? प्रताप तो सारा बड़े ठाकुर साहब का है। फिर ठाकुर साहब निश्चिन्तता से गद्दे पर बैठे और समझा कर सेठ से बोले — इस हवेली की प्रतिष्ठा हुए आज तीन बरस बीत कर चौथा वर्ष लग रहा है। मैंने भी घर की बात समझ कर तगादा नहीं किया। यह मुख्य द्वार पर लगे हुए बड़े ठाकुर साहब का ही पुण्य प्रताप है कि आपकी हवेली में किसी प्रकार की चोरी-चकारी नहीं हुई। उस दिन आपने खुद मंजूर किया था कि ठाकुर साहब के नाम से बड़े बड़े डाकुओं को पसीना छूटता है। यदि आपके मुख्य द्वार पर ठाकुर साहब का चित्र नहीं होता तो आपकी लाखों रुपयों की सम्पत्ति पार हो जाती। ठाकुर साहब की तस्वीर के कारण ही चोरों और डाकुओं ने हवेली के सामने मुंह तक नहीं किया। आठ प्रहर बत्तीस घड़ी उन्होंने हवेली की रखवाली की। उस रखवाली के बदले तीन वर्षों के बीस हजार रुपये कोई बड़ी बात नहीं है। लाख रुपये देने पर भी ऐसी रखवाली कौन करता है। पर आप पर ठाकुर साहब की विशेष कृपा थी। बहुत वर्षों का हिसाब जुड़ गया तो आप पर ज्यादा बोझ पड़ जायेगा। तीन वर्षों के बीस हजार रुपये चुका दें तो आज दिन तक का खाता साफ हो जायेगा।

सारी बात सुनकर सेठ के तो होश गुम हो गये। पर ठाकुर साहब के सामने वश भी क्या चलता! जबरदस्ती मुस्कराने की कोशिश करते हुए कहने लगे — मैंने तो ठाकुर साहब की शान रखने के लिये उनका चित्र लगाया था और आप अपने हाथों से मुझ पर बोझ धरते हैं तो मुझे उठाना ही पड़ेगा। आपके सामने हमारा क्या जोर है?

ठाकुर साहब क्रोध प्रकट करते हुए बोले — सेठजी यह तो तुम्हारी पूरी अहसान फरामोशी है। ठाकुर साहब की धाक से आपकी हवेली में चोरी डाका

नहीं हुआ, उसका यह यश दे रहे हो ?

सेठ विचारा क्या करता ! समझ गया कि ठाकुर साहब रुपये तो किसी भाव छोड़ेंगे नहीं। फिर हील-हुज्जत करना वृथा है। हवेली में जाकर बीस हजार रुपये लाया। तस्वीर के ऊपर रखकर ठाकुर साहब के नजर कर दिये। मन में बहुत पछताया कि ठाकुर की तो तस्वीर ही बुरी। उनकी तो छाया स्पर्श करने से भी पाप लगता है। क्यों तो तस्वीर लगाता और क्यों बीस हजार रुपये की लाग भरता ! खैर, इतने में ही पिण्ड छूटा।



स्वभाव की मजबूरी

एक चोर के सारे परिवार वाले मर चुके तो उसे संसार से वैराग्य हो गया। उसने एक साधु महात्माजी के पैरों पड़कर निवेदन किया—बाबा, मेरा यह जन्म तो बिगड़ा सो बिगड़ा ही; पर अब अगला जन्म न बिगड़े, इसलिए आपकी शरण आया हूं। सारी उम्र चोरियां करते बीती, अब शेष दिनों में राम का नाम लेना चाहता हूं। पर गुरु बिना वह भी लिया नहीं जाता। मुझ पापी पर दया करके आप मुझे उबारिये।

महात्मा ने उसे अपना चेला मूंड लिया। महात्माजी के भी बहुत बड़ा कारोबार था। रामदुवारे में गायों-भैंस्यों का पूरा थाट था। घी, दूध के भंडार भरे थे। रामदुवारे में कई घड़े, चरे, लोटे, ग्लासें, तगारिएं, कटो-रियां, प्याले, कई औजार, कई ठाम-ठीकरे और कई बरतन-बासन थे। भगवान की कृपा से गृहस्थी के सारे ठाट-बाट इस रामदुवारे में थे। चोर के तो मौज बनी पर बनी। सैकड़ों चोरियां करके भी उसने इतना आराम नहीं पाया। फिर चोरी करने में क्या सार ? पर तो भी रामदुवारे में इधर उधर हेरा-फेरी किये बिना उसको सन्तोष नहीं होता था। कई वर्षों की पुरानी लत थी। इतनी

आसानी से कैसे छूटती ? वह अपनी पुरानी आदत का पोषण करने के लिये रामदुवारे के सारे बर्तनों की इधर उधर हेरा फेरी करता रहता । दूसरे चेले जगह के अनुसार सारी चीजें बड़ी सुथराई से जमा कर रखते और वह जमाई हुई चीजों को इधर उधर कर देता । सारे चेले उसकी इस हेरा-फेरी से तंग आ गये। उन्होंने महंतजी से शिकायत की तो महंतजी ने उसे बुला कर समझाया—बेटा, सारी मुर्तियां [महंत-गण] तेरी बहुत शिकायत करती हैं । तू बिना कारण, चलते ही उनकी जमाई हुई चीजों को स्थान क्यों छुड़ा देता है ? रामदुवारे की सारी मूर्तियां [महंत-गण] तेरी इस हेरा फेरी से बहुत नाराज हैं ।

चोर ने महात्मा जी के पैरों में सिर नवा कर कहा— बाबाजी , आप ही न्याय कीजिये कि चोर चोरी से गया , वह तो ठीक , पर हेरा - फेरी से भी गया ? पुरानी लत हैं । चोरी तो छूट गई पर हेरा फेरी की आदत नहीं छूटती !



नादान की दोस्ती

एक सुनार अपने गांव से कहीं दूर जा रहा था । उसके पास काफी जोखिम थी । मार्ग में एक चमार का साथ हो गया । चमार हट्टा कट्टा जवान था । हाथ में लाठी भी थी । सुनार मन में खुश हुआ कि चलो चमार का साथ अच्छा हुआ । एक से दो हमेशा अच्छे । बातें करते रास्ता भी कट जायेगा और भगवान न करे , कोई ऐसा मौका भी आ जाय तो चमार मदद करेगा । इसलिए सुनार , चमार से मीठी मीठी बातें करने लगा । उसे चिलम भी पिलाई । रास्ते में दोपहरी का भोजन भी कराया । उसे विश्वास दिलाया कि कभी फुर्सत हुई तो उसके रामसा-पीर की शुद्ध चांदी की मूर्ति भी बना देगा ।

चमार भी सुनार द्वारा ऐसा विश्वास मिल जाने से बहुत खुश हुआ । कहा —- मैं किस योग्य हूं , फिर भी कभी काम पड़े तो याद करना । जैसा भी

हूं आपकी सेवा में हाजिर हूं ।

दोनों बातें करते हुए जा रहे थे कि राह में संयोग से ऊंटों पर चढ़े डाकू आते दिखाई दिये । सुनार को घबराहट हुई । उसने चमार से कहा––मेरे खयाल से वे सामने डाकू ही आ रहे हैं । तेरे पास तो कोई जोखिम हैं नहीं इसलिए तू मार्ग पर चलता रह । दोनों के छिपने से तो काम बिगड़ जायेगा । मैं इधर उधर जाकर इन झाड़ियों में छिप जाता हूं । उनके दूर जाने पर मैं तुझे अपने आप पकड़ लूंगा । देख, कैसी होशियारी से सारा काम पटाता है ?

यह कह कर सुनार तो मार्ग से टल कर घनी झाड़ियों में छिप गया । चमार रास्ते रास्ते चलता रहा । डाकू तो उसी समय आ पहुंचे । पास आते ही चमार को धमका कर पूछा –– कौन है रे ?

उसने डरते हुए कहा –– यह तो हुकुम मैं आप ही का चमार हूं । डाकुओं ने कहा –– चमार है तो क्या हुआ । शकुन तो पालने ही पड़ेंगे । तेरे पास जो भी जोखम हो हमें सौंप दे । नहीं तो हड्डियां तोड़ देंगे ।

चमार ने हाथ जोड़ कर कहा –– अन्नदाता, मेरे पास कैसी जोखिम ? एक छदाम ही पास में हो तो रामसापीर की सौगन्ध !

एक डाकू ने क्रोध में आकर कहा –– यों सच नहीं बोलेगा । इसके सिर पर चार पांच जूते मारो तब बतायेगा ।

चमार के फेंटे के पल्ले में एक कलदार रुपया बंधा हुआ था । सिर में मारने की बात सुनकर उसने फेंटे पर दोनों हाथ रख दिये । बोला––अन्नदाता, सिर में मत मारना, रुपये की कोर चुभ जायेगी ।

बिचारे ने अपने आप कांपते हाथों से रुपया खोलकर उन्हें पकड़ा दिया । फिर बोला –– खोटा खरा हो तो सुनार के पास परखा लेना । फिर मैं जिम्मेदार नहीं हूं । आप बेकार मेरे पर नाराज होंगे ।

यह कह कर उसने झाड़ियों में छिपे सुनार की तरफ इशारा कर दिया । फिर डाकुओं के क्या देर ? सभी कुछ छीन लिया । धोती के सिवाय पहिनने के कपड़े भी उतरवा लिये । वक्त पर नादान दोस्त कैसा काम आया ?

मैं पड़ी चूल्हे में

एक था जाट। सीधा और सयाना। अपनी बहू का बहुत ही ध्यान रखता। उसके सारे नाज-नखरे उठाता। जाटनी थी बेहद चंट और चतुर। अपने पति का दिखावटी मान रखती। रोटी खाते समय जाट देखता कि रोटियां बिल्कुल कम हैं तो वह संकोच के मारे बीच में ही उठ जाता। कहता — मैं सारी रोटियां खा गया तो तू क्या खायेगी! दूसरी बार चूल्हा जलाना पड़ेगा। मेरा तो अब पेट भर गया।

जाटनी कहती——मैं पड़ी चूल्हे में। मेरी चिन्ता आप क्यों करते हो? एक वक्त नहीं खाऊंगी तो मर थोड़े ही जाऊंगी। मुझे तो भूखे रहने की आदत है।

कभी साग-भाजी कम दिखती तो जाट कहता—बस, अब मैं नहीं लूंगा। लगावन कम है। फिर तू क्या खायेगी।

जाटनी तो एक ही बात दोहराती—मैं पड़ी चूल्हे में।

जाट कई बार देखता कि कभी तो एकदम रोटियां ही नहीं बचती और कभी तरकारी कम पड़ जाती। जाटनी भी दुबारा चूल्हा जलाती नहीं, भूखी ही रह जाती। जाट जिद्द करता तो कह देती——कौन धुंवा-फूंका करेगा। मैं पड़ी चूल्हे में। सौ बार कह दिया कि मेरी फिक्र मत किया करो। चार दिन नहीं खाऊं तो भी मरूंगी नहीं!

जाट समझता कि बिचारी कितनी सीधी है। औरत मिले तो ऐसी मिले।

एक दिन ऐसा संयोग हुआ कि चिलम की कंकरी लुढ़कती हुई चूल्हे के नीचे चली गई। जाट चूल्हे के नीचे कंकरी टटोल रहा था कि हाथ के एक बर्तन की रगड़ लगी। बाहर निकाला तो क्या देखता है कि एक बड़े कटोरे में सोगरे का बढ़िया चूरमा भरा पड़ा है—झरझरता।

जाटनी बाड़े में गायों-भैंसों को चारा डालने गई हुई थी। जाट ने तो बस, आव देखा न ताव, डच डच सारा चूरमा डकार लिया। गाय का घी और मालवी गुड़ का चूरमा। स्वाद तो पूछो मत! जाट से तो चूरमा बड़ी

मुश्किल से पूरा खाया गया। खाने के बाद उसने कटोरा वापिस चूल्हे के नीचे खिसका दिया। मन में समझ गया कि जाटनी तो इस तरह चूल्हे में पड़ती है। इतने दिन समझता था कि इतनी भूखी रह कर यह कैसे दिनोदिन मोटी होती जा रही है; आज पता चला।

अपने काम से निपट कर जाटनी घर में आई तो बोली — लो, रोटी खालो। आज बहुत देर हो गई।

जाट बोला—आज तो रोटियां एकदम थोड़ी दिखाई देती हैं। पहिले तू खाले, पीछे बच गई तो मैं भी खा लूंगा।। आज ज्यादा भूख नहीं है।

जाटनी ने हमेशा की तरह जवाब दिया—आपको सौ बार समझा दिया, मेरी चिन्ता क्यों करते हैं? मैं पड़ी चूल्हे में।

जाट हस कर बोला—आज तो तेरे हिस्से का मैं चूल्हे में पड़ गया। चूल्हे में पड़ने का आनन्द ही अलग है। आज ठीक से खबर पड़ी। खाना हो तो ये सोगरे खा लेना। चूल्हे में पड़ने के भरोसे भूखी मरेगी।

जाटनी तो सुनते ही शर्मिन्दा हो गई। नीची नजर किये चुपचाप खड़ी रही। फिर जाट ने कहा— ठहर, आज मैं तुझे ठीक तरह चूल्हे में पटकता हूं। यह कह कर उसने जाटनी को खूब पीटा। कहा—अगर फिर कभी चूल्हे में पड़ी तो मैं सचमुच तुझे कुए में गिरा दूंगा। बहुत दिन हुए तुझे घर बरबाद करते। बोल फिर पड़ेगी चूल्हे में?

सिसकती हुई जाटनी धीरे से बोली—नहीं, कभी नहीं बराबर पड़ूंगी।



बड़े लोगों की छोटी बात

एक चारण था। कतारें ढोता था। काफिलों के साथ चलने वाले कतारियों की तरह ही फटे हुए कपड़े और फटे जूते पहने रखता। गलीच की तरह रहता। जैसा धंधा वैसा वेष ! दीवड़ी में पानी रखता और लम्बी थैली में आटा।

एक बार काफिला लेकर जा रहा था कि रास्ते में एक ठाकुर की झोंपड़ी आई। उसने वहीं काफिला रोक दिया। दिन काफी चढ़ गया था। उसे बहुत जोर की भूख लगी थी। उसने अपने आटे का भातड़ा ठाकुर की बेटी के पास रोटियां बनाने के लिये अन्दर भिजवा दिया। ठाकुर की हालत भी खस्ता ही थी। किसी तरह दिन निकाल रहा था। उसने अपनी बेटी को थोड़ा सा इशारा किया तो उसने उसमें से कुछ आटा निकाल लिया। सोचा गंवार कतारिये को क्या पता चलेगा ! और अगर पता चल भी गया तो मारे डर के मुझे कुछ नहीं कह सकेगा।

लड़की ने चार पतली पतली रोटियां बनाई और कतारिये का भातड़ा वापिस ठाकुर के हाथों पहुंचा दिया। धंधे से काफिला ढोने वाला हुआ तो क्या, जाति का तो चारण था ! देखते ही समझ गया कि लड़की ने भातड़े में से काफी आटा निकाल लिया है। संकोच करने वाला वह भी नहीं था। पर बात चलाये तो कैसे ? कविता की पंक्तियों में इशारे से बात समझा दे तो ठीक रहे।

उसने भातड़ा हाथ में लेकर ठाकुर को सुनाते हुए कहा—

थैली तू क्यूं अनमनी, ढीला तेरा गात।
या कुत्तों ने नोंचली, या बाई डाला हाथ ?

कतारिये की बात सुनकर ठाकुर का माथा ठनका। पूछा — तेरी जात क्या है !

कतारिये ने कहा — मैं चारण हूं।

ठाकुर ने सोचा कि मामूली आटे के लिये यह सभी जगह बदनाम करता

काबा की कद्र



ल.ाट अपने पिताजी का अस्थिविसर्जन करने गंगाजी गया। पूरा रुंड मुंड ऽ, गंगाजी की कठियां गले में लटकाये वह हरद्वार से वापिस लौटा तो र जंची कि लगते किराये एक दिन रुक कर दिल्ली भी देखलूं। अब तो ा कभी इस तरफ आयेंगे तो मेरे फूल ही आयेंगे ; खुद के आने का अवसर ान में कभी आने का नहीं। बिचारा बड़ी उमंग से हरद्वार से वापिस लौटते ानमरी दिल्ली में उतर गया।

दिल्ली नगरी के क्या कहने। अगणित ऊंचे महल, पक्की सड़कें और ा बाग बगीचे ! जमुना के किनारे बसी हुई यह नगरी तो स्वर्ग को भी पीछे ती है।

चौधरी शहर देखकर मस्त हो रहा था कि चार लफंगे उसके पीछे पड़ । बिचारा दिखने में गंवार जैसा तो था ही। पहली बार दिल्ली के ठगों के ल में आया था। वह तो अपनी तरह हर सफेद चीज को दूध समझता था। ष्य जाति पर विश्वास करता। पर लफंगे तो ऐसे भोले कबूतर की ही टोह रहते हैं। वे उसके पीछे पीछे कई अटकलें सोचते बहुत दूर तक पीछा ते रहे।

बहुत देर भटकते भटकते चौधरी को पेशाब की शंका हुई। एकान्त देख - वह एक जगह बैठ गया। बस, ठगों को बहाना मिल गया। तुरन्त उसको ाने की योजना तैयार करली।

पेशाब करके जब चौधरी खड़ा हुआ तो उन्होंने उसे घेर लिया। बोले — फिर, तू काबे की तरफ मुंह करके पेशाब करने बैठ गया ! तेरी मौत तो ं आई है ? चल, कोतवाल के पास। दस साल जेल में पड़ा सड़ेगा। इतना ा हुआ, तुझे इतना भी शऊर नहीं ?

चौधरी ने कहा—मैं गांव का साधारण अनजान आदमी हूं। मुझे काबा- बा का कुछ पता नहीं। अनजान में गलती हो गई तो माफी मांगता हूं। कुछ

पराई भाषा का मोह

एक मुसलमान धर्म का बेहद कट्टर था । देशी भाषा उसे बड़ी अटपटी लगती थी पर पढ़ाई करने योग्य घर की स्थिति नहीं थी । आखिर बिल्ली के भाग का छींका टूटा । पास के रिश्ते के एक निस्सन्तान मुसलमान ने उसे गोद ले लिया । हजारों रुपयों की अनसोची धनराशि हाथ लग गई । उसने थोड़े दिन तो बड़ी मुश्किल से सब्र किया, पर फिर खुद मुख्तियार होने पर वह फारसी पढ़ने के लिए फारस चला गया । हरदम फारसी में बात करने के लिए वह बहुत बेचैन रहता था । घरवालों ने बहुत रोका तो भी वह किसी की माना नहीं ।

पूरे तीन वर्षों तक वह पूरी लगन से फारस देश में फारसी पढ़ा । अब जाकर उसके मन की साध पूरी हुई । फारसी के वाद बड़ी उमंग से वापिस अपने देश लौटा । कोई समझे या न समझे इसकी पर्वाह किये बिना वह तो शुद्ध फारसी में अपना रोब झाड़ने लगा । देशी बोली में बोलना वह अपनी शान के खिलाफ समझता ।

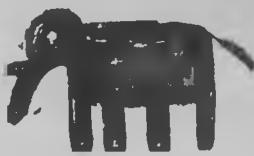
एक बार वह बहुत बीमार पड़ा । तो भी वह फारसी झाड़ता रहा । उसे प्यास लगी तो पानी मांगने के लिए आब आब पुकारने लगा । किसी के कुछ समझ में नहीं आई । और उसमें इतनी भी शक्ति नहीं बची थी कि वह खुद उठकर अपने हाथ से पानी पी सके । पानी के बिना कंठ सूख गये तो भी वह आब आब की रट लगाये रहा । बिना समझे कौन पानी पिलाता ! पानी की मटकी बिलकुल सिरहाने ही पड़ी थी । घर वाले सारे आस पास बैठे थे । वह तो सिर्फ आब आब बोलता गया । मर जाना मंजूर पर घर की बोली बोल कर जबान गंदी नहीं करनी ! अन्त में वह आब आब करता हुआ पानी के होते हुए भी प्यास से मरकर परलोक सिधार गया ।

फारस गया , फारसी पढ़कर बोले अटपट बानी ।
आब आब कर मर गया , पड़ा सिरहाने पानी ।।

एक लड़का पास ही खड़ा था। उसने पूछा——क्यों बापू, आज तो सेठजी बहुत खुश दिखाई देते हैं।

जाट बोला — आज खुश नहीं होंगे तो फिर कब होंगे। पूरे सौ रुपयों का खाता पूरा किया है। अब तुम्हारा मुंह मीठा न करावें तो सेठ की मरजी।

अपने पांव कुल्हाड़ी



पालड़ी गांव पहले खोजियों के पट्टे था। पालड़ी की जमीन, प्याज की पैदावार के लिये बेहद मुफीद थी। सैकड़ों मन प्याज पैदा होते। पांच पांच सेर के प्याज। एक बार खोजी जी ने एक प्याज का तोल किया तो वह सवा मन भारी निकला। खोजी जी ने सोचा कि यह प्याज राजाजी के भेंट करें तो वे बहुत खुश होंगे। कुछ न कुछ नया इनाम मिलेगा।

सो खोजी जी ने बड़े चाव से वह सवा मन का प्याज राजाजी के नजर कर दिया। हाथ जोड़ कहने लगे — हुकुम, जमीन की करामात तो देखिये। सारी दुनिया में इसकी मिसाल नहीं मिल सकती, यह पालड़ी गांव की विशेषता है।

राजा जी सवा मन का प्याज देखकर बहुत खुश हुए। किन्तु राजा जी की खुशी खोजी जी के लिये बहुत महंगी पड़ी। उस दिन से ही पालड़ी गांव जब्त होकर खालसे हो गया। पालड़ी में ऐसे प्याज पैदा होते हैं! वे तो राजा की रसोई के लिए ही मुफीद है। राजा के होते हुए ऐसे प्याज का कौन भोग कर सकता है! दूसरा गांव मिले विना ही प्याज के कारण खोजी जी ने पालड़ी गांव खो दिया। क्यों तो वे सवा मन का प्याज भेंट करते और क्यों पालड़ी की जागीर छिनती!

हाथ बिगाड़ा काम फिर, किसको देना दोष।
खोजी जी की पालड़ी, प्याज ने लीनी खोस।।

फिरेगा। उसका भातड़ा वापिस लेकर बोला — मैं तो जल्दी जल्दी में भूल ही गया। परात में पड़ा आटा तो वापिस इसमें डाला ही नहीं ! आजकल याद दाश्त भी काफी कमजोर हो गई है।

फिर घर में जाकर चारण का भातड़ा पूरा भरकर लाया और बोला— गलती के लिये माफी मांगता हूं। महरबानी करके अब बदनामी मत करना।

अनोखा हिसाब

एक बनिया एक जाट में सौ रुपये मांगता था। जाट व्यवहार का कमजोर था। अपने वश चलते वह बनिये के पैसे नहीं चुकाता। कोई न कोई बहाना बना लेता। एक बार बनिये ने बहुत तगादा किया तो जाट ने कहा — सेठ, आज तो वही खाता ले ही आइये। सारा हिसाब साफ कर दूं। तुमको भी घड़ी घड़ी चक्कर लगाते बहुत दिन हो गये।

सेठ राजी राजी बही ले आये। सोचा, आज तो चौधरी को भगवान ने सुमति दे दी। जाट सेठ के बिल्कुल अड़कर खड़ा हुआ और बोला—क्यों सेठ, मेरे खाते में सौ रुपये बोलते हैं न ? आज पाई पाई नक्की कर दूंगा। देखो, ठीक तरह खाता बन्द करना। उसने अगुंलियों पर हिसाब करके कहा —

सौ के भाई साठ
आधे गये भाग।
दस दूंगा, दस दिलाऊंगा
और दस का क्या लेना देना।

फिर जाट हंसता हुआ कहने लगा — बोलो, खाता पूरा हुआ कि नहीं लो, अब बच्चों का मुंह मीठा कराओ। बहुत दिनों बाद रुपये वसूल हुए हैं

जाट की बात पर बनिये को भी जबरदस्ती हंसी आ गई। जाट क

दंड भरना हो तो चवन्नी अठन्नी यहीं ले लीजिये। कोतवाल के पास क्यों घसीटते हैं! कैसे ही मेरी जान छुड़ाइये, आपको आशिष् दूंगा।

ठगों ने कहा — बदमाश! तू हमारे काबा की कीमत चार आठ आने करता है! इतना जुल्म! तुझे तो कोतवाली में ले जाना ही पड़ेगा। तूने जान-बूझ कर काबा की तरफ पेशाब किया है!

जाट ने हाथ जोड़ कर कहा—इसमें मुझे क्या मिलता? आप हुकुम दें तो यह सारी जगह मेरे हाथों से साफ कर दूं?

पर ठग किसकी मानने लगे! सब उसके पीछे पड़े सो रोते हुए उस जाट की पाई पाई छीन ली। सिर्फ पहिनने की धोती पीछे छोड़ी। जाट ने सोचा कि इतने में ही पिण्ड छूटा। दस वर्षों की जेल तो नहीं भोगनी पड़ी। पर तो भी काबा का डर उसके मन में पूरी तरह बैठ गया था। कहीं दुबारा ऐसी गलती हो गई तो कैसे पिण्ड छुड़ायेगा। इसलिए उसने ठगों से पूछा: अब तो मुझे महरबानी करके यह बता दीजिये कि यह काबा किधर है? फिर कभी शंका हो तो किस तरफ मुंह करके पेशाब किया करूं?

ठग बोले—अब हमारी बला से तू काबा के ऊपर भी पेशाब करदे तो हमें क्या उज्र है!

धान का बोरा

एक रामद्वारे का महन्त था। एक नम्बर शैतान! शरीर में जितने रोग होते हैं उतने उसमें अवगुण! चोर कहो तो वह, ठग वह, झूठा वह! शराब वह पीता, अफीम वह खाता, गांजा, सुल्फा और भांग वह घोटता। ऐयाश अव्वल दर्जे का।

एक बार एक बुढ़िया महन्तजी के पास आई और आठ आठ आंसू रोने लगी। महन्तजी ने पूछा — राम मारी, रोती क्यों है? रोना हो तो रामद्वारे

में नहीं आना।

बुढ़िया ने कहा— महंतजी, क्या करूं। मेरे बुढ़ापे की लाठी छिन गई। एकाएक बेटा था वह भी चल बसा। बहुत मजबूती रखती हूं तो भी रोना आ जाता है।

महन्तजी जरा ऊंचा सुनते थे। जोर से बोल कर पूछा — कौन चल बसा?

बुढ़िया सिसकियां भरती बोली — मेरा बेटा!

'क्या उमर थी?'

'जवान पट्ठा था। अगले बरस एक कम चालीस बरस का हो जाता।

महन्तजी ने फिर पूछा — वह शराब पीता था?

'नहीं महराज!'

'वह अफीम खाता था?'

'नहीं महराज!'

'वह भांग पीता था?'

'नहीं महाराज, किसी नशे पते के तो वह नजदीक भी नहीं जाता था।'

'वह सुल्फा, गांजा, चरस चढ़ाता था?'

'राम बचावे महाराज! ऐसे कुलच्छन तों उससे कोसों दूर थे।'

'उसने कभी चोरी की?'

'राम राम। भगवान बचाये। पराई चीज तो मिट्टी के समान समझता था।'

'कभी रंडीबाजी तो की होगी?'

'यह आप क्या फरमाते हैं? उसके जैसे सज्जन बेटे तो बिरला ही पैदा होते हैं। अपने से बड़ी को मां और छोटी को बहन समझता था।'

महन्तजी ने नाराज होते हुए पूछा — तो झूठ बोला होगा, लड़ाई टंटा किया होगा?

बुढ़िया ने टिच्-टिच् करते हुए कहा— राम बचाये। वह तो ऐसा डरता था जैसे कौआ तीर से डरता है। किसी को गुड़ की गाली भी नहीं दी।

अब महन्तजी का धीरज टूट गया। फिर एक बार जोर से पूछा — कभी किसी आदमी की हत्या की कि नहीं?

बुढ़िया ने कहा — राम राम! आप भी क्या फरमाते हैं? वह तो मार्ग चलती चींटियां भी बचा कर चलता था। किसी बच्चे पर भी हाथ नहीं उठाया।

तब महन्तजी ने बुढ़िया को फटकारते हुए कहा — तो राममारी, फिर

रोती क्यों है ? वह मनुष्य थोड़े ही था, धान का बोरा था जो मर कर खत्म हुआ। जीया तब तक फालतू ही धरती पर बोझ रहा। धान को धूल किया। उस बोरे के लिये क्यों रो रो कर अपनी आंखें खराब करती है ?

नट विद्या बनाम जट विद्या

नटों के निराले खेलों का क्या कहना ! कानों से सुनने से नहीं आंखों से देखने पर ही विश्वास होता है। केवल अपने लचकीले शरीर के सहारे कैसे कैसे अनहोने करतब दिखाते हैं ! कैसे शरीर मरोड़ते हैं ! कैसे ऊंचे कूद जाते हैं। पगड़ी पर दौड़ लगाते हैं, कैसे कैसे तलवारों के हाथ दिखाते हैं ! बंधी हुई रस्सी पर कैसी निश्चिन्तता से चलते हैं ! हवा में उछालें खा लेते हैं, जीभ पर हल थाम लेते हैं और केशों की लटों में दस मन का बोझ लटका लेते हैं। सारी विद्याओं से यह विद्या कठिन !

एक नटनी अपने नाजुक खेल-करतब के लिए चारों ओर प्रसिद्ध थी। राजदरबारों के सिवाय कहीं अपने खेल नहीं करती। राव उमराव, राजा और महाराजा भी उसके खेल देखने के लिए तरसते। जैसे किसान वर्षा की राह देखता है वैसे ही राजा लोग उस नटनी के खेलों की राह देखते।

एक बार उदपुयर में उस नटनी के खेल का आयोजन हुआ। महाराणा कई वर्षों से उसका कौशल देखने के लिए उत्सुक थे। नटनी के आने का समाचार सुना तो बहुत खुश हुए। नटनी से कहा कि ऐसा खेल दिखा कि आज से पहले किसी राजा ने कभी नहीं देखा हो। उदयपुर सारे राज्यों में श्रेष्ठ, तो वहां का खेल भी श्रेष्ठ होना ही चाहिये और आज के बाद कोई राजा उस खेल को देख नहीं सके, ऐसा नाजुक कोई करतब बता।

नटनी ने कहा—बड़ो हुकुम, नटों के तो पैर बाजे पर उठते हैं ! मैं तो

ऐसे ऐसे अद्भुत करतब जानती हूं, पर देखने वाले की शक्ति होनी चाहिये। आप देखना चाहें तो आर पार खिंची हुई रस्सी पर पिछोले की झील पार करके दिखा दूं।

महाराणा को विश्वास नहीं हुआ। अचंभे से वापिस पूछा — क्या पिछोला ?

नटनी ने कहा—हां, पिछोला। आपको दिखता है यह पिछोला ! एक बार नहीं चार बार पार करके दिखा दूं।

महाराणा ने सोचा कि यह तो अनहोनी बात है। उन्होंने कहा—यदि तू आर पार बंधी रस्सी पर एक बार ही पिछोला पार करदे तो मैं मेवाड़ का आधा राज्य तेरे नाम कर दूंगा। और यदि तू पार नहीं कर सकी तो मेरा राज्य छोड़ कर दूसरे किसी राज्य में कभी खेल नहीं दिखा सकेगी !

नटनी ने कहा—अभी तो दाव लगाना सरल है, पर फिर आधा राज्य देते उबकाई आयेगी। ठीक तरह सोच विचार कर वचनों में बंधना।

महाराणा ने कहा—ऐसी बातों पर मेवाड़ के राणा ज्यादा सोच विचार नहीं करते। तू यह खेल झटपट दिखा।

तो देखते देखते पिछोला के इस तीर से उस तीर तक ऊंचे ऊंचे खम्भे रोप कर पतली रस्सी बांध दी गई। अगणित लोग नटनी का खेल देखने के लिए उमड़ पड़े।

नटनी खेल करने के लिए तैयार हुई तो उसे खयाल आया कि पिछोला पार करते उसे दो तीन घड़ी लग जायेगी। उसके आंचल में दूध आया हुआ था। पीछे से बच्चा भूखे मरेगा यह सोच कर उसने उसे आंचल चुंघाया। बेटे को ठीक तरह सुलाकर वह खेल करने के लिए रस्सी पर चढ़ी। असंख्य नजरें नटनी के पैरों पर टिक गईं। यह क्या ? नटनी तो जैसे जमीन पर चलती है वैसे ही रस्सी पर चलने लगी ! देखने वालों के सांस ऊपर चढ़ गये। पत्थर की मूर्तियां की तरह लोग सांस रोके चुपचाप नटनी का कौशल देखने लगे। नटनी के पैरों पैरों लोगों की नजरें फिसलने लगीं।

महाराणा का कलेजा ऊंचा चढ़ गया। पास बैठे सरदारों ने कहा—अन्नदाता, हजारों सिर दिये, उन लोगों को मेवाड़ का आधा हिस्सा नहीं मिला और इस नाकुछ नटनी के खेल पर आपने आधा राज्य देना मंजूर कर लिया ; यह तो जुल्म है हुजूर।

महाराणा ने देखा कि नटनी तो आधे रास्ते पहुंचने वाली है। उनकी तो

आंखों के आगे अंधेरा छा गया। नटनी तो निश्चय ही पिछोला पार कर जायेगी। और पार करने पर आधा राज्य देना पड़ेगा। मना करूं तो करूं कैसे ? मेवाड़ की आन पर पानी फिर जायेगा।

पिछोले का पानी हिलोरें मार रहा था। महाराणा का कलेजा भी जैसे पानी में डूबने - उतराने लगा। नटनी तो ठेट पिछोले के बीच में आ गई। सरदारों ने फिर कहा--अन्नदाता, गजब हो रहा है। मेवाड़ के भाग्य कि उसे अब नट भोगेंगे ?

पानी में डूबने के समान महाराणा गुचलकी खाते धीमे से बोले—पर अब करें क्या ? मैं तो वचन बद्ध हूं।

पास ही एक जाट खड़ा था। बोला-- अन्नदाता, गुनाह माफ हो तो मैं उपाय कर सकता हूं।

सरदार लोग जल्दी करते हुए बोले -- लड़ाई में सिर देने हों तो अभी दे दें। पर इस समय हमारी तो अकल काम नहीं करती। तेरे समझ में बैठनी हो तो जल्दी अटकल लगा। मेवाड़ की बाजी तेरे हाथ है

'जाट ने कहा -- यदि इससे बाजी रहती हो तो मैं मेवाड़ की शान रख दूंगा। यह कह कर वह तो वहां से रवाना हुआ और चुपचाप किनारे के पास लगे हुए नटों के डेरे में घुस गया।

लोगों की आंखें नटनी के पैरों से बंधी हुई थी। वह तो सरर सरर आधे मार्ग से आगे पार करने लगी। उसके आंचल में फिर दूध आने लग गया था। उसने अपने बेटे का ध्यान किया कि बस अभी पार करके उसे दूध पिला दूंगी। वह थोड़ी जल्दी जल्दी सरकने लगी। पानी की लहरों के सिवाय वहां कोई आवाज नहीं हो रही थी। जैसे आवाज खुद उसका खेल देखने में मगन हो गई हो। अचानक एक बालक के रोने और चीखने की आवाज उस सन्नाटे को चीर गई। वह चीख नटनी के कानों में भी पहुंची। उसने तुरन्त अपने बेटे की चोख पहचान ली। और चीख के साथ ही रस्सी पर चलती हुई मां का ध्यान चूक गया। ध्यान चूकते ही पैरों का सन्तुलन टूटा और नटनी तो रस्सी पर से पिछोले की लहरों में पड़ती ही दिखाई दी। छपाक, सिर्फ इतनी सी आवाज हुई। फिर केशों का लच्छा दो तीन बार डूबता उतराता दिखाई दिया।

मछलियां पानी में और नट जमीन पर खेल किया करते हैं। नटनी तैरना नहीं जानती थी। बचाने के लिए लोग पहुंचे तब तक सारा खेल समाप्त हो चुका था।

इधर नटनी की सांस बन्द हुई और उधर महाराणा को सांस आया। उनका कलेजा ठिकाने आया। चौधरी का अहसान जताते हुए सारे सरदारों ने कहा—तलवारों से जो राज्य नहीं बचता, उसे इस जाट ने बच्चे को नोंच कर बचा लिया। यदि बच्चे की चीख नटनी के कानों में नहीं पहुंचती तो वह कभी रस्सी पर से अपना सन्तुलन नहीं खोती। महाराणा उसकी पीठ थपकारते हुए बोले—नट विद्या आ सकती है पर जट विद्या नहीं आती। नटनी के डूबने से मेरा नाक रह गया, मेवाड़ की आन बच गई और आधा राज्य डूबता बच गया।

नीबू का स्वाद

पक्षियों में चतुर कौवा और मनुष्यों में चतुर नौवा ! नाई से आगे चतुराई की सीमा। एक धरमशाला में एक नाई रहता था। बेहद चालाक ! वह अपनी जेब में हरदम एक नींबू रखता। आते जाते राहगीर वहां रोटी पानी के लिए रुकते तो वह उनके पास बैठ कर बातें करना शुरू कर देता। सामने वाले को खुश करने के लिए वह ठकुर-सुहाती बातें करता। पर हरएक के सामने नींबू के बखान तो करता ही। दुनिया में कोई अमरफल है तो नींबू ही है। बाकी सारे फल इस एक नींबू के सामने फीके हैं। नींबू खाने से कोई बीमारी पास नहीं फटकती। पहले की बीमारी हो तो नींबू खाने से दूर हो जाती है। धरमशाला में कोई पीलिये का रोगी आता तो वह कहता कि नींबू खाने से पीलिया एकदम मिट जाता है। रतांदी वाले को, निकाले वाले को, आधा सीसी सिर दुखने वाले को, मस्सों की तकलीफ वाले को और गठिया वाले को—सबको वह नींबू के रस की दवाई बताता। सफेद बाल वालों को कहता कि नींबू खाने से बाल वापिस काले हो जाते हैं। दुबले पतले आदमी से कहता कि नींबू खाने से

शरीर मोटा हो जाता है। ठिगने आदमी को कहता कि नींबू खाने से आदमी की लम्बाई बढ़ती है। तोंदवालों से कहता कि नींबू खाने से तोंद झड़ती है। नींबू खाने से आयु बढ़ती है।

इस प्रकार नींबू के बखान करते करते वह नाई चाकू से नींबू काट लेता और मौका देख कर बातों बातों में मुसाफिर की साग-भाजी में नींबू निचोड़ देता। नींबू निचोड़ने के बाद कहता — स्वाद है वह तो इस नींबू में ही है। नींबू से साग-भाजी क्या की क्या बन जाती है। आप इसका प्रताप तो देखिये।

लिहाज के मारे मुसाफिर उसे साग-भाजी डाल देते और रोटी भी खिला देते। सिर्फ नींबू के सहारे मजे में अपना गुजारा कर लेता। पाई एक का खर्चा नहीं और नींबू के गुण बता बता कर लोगों पर खाने पीने का खर्चा निकाल लेता।

धीरे धीरे लोगों को उसकी चालाकी का पता चलता गया। पर रोटी के लिए कौन डांटे! नाई का नींबू तो पार पड़ता ही गया। धरमशाला में नये पुराने कई मुसाफिर आते रहते। नाई तो नींबू के गुण बता कर अपना काम बना लेता। एक ठाकुर साहब से दो तीन बार भाजी में नींबू निचोड़ कर उसने रोटियां खा ली। ठाकुर को तीसरी बार नाई की बात बुरी लगी तो भी उन्होंने कुछ कहा नहीं।

चौथी बार वही ठाकुर उस धरमशाला में फिर आया। इस बार उनके साथ उनका छोटा कुंवर भी था। कुंवर की आंख में कई बरसों से फूला पड़ा हुआ था। नाई ने तो अपनी आदत के अनुसार आंख में फूला देख कर कहा ही— नींबू के रस से आंख का फूला देखते देखते मिट जाता है। आप कभी इसका असर तो देखिये।

यह कह कर नाई ने तुरन्त एक नींबू काट कर भाजी के कटोरे में निचोड़ दिया। ठाकुर साहब खाना खाने का विचार कर ही रहे थे। पर नाई की अशिष्ट बात सुनकर उनको क्रोध आ गया। पैर से जूता खोलकर उन्होंने पांच सात जूते नाई के सिर में जतरा दिये।

पर नाई ने तो बिलकुल बुरा नहीं माना। उलटा हंसता हुआ कहने लगा— ठाकुर साहब! या तो मेरी मां मुझे मार मार कर रोटी खिलाया करती थी, या आज आप मार मार कर खिला रहे हैं।

नाई की यह बात सुनकर ठाकुर को भी हंसी आ गई। बोले — तेरी शैतानी में भी कसर नहीं।

फिर उसे मनुहार करके रोटी खिलाई। जाते समय नाई को साथ ले गये। ठिकाने में कौतुक करने के लिये ऐसा खवास तो खास तौर से चाहिये।



सावधानी

नशे के आनन्द को, बिना नशा किये कोई जान नहीं सकता। घरवाले सारे परेशान हो जाते हैं पर नशेबाज तो हमेशा मौज करता है। सारे नशों में राजा नशा अफीम का। इस नशे में तकलीफ का पता चलता नहीं और दुख दर्द महसूस होता नहीं। न सूरज उगने का पता चलता है और न अस्त होने का। न भूख का पता चलता है और न तृप्ति का। उसकी भूख कभी मिटती नहीं और उसका पेट कभी भरता नहीं। अघोरी और अफीमची एक समान होते हैं।

ऐसे एक अफीमची ठाकुर की बात सुनिये। बेटी समझ कर वे अपनी ठकुराइन के सिर पर कई बार हाथ फेर देते। नाखून की जगह कई बार मूंछें काट लेते। सिर के बदले पैरों पर कई बार पगड़ी बांध लेते और सिर पर जूतियां रख कर घूम लेते। आंखों की जगह दांतों में सुरमा लगा लेते। भूख लगती तो पानी मांग लेते और प्यास लगती तो रोटी मांग बैठते। वे अफीमची ठाकुर साहब ऐसे परमहंस थे तो भी अपने से ज्यादा सावधान इस दुनिया में किसी को नहीं मानते। उनसे गोरा—उसे पीलिये का रोग!

अेक बार वे पूरा अफीम जमा कर बैठे थे। बैठे बैठे ही जंची कि दिल्ली फतह करनी है। बस, जंचते ही वे तो दिल्ली फतह करने के लिए खड़े हो गये। सीढ़ियों से दो एक पत्थर नीचे उतरे तब तक तो शरीर वश में रहा, पर फिर नहीं संभाल सके। बांई तरफ डिगे कि धड़ाम नीचे। दिल्ली तो देखते देखते फतह हो गई। ठाकुर ने धड़ाम की आवाज सुनी तो जोर से आवाज दी — अरे है कोई हाजरी में? कोई बच्चा नीचे गिर गया लगता है, जल्दी उठाओ। मैंने गिरने की आवाज सुनली पर तुम लोगों के तो कानों में तेल डाला हुआ है। मैं सावधानी नहीं रखूं तो सारे बच्चे गिर गिर कर मर जांय। दौड़ो, दौड़ो, देखो

कहीं उसके चोट तो नहीं आई।

ठाकुर साहब का हल्ला सुन कर नौकर दौड़ते आये। देखा तो ठाकुर साहब चौक में पड़े हुए मौज कर रहे हैं। नौकरों ने जब हाथ पैर पकड़ कर ठाकुर साहब को उठाया तो उन्होंने कहा — धीमे, धीमे बच्चे को बिलकुल धीरे से उठाना। यह तो मैंने सावधानी रखी जो बच्चे के गिरते ही आवाज दे दी। वर्ना तुम लोगों को तो दस दिन भी पता नहीं चलता। मैं अकेला कहां कहां ध्यान रखूं? मैं तो अब दिल्ली फतह करने जा रहा हूं, तुम लोग बच्चे का पूरा ध्यान रखना। अरे दुष्ट लोगों, बताओ तो सही कि कौन नीचे गिरा। छोटे वाला कुंवर तो कहीं नहीं गिरा!

नौकरों ने कहा — हुकुम, ये तो आप हुजूर खुद नीचे गिरे थे।

ठाकुर साहब ने झिझक कर पूछा — क्या कहा, मैं खुद नीचे गिर गया था! फिर उन्होंने जोर से रोना शुरू किया — तब तो मैं मर गया रे, मर गया रे। अब मैं दिल्ली कैसे फतह करूंगा?

झूठों के सरदार

लगातार पांच सात अकाल पड़ गये तो एक बावरी पूरा परेशान होकर डाके डालने लगा। खेतों में खड़ी फसल होती तो सिट्टे तोड़ लेता, लाटों से धान उचका लेता, पचावों से चारा चोर लेता। जमाना होता तो उसके चारे की जगह धान बहुत था। किसी के खेत में उपज होती तो वह उसके बाप की थी। पर जब लगातार अकाल पड़े तो वह भी क्या करे?

घरों में सेंध डालकर चोरी करे तो बहुत से लोगों की ऐसी हालत ही नहीं थी। बड़े घरों में आसानी से सेंध भी नहीं लगाई जा सकती। इसलिए उसने चोरी करना छोड़कर डाका डालना शुरू कर दिया।

उस बावरी के पास एक तोड़ेदार बन्दूक थी। वह अंगार लगाने से छूटती थी। उसने समझा कि सारी बन्दूकें अंगार लगाने से ही छूटा करती हैं। टोपीदार

बन्दूकों का उसे ज्ञान नहीं था। बन्दूक के कान पर टोपी चढ़ा कर घोड़ा दबाते ही धमाका करने वाली बन्दूकें भी हो सकती हैं, इसका उसे अन्दाज तक नहीं था। उन दिनों विरले लोगों के पास ही ऐसी बन्दूकें मिलती थीं। इसलिए वह बावरी उस तोड़ेदार बन्दूक पर ही जूझता था। अपने आपको बड़ा डाकू मानता था। उस बन्दूक के जोर पर उसने कई छोटे मोटे डाके डाले थे।

एक बार डाका डालने का एक बढ़िया संयोग बैठा। ऊंटों पर राजपूत सरदारों की बरात जा रही थी। बरात के साथ काफी धन माल था। बावरी ने सोचा कि आज तो निहाल हो गये। बाकी सारे सवारों के पास तो तलवारें थीं पर सबसे आगे वाले सरदार के पास टोपीदार बन्दूक थी।

बावरी ने मन में सोचा कि छल करके पहले यह पता लगा लिया जाय कि किसी सरदार के पास अंगार है या नहीं, यदि अंगार नहीं होगा तो बन्दूक कैसे छोड़ेंगे! फिर मैं उनका उस्ताद! अपनी अकेली बन्दूक से ही मैं सारी बरात लूट लूंगा। उसने पहले बन्दूक वाले बराती से ही पूछा—सरदार, मुझे चिलम पीनी है। यदि आपके पास अंगार हो तो मुझे देने की कृपा करें। व्यसनी आदमी हूं। चिलम की फूंक खींचे बिना चला नहीं जाता।

सरदार ने कहा—भइया, हम बरातियों में से तो किसी के पास अंगार नहीं है। अब तू कहे सो करें।

यह बात सुनते ही बावरी अकड़ कर बोला—तो मैं कहता हूं वह करो। उसी में फायदा है। चुपचाप सारा माल ताल नीचे गिरा दो, नहीं तो एक एक को भून दूंगा, फलाना डाकू हूं।

बावरी का इतना कहना हुआ कि उस सरदार ने बन्दूक का निशाना लेकर एक गोली बावरी पर चलाई। गोली सीधी बावरी के पुट्ठों में लगी। वह तो गोली लगते ही धड़ से नीचे लुढ़क गया। धक धक खून निकलने लगा। नीचे पड़ा पड़ा ही तड़पता हुआ बोला — मैं मरूं इसकी परवाह नहीं, एक दिन सब को मरना ही है। पर तुम्हारे जैसा झूठा सरदार तो आज ही देखा। मेरे मरने के साथ ही तुम्हारा विश्वास देख लिया। झूठ बोलते तुम्हें जरा भी शरम नहीं आई। यदि असली राजपूत होते तो साफ कह देते कि मेरे पास अंगार है। तब सामना करने का भी मजा आता। झूठों के सरदार तुमने मेरे साथ दगा किया। लानत है तुमको।



वाद्य वर्गीकरण की समस्या

डॉ. लालमणि मिश्र

यद्यपि संगीत के वर्गीकरण की महत्ता प्राचीन काल से ही स्वीकृत है किन्तु आधुनिक युग में संगीत वाद्यों के संग्रहालयों के निर्माण के साथ-साथ इस विषय पर वैज्ञानिक ढंग से विचार कर वर्गीकरण के क्षेत्र को और उपयोगी तथा व्यावहारिक बनाने की आवश्यकता अनुभव हो रही है।

विश्व के विभिन्न भूखण्डों में कई प्रकार से संगीत वाद्यों के वर्गीकरण की प्रथा रही है, इनमें से भारत, चीन तथा पाश्चात्य देशों के वर्गीकरण को विशेष महत्ता प्राप्त है। जैसा कि संगीत के अन्य विषयों के सम्बन्ध में कहा जाता है, वाद्य संगीत के वर्गीकरण का भी सर्व प्रथम विधिवत उल्लेख महर्षि भरत द्वारा नाट्य शास्त्र में हुआ है। वह कहते हैं:

ततं चैवावनद्धं घनं सुषिरमेव च ।
चतुर्विधं तु विज्ञेयमातोद्यं लक्षणान्वितम् ।।१।।
ततं तन्त्रीकृतं ज्ञेयमवनद्धं तु पौष्करम् ।
घनं तालस्तु विज्ञेयः सुषिरो वंश उच्यते ।।२।।

इस प्रकार तन्त्री वाद्य, चमड़े से मढ़े हुए ताल वाद्य, वायु के माध्यम से बजने वाले वाद्य तथा ठोस पदार्थों से निर्मित ताल के प्रदर्शनार्थ प्रयुक्त होने वाले वाद्यों को क्रमशः तत, अवनद्ध, सुषिर तथा घन वर्गों में विभक्त किया गया। यहां यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि भारतीय मनीषियों ने कुल पांच प्रकार की महाध्वनियां मानी हैं :

एकं ईश्वरनिर्मितं नैसर्गिकं अन्यच्चतुर्विधं ।

मनुष्यनिर्मितं चेति पंचप्रकारा महावाद्यानाम् ।।

लगभग इसी प्रकार की बात संगीत मकरंद में भी कही गई है:—

अनाहतः आहतश्चेति द्विविधो नादस्तत्रं

सो प्याहतः पंचविधो नादस्तु परिकीर्तितः ।।

नखवायुजचर्माणि (चर्मण्य) लोहशरीरजास्तथा ।।७।। [संगीत मकरन्दे]

उक्त पांच प्रकार की महाध्वनियों अथवा आहत-नाद-भेदों में मनुष्य निर्मित चार प्रकार की ध्वनियां ही संगीत वाद्यों के वर्गीकरण के रूप में अभिहित हुई हैं।

वाद्यों के उपर्युक्त भारतीय वर्गीकरण को यद्यपि सर्व सम्मति से स्वीकार किया हुआ कहा जा सकता है, क्योंकि पारवर्ती आचार्यों ने भी भरतोक्त वर्गीकरण का ही अनुसरण किया है, किन्तु ऐसे उल्लेख भी प्राप्त होते हैं जिनसे उक्त चतुर्विध वर्गीकरण के अतिरिक्त कुछ नई समस्याओं पर विचार करने की प्रवृत्ति स्पष्ट प्रकट होती है।

सर्व प्रथम इस प्रकार का उल्लेख 'विमान वत्थु' [लगभग छठीं शताब्दी] में उपलब्ध होता है। इसमें वाद्यों के पांच वर्ग माने गये हैं जिन्हें आतत, वितत, आतत-वितत, सुषिर तथा घन के नाम से अभिहित किया गया है। वस्तुतः प्रचीन काल से ही कुछ ऐसे वाद्य भी प्रचलित होने लगे थे जिनका रूप एक वर्ग का था तथा कार्य दूसरे वर्ग के अन्तर्गत होता था।

प्राचीन काल से अब तक यह दृढ़ मान्यता रही है कि तन्त्री वाद्य एवं सुषिर वाद्य स्वरोत्पत्ति के निमित्त तथा अवनद्ध एवं घन वाद्य तालोत्पत्ति के हेतु निर्मित हुए हैं। किन्तु जब तन्त्री का प्रयोग तथा फूंक का प्रयोग ताल-वादन के निमित्त होने लगे तो वाद्यों के उद्देश्य की दृष्टि से यह भिन्न कार्य ही कहा जायेगा।

प्राचीन युग में एक वाद्य तंतुपटहिका के नाम से उपलब्ध होता है। आधुनिक ढोलक को मध्य काल के पूर्व पटह कहा जाता था। तंतुपटहिका से यहां यह अभिप्राय प्रकट होता है कि ऐसी छोटी ढोलक जिसमें तन्त्री का प्रयोग होता हो। मध्य कालीन उपंग तथा आधुनिक गुपगुपी अथवा आनन्द-लहरी का यही रूप है। इसका ढांचा आधी ढोलक के समान होता है। एक मुख खाल से मढ़ा तथा दूसरा खुला रहता है। खाल के बाहरी भाग में एक तार बांध देते हैं जो खोल के भीतर से होता हुआ खुले मुख से बाहर आता है। इस तार का दूसरा छोर एक मूठ से बांध देते हैं। मुख्य ढांचे को बांई कांख में दाब कर मूठ में बंधे हुए तार को खींचते तथा ढीला करते हुए दाहिने हाथ में एक छोटी शंकु अथवा सरोद के जवे

के समान वस्तु को लेकर वादन करते हैं। इसमें कहरवा, दादरा आदि के छन्द बजते हैं। नृत्य आदि में विशेष अवसरों पर इसके द्वारा हास्यात्मक ध्वनि भी उत्पन्न की जाती है।

यह ऐसा वाद्य है जो यद्यपि चमड़े से मढ़ा होता हैं किन्तु इसकी ध्वनि तार से निकलती है। तार से इसमें स्वरों के स्थान पर ताल-वादन का काम लिया जाता है अतएव ऐसे वाद्यों के लिए ही आतत-वितत नामक एक मिले-जुले वर्ग की कल्पना की गई है। उक्त ग्रन्थ के बाद 'संगीत पाठ' नामक ग्रन्थ में भी इस प्रकार के पांच वर्गों का उल्लेख हुआ है। इसमें तत्, आनद्ध, ततानद्ध, सुषिर एवं घन के नाम से पांच वर्ग बताये गये हैं। यह ग्रन्थ हस्तलिखित रूप में रामनगर किले के सरस्वती भण्डार, ग्रन्थालय में संग्रहीत है तथा अनुमानतः सोलहवीं शताब्दी के बाद की रचना है। इसी ग्रंथ में तत्, आनद्ध, ततानद्ध, घन तथा सुषिर इस प्रकार वाद्यों के पांच वर्ग माने गये हैं। यहां भी ततानद्ध पूर्व वर्णित आतत-वितत की आवश्यकता की ही पूर्ति करता है। हमारे देश में मध्य युग के आस-पास एक नवीन वाद्य जल तरंग का विकास हुआ।[१] संगीत पारिजात में इसे घन वाद्य के अन्तर्गत माना गया है। यहां यह बात विचारणीय है कि प्राचीन काल से घन वाद्यों का प्रयोग ताल अथवा लय प्रदर्शन के लिए होता आया है किन्तु जल तरंग का प्रयोग अन्य स्वर-वाद्यों के अनुरूप राग के अन्तर्गत, गत अथवा गीत के वादन के लिए होता है। अतएव घन वाद्यों में इसे रखना उसकी प्रकृति के अनुकूल नहीं है। जल तरंग के प्याले सामान्यतः चीनी मिट्टी के होते हैं। अतएव यदि उनकी घनता के कारण उसे घन वाद्य मानें तो भी यह बात कुछ विशेष समझ में नहीं आती। फिर यदि केवल जल तरंग की ही समस्या हो तो कोई बात नहीं। कुछ काल बाद अन्य संगीतोपयोगी-ध्वनि उत्पन्न करने वाली वस्तुओं को उचित स्वरान्तरालों पर स्थिर कर उनका भी जल तरंग की भांति प्रयोग किया जाने लगा। ऐसे सभी वाद्य तरंग के नाम से प्रसिद्ध हुए, जैसे : काष्ठ तरंग, घुंघरू तरंग, घंटा तरंग, शीश तरंग, जल तरंग, तबला तरंग आदि। इनमें अंतिम दो को छोड़कर शेष सभी, यद्यपि स्वरोत्पत्ति के निमित्त प्रयुक्त होते हैं, फिर भी अपने ढांचे के मूल रूप एवं वस्तु के कारण घन वाद्य के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। किन्तु मृदंग तरंग एवं तबला तरंग, जिनमें छोटे बड़े मुख वाले अनेक तबलों तथा मृदंगों का ही प्रयोग होता है, अपने मूल रूप में अवनद्ध वाद्य हैं। सूक्ष्म अध्ययन से यह पता चलता है कि जब तक जितने तरंग वाद्य प्रयुक्त होते रहे हैं उन सभी की मूल वस्तु या तो घन-वाद्य-वर्ग की है या अवनद्ध-वाद्य-वर्ग की है। दोनों ही वर्ग ताल अथवा लय के लिए प्रयुक्त होते हैं

---

१. जल तरंग का नामोल्लेख अष्टछाप के कवियों द्वारा हुआ है तथा इसका शास्त्रोक्त वर्णन संगीत पारिजात, संगीत सार आदि में मिलता है।

किन्तु तरंग वाद्य के रूप में इनका प्रयोग स्वरोत्पत्ति के लिए हो जाता है। इस प्रकार घन वाद्य तथा अवनद्ध वाद्यों से मूल ढांचा लेकर जब इनका प्रयोग स्वरोत्पत्ति के लिए किया जाने लगता है तब एक प्रकार से यह रूप तथा प्रकृति में अपने मूल रूप से भिन्न हो जाते हैं। अतएव मेरी समझ में ऐसे सभी वाद्यों का एक अलग वर्ग होना चाहिए। जैसे इन्हें 'तरंग वाद्य' कह सकते हैं।

वे घन अथवा अवनद्ध वाद्य जो अपने छोटे-छोटे आकार के कारण भिन्न स्वरों द्वारा रागोत्पत्ति कर सकें तरंग वाद्य कहे जाते हैं। इनका वादन प्रहार द्वारा ही होता है जो हाथ से अथवा किसी डंडी आदि से हो सकता है।

तरंग वाद्यों का उक्त परिचय उन्हें अन्य वर्गों से भिन्न कर देता है और इस प्रकार हमारे वाद्यों के अब छः वर्ग हो जाते हैं यथा: तत, आनद्ध, ततानद्ध, घन, सुषिर तथा तरंग वाद्य।

इन प्रमुख छः वर्गों में भी यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो कई अन्य वर्ग दिखाई पड़ते हैं जिन्हें विशेष वर्ग के रूप में रखा जा सकता है। इस प्रकार के उपवर्गों पर संक्षेप में दृष्टिपात कर लेना चाहिए ताकि हम उस वर्ग विशेष का विस्तार-क्षेत्र समझ सकें।

तत वाद्य

वादन की क्रिया के आधार पर इस वर्ग के वाद्यों को चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

— अंगुलियों से छेड़ कर बजाया जाने वाला वर्ग, जिसमें स्वर-मण्डल, तम्बूर आदि आते हैं।

—कोण, त्रिकोण [मिज़राब] से बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग के अन्तर्गत सितार, सरोद, रुद्रवीणा, विचित्र वीणा, तंजोरी वीणा, गोटु-वाद्यम् आते हैं।

— गज से रगड़कर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में सारंगी, रावण हत्था, इस-राज, दिलरुबा आदि आते हैं।

— डंडी से प्रहार कर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में संतूर, कानून आदि वाद्य आते हैं।

बनावट अथवा ढांचा या आकृति के आधार पर तत वाद्यों के निम्न छः उपवर्ग माने जा सकते हैं:

— लम्बी गर्दन वाले वाद्य। इस वर्ग में सितार, इसराज, दिलरुबा, तम्बूरा, वीणा

आदि आते हैं ।

— छोटी गर्दन वाले वाद्य । इस वर्ग में रावण हत्था, सारंगी आदि भारतीय तथा वायोलिन, मेन्डोलियन आदि विदेशी वाद्य आते हैं ।

— एक या दो तुम्बे युक्त वाद्य । इस वर्ग में तंजोरी वीणा को छोड़ कर सभी वीणायें, तम्बूरा, सितार आदि आते हैं ।

— तबली के स्थान पर चमड़े से मढ़े हुए वाद्य । इस वर्ग में सारंगी, दिलरुबा, इसराज, सरोद, रबाब आदि रखे जा सकते हैं ।

— ठोस, सीधी अथवा घुमावदार लकड़ी से बने वाद्य । इस वर्ग में कुछ प्राचीन भारतीय वीणायें तथा ईरानी एवं पाश्चात्य हार्प आदि रखे जा सकते हैं ।

— चपटे, पहलदार अथवा चौकोने सन्दूक की भांति बने वाद्य । इस वर्ग में स्वर मण्डल तथा सन्तूर आदि आदि रखे जा सकते हैं ।

तत् वाद्यों को वादन के लिए रखने की स्थिति की दृष्टि से चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

— गोद में रखकर, खड़ा अथवा कंधे पर सहारा लेकर बजाये जाने वाले वाद्य । इस वर्ग में इसराज, दिलरुबा, सारंगी आदि आते हैं।

— सम्पूर्ण वाद्य अथवा उसका एक भाग गोद में चित अवस्था में रख कर बजाये जाने वाले वाद्य । इस वर्ग में स्वर-मण्डल, तंजोरी वीणा आदि आते हैं ।

— गोद अथवा जांघ का सहारा लेते हुए तिरछे रख कर बजाये जाने वाले वाद्य । इस वर्ग में सितार, सरोद, स्वर बहार, सुर सिंगार, रबाब, रुद्र वीणा आदि आते हैं

— सामने रख कर बजाये जाने वाले वाद्य । इस वर्ग में संतूर, कानून, प्यानो आदि आते हैं ।

अवनद्ध वाद्य

वादन-क्रिया की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों को पांच उपवर्गों में विभक्त किया ज़ा सकता है जो निम्नवत् है :

— दोनों हाथों के पंजों से अथवा अंगुलियों से बजाये जाने वाले वाद्य । इस वर्ग में पखावज, मृदंगम् (कर्नाटक), तबला, ढोलक, खोल, नाल, मादल आदि वाद्य आते हैं । इस वर्ग के वाद्य अपनी क्लिष्ट तथा विविधतापूर्ण वादन सामग्री के कारण भारत में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते रहे हैं । इस वर्ग में यद्यपि सभी वाद्य

अपनी-अपनी विशेषता रखते हैं। किन्तु पखावज, तबला तथा ढोलक का विशेष स्थान है।

— एक हाथ की अंगुलियों से बजने वाले वाद्य। इस वर्ग में हुडुक, खंजरी, दायरा आदि आते हैं।

— शंकु से बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में नगाड़ा, धौंसा, दमामा, ढाक आदि आते हैं।

— एक ओर हाथ से तथा एक ओर डंडी से बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में कड़ा-ढोल, पटह आदि आते हैं।

— घुंडी की चोट से बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में डमरू, ढक्का आदि आते हैं।

बनावट की दृष्टि से अवनद्ध वाद्यों को निम्न चार उपवर्गों में विभाजित किया जा सकता हैं :

— भीतर से खोखले तथा दोनों मुखों पर मढ़े हुए वाद्य। इन वाद्यों के पांच रूप देखने को मिलते हैं :

— गोपुच्छा : एक ओर बड़ा मुख, दूसरी ओर छोटा मुख तथा बीच से उठा हुआ। भरत-कालीन मृदंग का एक भाग ऐसा ही था। आधुनिक मृदंग को इसी रूप में लिया जा सकता है।

— यवाकृति : अपेक्षाकृत दोनों मुख छोटे तथा मध्य भाग भी उठा हुआ। भरत-कालीन मृदंग का एक भाग ऐसा ही था। आधुनिक खोल को इस रूप में लिया जा सकता है।

— हरीतकी : दोनों मुख लगभग समान तथा मध्य भाग भी समान। भरत कालीन मृदंग का एक भाग ऐसा ही था। आधुनिक युग में पंजाबी ढोलक, महाराष्ट्रीय ढोलक आदि में यही रूप प्रचलित है।

— मध्य भाग एवं दोनों मुख समान। यह वाद्य एक फुट से दो फुट या उससे भी अधिक व्यास के वृत्ताकार होते हैं। इस वर्ग में ढोल, ढाक तथा पाश्चात्य वाद्य साइड ड्रम आदि आते हैं।

— दोनों मुख समान तथा मध्य भाग भीतर धंसा हुआ। इस वर्ग में डमरू, हुडुक आदि आते हैं।

प्रथम उपवर्ग के पांच उपभेदों के बाद अब हम दूसरे उपवर्ग पर विचार करेंगे। ये वाद्य भीतर से खोखले होते हैं किन्तु ये एक मुखी होते हैं और इनका दूसरा छोर बन्द होता है

इस वर्ग के भी अनेक उपभेद देखे जाते हैं, जिन्हें निम्न मुख्य तीन उपभेदों में रखा जा सकता है :

- अर्ध गोपुच्छा : इस प्रकार के वाद्यों के मुख का वृत्त जितना होता है उससे दूसरी ओर का वृत्त अधिक होता है। इस वर्ग में तबले का दाहिना भाग तथा घट आदि रखे जा सकते हैं।
- अर्ध यवाकृति : इस वर्ग के वाद्यों का मुख बड़ा होता है तथा इनका दूसरा छोर कुछ नुकीला होता है। नक्कारा, नगड़िया आदि इसी के उपभेद हैं।
- अर्ध हरीतकी : इस वर्ग के वाद्यों का मुख बड़ा होता है साथ ही दूसरा छोर जो बन्द होता है वह नुकीला न होकर कुछ गोलाई लिए होता है। तबले का बांया भाग तथा अन्य वाद्य इसी के उपभेद हैं।

— भीतर से खोखले दोनों मुख पर मढ़े हुए तथा एक मुख पर मढ़े हुए दूसरे मुख पर बन्द वाद्यों के रूप ऊपर बताये गये हैं। इनका तीसरा रूप वह है जो भीतर से खोखले होते हैं। दो मुख होते हैं। किन्तु मढ़ा एक ही मुख जाता है, दूसरा मुख खुला रहता है। ऐसे वाद्यों का प्रचार अफ्रीका तथा पाश्चात्य देशों में देखा जाता है।

—लकड़ी की चार से छ: अंगुल तक चौड़ी पट्टी जो गोल, पहलदार अथवा अन्य किसी आकृति का छोटा या बड़ा घेरा बनाती है उसीमें एक ओर चमड़ा मढ़ा रहता है। इस उपवर्ग में अनेक वाद्य हैं जो चंग, डफ, डफला, कर-चक्र, गजीरा, खजरी, दायरा आदि नामों से प्रसिद्ध है।

सुषिर वाद्य

वादन-क्रिया की दृष्टि से सुषिर वाद्यों के दो भेद स्पष्ट परिलक्षित होते हैं जो निम्नवत् हैं :

—मुख से फूंक कर बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में वंशी, मुरली, पाविका, पुंगी, शहनाई, नागस्वरम् आदि आते हैं।

—अन्य किसी साधन से वायु उत्पन्न करके बजाये जाने वाले वाद्य। इस वर्ग में हारमोनियम, स्वर पेटी आदि रखे जा सकते हैं।

बनावट की दृष्टि से सुषिर वाद्यों के अनेक उपभेद हैं जिनके उपवर्ग भी हो सकते हैं किन्तु मुख्य रूप से उन्हें निम्नलिखित छः उपवर्गों में बांटा जा सकता है :

—सादे बने हुए वाद्य। इन वाद्यों में फूंक के लिए एक छिद्र होता है तथा स्वरों के

लिए जो छिद्र होता है उन्हें खोलने तथा बन्द करने की क्रिया अंगुली के पोरों से की जाती है। जैसे वंशी, मुरली, पाविका आदि में।

—पत्तीदार सादे वाद्य। इन वाद्यों में फूंक के स्थान पर एक विशेष प्रकार की बनी हुई पत्ती लगाकर फूंकते हैं किन्तु स्वर के छिद्रों का सीधा सम्बन्ध अंगुली के पोरों से होता है। जैसे शहनाई, नागस्वरम् आदि में।

—पत्तीदार तथा चाबीदार वाद्य। इस वर्ग के वाद्यों में फूंक के स्थान पर विशेष प्रकार की पत्ती लगी होती है तथा स्वरों के छिद्रों को खोलने तथा बन्द करने के लिए चाबियां लगी होती हैं, जैसे क्लारियोनेट, सेक्सोफोन आदि में।

—फूंकने वाला मुख सामान्य किन्तु दूसरी ओर का मुख फूलदार अर्थात् बाहर की ओर फैला हुआ होता है जैसा कि शहनाई, नागस्वरम् आदि में होता है।

—घुमावदार बने हुए। इस वर्ग में अधिकांश पीतल के बने हुए फूंक के वे वाद्य आते हैं जिनका अधिकांश उपयोग बैण्डों में होता है। ये सभी विदेशी वाद्य हैं जिन्हें भारतीय बैण्ड पार्टियों ने अपना लिया है। ट्रम्पेट आदि इसी वर्ग के वाद्य हैं।

—रीड लगे हुए वाद्य। इस वर्ग में वे सभी वाद्य आते हैं जिनमें एक एक स्वर के लिए पीतल अथवा अन्य किसी धातु के अलग-अलग रीड बना कर क्रमानुसार लगा दिए जाते हैं। इस वर्ग में हारमोनियम, हारमोनिका, स्वरपेटी आदि आते हैं।

घन वाद्य

वादन - क्रिया की दृष्टि से घन वाद्यों के मुख्य तीन उपवर्ग हैं जो निम्नवत् हैं :

—एक से ही दो हिस्सों को परस्पर टकराकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस उपवर्ग में झांझ, मंजीरा, कठताल, कम्रिका आदि आते हैं।

—डंडी अथवा लड़की की या किसी अन्य मुलायम वस्तु से बनी हथोड़ी से प्रहार कर बजने वाले वाद्य। इस उपवर्ग में घंटा, जयघंटा, विजयघंटा, गौंग, गेमलन, बड़ी झांझ आदि आते हैं।

—हाथ हिलाकर बजाये जाने वाले वाद्य। इस उपवर्ग में वे सभी वाद्य आते हैं जिनमें किसी पोले पदार्थ के भीतर कंकड़ आदि भरे रहते हैं। जैसे रम्भा, झुनझुना आदि।

बनावट की दृष्टि से घन वाद्यों के अनेक भेद हैं जिनकी गणना कर अनेक उपवर्ग बनाना अभी तक किसी के लिए संभव नहीं हो सका है।

वास्तव में मध्य काल से ही विश्व के अनेक देशों में, विशेषकर पाश्चात्य देशों में इतने नये वाद्यों का नये-नये रूपों में आविष्कार हुआ है कि उनका वर्गीकरण विश्व के संगीत वेत्ताओं के लिए एक कठिन समस्या बन गई है। प्राचीन काल में जिस प्रकार भारत में वाद्यों को चार वर्गों में बांटा गया है उसी प्रकार चीन में वाद्यों के आठ वर्ग माने गये हैं जो वाद्यों के निर्माण में की गई वस्तुओं के प्रयोग के आधार पर है। चीनी विद्वानों के मत में ध्वनि उत्पादन की मुख्य सामग्री चमड़ा, पत्थर, धातु, मिट्टी, लकड़ी, बांस, रेशम, तुम्बी [लौकी या कद्दू] है, अतएव इन्हीं ध्वनि उत्पादक सामग्री के आधार पर वाद्यों के आठ वर्ग मान लिए गये हैं।

पाश्चात्य देशों में मुख्य तीन वर्ग ही प्रचार में रहे जिन्हें तन्त्री वाद्य [Chordophonic] हवा के वाद्य [Aerophonic] तथा प्रहार के वाद्य [Percussion] कहते हैं। इस प्रकार के वाद्यों के अन्तर्गत अवनद्ध तथा घन दोनों प्रकार के वाद्य माने जाते हैं। अतएव जब वाद्यों की संख्या बढ़ती जा रही हो तथा सुदूर देशों के अपरिचित वाद्यों के असंख्य भेदों का पता चलता जा रहा हो तब भला इतने स्थूल वर्गीकरण से कैसे काम चलता। इस दिशा में सबसे पहले महत्वपूर्ण कदम उठाने वाले थे श्री विक्टर चार्ल्स महिलान जो ब्रूसल्स के संगीत वाद्य संग्रहालय के जन्मदाता तथा संरक्षक थे। इन्होंने अपने संग्रहालय में विभिन्न वाद्यों को एकत्रित कर उसका संग्रहालय की दृष्टि से सन् १८८८ में एक नया वर्गीकरण तैयार किया। इनका वर्गीकरण संगीतज्ञों के लिए विशेष लाभप्रद न था, यह उसकी मुख्य कमी थी! साथ ही जो नये नये वाद्य संग्रहालय में आते जा रहे थे उसके कारण भी वह वर्गीकरण अपूर्ण-सा रह गया जिससे उसमें सुधार और परिवर्तन को फिर आवश्यकता अनुभव होने लगी। इस प्रकार पच्चीस वर्ष बाद अर्थात सन् १९१४ में यह कार्य डॉ. एरिच एम. वॉन हॉर्न बोस्टल तथा श्री कर्ट साक्स के परस्पर सहयोग से सम्पन्न हुआ। इनके वर्गीकरण का मुख्य आधार ध्वनि-उत्पादक सामग्री थी। इनके द्वारा चलाया गया वर्गीकरण हार्न बोस्टर-साक्स वर्गीकरण के नाम से प्रसिद्ध हुआ। श्री कर्ट साक्स ने जो अभी जीवित हैं, ग्रन्थ "दि हिस्ट्री ऑफ म्यूजिकल इन्स्ट्रूमेन्टस्" में यह स्वीकार किया है कि इस बोस्टल–साक्स वर्गीकरण को भी वाद्यों के वर्गीकरण का अंतिम रूप नहीं कहा जा सकता, क्योंकि वाद्य मनुष्यों द्वारा निर्मित होते हैं जिनकी कल्पना की कोई सीमा नहीं है। अतएव वाद्यों के प्रकारों को भी बांध पाना लगभग असंभव ही लगता है।

चार कथात्मक पहेलियां

घर रै पाखती घर

राजस्थानी

अेक हो सेठ। भोलौ-ढाळौ। निरापेखी। भूठ अर छळ बिना कद विणज फळै ! पण सेठांणी ही डंयाळ। वा नित सेठां नै बिणज रा गुर अर आंटियां घोखावती। पण सेठां रै तौ होयै कीं बात नीं ढूकती। छळछंद अर कपट रा गुर हाथ नीं लागा तौ देखतां देखतां बडेरां री संच्योड़ी पूंजी रौ ई पोखाळौ व्हैगौ। जिण धंधा में हाथ घालै उणमें ई तोटौ।

सेवट रोट्यां रा ई जांदा पड़ण लागा। सेठांणी घणी ई तजबीजां विचारी, पण कीं जुगत हाथ नीं लागी। भगवांन री मया सूं उण बरस चौमासौ जबर फळियौ। जांणै विरखा रै पेटै खेतां धांन ई धांन ओलरग्यौ व्है। उळियोड़ा काचरा, पीळी-जरद काकड़ियां, मीठा खरबूजा अर मिसरी रै उनमांन मतीरा। धांन रौ बिणज करै उत्ती सेठां री सरधा नीं ही। काचरा, काकड़ियां, खरबूजा अर मतीरां में दूणा-डोढ़ा व्है। कीणा रौ धांन ई खासौ-भलौ भेळौ व्है जावैला। सौरौ अर सखरौ

घर के पास घर

हिन्दी

एक था सेठ। भोला-भाला। निष्कपट। भूठ और छल के बिना व्यापार कब फलता है ? पर सेठानी थी प्रवीण। वह हमेशा सेठ को व्यापार के गुर एवं प्रपंच सिखाती थी। किन्तु सेठ को तो कुछ भी समझ नहीं पड़ता। छल और कपट के गुर हाथ नहीं लगे तो देखते देखते पूर्वजों की संचित पूंजी समाप्त हो गई। जिस धंधे में हाथ डाला उसी में घाटा।

आखिर रोटियों का भी अभाव हो आया। सेठानी ने काफी सोच-विचार किया, पर कोई भी युक्ति हाथ नहीं लगी। उस वर्ष ईश्वर की कृपा से अप्रत्याशित फसलें उत्पन्न हुईं। मानो पानी के बदले खेतों में अनाज ही अनाज बरस पड़ा हो। पके हुए काचरे, पीली ककड़ियां, मीठे खरबूजे और मिश्री के समान मतीरे। अनाज का व्यापार करे ऐसी सेठ की स्थिति नहीं थी। काचरे, ककड़ियां, खरबूजे और मतीरों में डयोढ़े-दुगने होते हैं। बदले में धान भी काफी इकट्ठा हो [जाता है। सरल

काम । पण सेठांणी इण धंधा री बात चलाई तौ अेकर सेठ तौ सुभट नटग्या। कह्यौ—औ तौ कूंजड़ां रौ अफाळौ, बांणिया नै नीं सोहै।

तद सेठांणी कह्यौ—धंधा री कंड़ी मेहणी! बिणज रा सगळा कळाप करनै तूमार जोय लियौ, कीं बरगत नीं व्ही। ठाली बैठ्यां नीं सरै!

सेठांणी घणी समझाई तौ भोळा सेठ मांनग्या। खरबूजा-काकड़ियां री हाट मांडी। केसरिया पाग नै ई मात करै जैड़ा उळि-योड़ा काचरा अर काकड़ियां वेचण बैठा। लांठी ताकड़ी अर भाटा रा बाट पाखती धर लीना। मोठी, उळियोड़ी अर पाकी सौरम सूं बजार महक उठ्यौ। मथारै दिन चढ़्यौ जित्तै जित्तै कोणा री खासी ढिगली व्हैगी।

दिन ढळतां चार लुगायां आई। च्यारां रै ई छाती तणा घूंघटा। मजीठ राच्योड़ा सुरंगा चूड़ा अर सुरंगौ ई बणाव! बच्योड़ा सगळा काचरा, खरबूजा, काकड़ियां अर मतीरा सरीखा जुखाय लिया। खेसला री गांठां बांध च्यारूं जणियां माथै उंचावण रौ मतौ करचौ तद सेठ हळफळाया होय पूछ्यौ: यूं कीकर जावौ? दांम-कोणौ तौ निजरां ई नीं बतायौ अर गांठड़ियां उंचाय वहीर व्हैगी। लिछमियां, थें तौ औ ई धंधौ पैड़ाय देला।

च्यारूं जणियां घूंघटा रै मांय मुळकी।

और बढ़िया काम। पर सेठानी ने जब इस धंधे की बात चलाई तो एक-बारगी सेठ साफ इन्कार हो गया। कहा—यह तो कुंजड़ों का झंझट है, बनियों को शोभा नहीं देता।

तब सेठानी ने कहा—धन्धे में कैसी शर्म! व्यापार के सभी प्रपंच करके देख लिये, कुछ भी लाभ नहीं हुआ। खाली बैठने से पार नहीं पड़ेगा।

सेठानी ने बहुत समझाया तो भोला सेठ मान गया। खरबूजे और ककड़ियों की दुकान खोली। केसरिया पगड़ी को भी मात करे जैसे पके हुए काचरे व ककड़ियां बेचने के लिए बैठे। बड़ी तकड़ी और पत्थर के बाट पास में धर लिये। मीठी, पकी हुई सौरभ से बाजार महक उठा। सिर पर दिन चढ़ा तब तक अनाज की काफी बड़ी ढेरी लग गई।

दिन ढलने पर चार औरतें आईं। चारों के ही छाती तक घूंघट तना हुआ। लाल रंग के सुन्दर चूड़े और सुन्दर ही सिंगार। बचे हुए सभी काचरे, खरबूजे, ककड़ियां और मतीरे बराबर तुलवा लिये। कपड़े की गांठें बांध उन्हें सिर पर धरने का प्रयास करने लगीं तो सेठ ने घबराकर पूछा—यों कैसे जा रही हो! अनाज व दाम की तो सूरत ही नहीं बताई और गांठें लेकर रवाना होने लगीं। अरी, तुम तो यह धंधा भी नाकामयाब कर दोगी।

चारों औरतें घूंघट के भीतर ही मुस्क-

बोली—नीं ओ सेठां, थांरो धंधो नोज पड़ावां। सगळी भला घरां री हां। तड़कै घरै आयनै दांम ले जाजौ। दांमां री ना थोड़ी ई है।

सेठ कह्यौ — पण थें तौ सगळी बहू-बुहारियां हौ, मूंडौ देख्यां बिना कीकर ओ-ळखूं। थांरै घरां रा ठाया-पताया तौ बतावौ। पछै म्हैं कठै भंवतौ फिरूंला।

पछै सेठ अेक जणी रै साम्ही फुरनै पूछ्यौ—वाल्हा, थारौ घर कठै ?

वा तुरत पड़ूतर दियौ—हाथ में घर है जकौ घर म्हारौ।

दूजोड़ी नै पूछ्यौ तौ वा कह्यौ—घर में घर है जकौ घर म्हारौ।

तीजोड़ी बोली—मूंडा में घर है जकौ घर म्हारौ।

अर चौथोड़ी कह्यौ — घर रै पाखती घर है जकौ घर म्हारौ।

सेठ तौ अै पता-ठिकांणा सुणनै पताधम में पजग्या। सोचण लागा जित्तै जित्तै च्यारूं जणियां आप आपरी गांठां उंचाय बहीर व्हैगी। सेठां रै तौ कीं समझ बैठी नीं के तड़कै कठै जावै अर कठै नीं जावै ! आ तौ भूंडी पजी। इण धन्धा में ई बरगत नीं व्ही। सेठांणी जबरौ माजनौ पाड़ैला।

सिंझ्या रा हाट वढी करनै सेठ दुमना दुमना हवेली आया। माथै कीणा री पोट उखणियोड़ी। सेठांणी पोट नै उतारती बोली : के तौ सगळौ बाखर बिक्यौ कोनीं अर

राई। बोली — ना रे सेठ, तुम्हारे धंधे को हम क्यों नाकामयाब करने लगीं। सभी अच्छे घर की हैं। सवेरे घर आकर दाम ले जाना। उनकी मनाई थोड़े ही है।

सेठ ने कहा — किन्तु तुम तो सभी बहुरानियां हो, बिना मुंह देखे कैसे पहिचान करूं। तुम्हारे घरों के पते-ठिकाने तो बताओ। फिर मैं कहां भटकता फिरूंगा।

फिर सेठ ने एक की तरफ देखकर पूछा : तुम्हारा घर कहां है ?

उसने तुरत जवाब दिया—हाथ में घर है, वह घर मेरा।

दूसरी को पूछने पर उसने बताया — घर में घर है, वह घर मेरा।

तीसरी ने कहा — मुंह में घर है, वह घर मेरा।

और चौथी ने कहा—घर के पास घर है, वह घर मेरा।

सेठ तो ये पते-ठिकाने सुनकर असमजस में पड़ गया। सोचने लगा तब तक चारों औरतें अपनी अपनी गांठें लेकर रवाना हो गई। सेठ के तो कुछ भी समझ में नहीं आया कि सवेरे कहां जाय और कहां नहीं जाय ! यह तो बुरी हुई। इस धंधे में भी बरकत नहीं हुई। सेठानी बुरी तरह झगड़ेगी।

शाम को दुकान बन्द करके सेठ मुंह लटकाये हुए हवेली आये। सिर पर अनाज की गांठ धरी हुई। सेठानी गांठ को उतारती हुई बोली — या तो सारा माल बिका नहीं,

के सगळी कोणी अेकण सागै उखणीज्यौ कोनीं।

सेठ कोडायौ कोडायौ नवा बिणज री सगळी बात बताई के मथारै दिन चढ़्यौ जित्तै नांमी बरगत व्ही। पण सिंझ्या रा चार बुहारियां बच्योड़ौ आखौ बाखर तौ लेयगी, दियौ कीं नीं। अर जका पता-ठिकांणा बतायनै गी, वै वांरै तौ कीं पल्लै नीं पड़्या।

घड़ी घड़ी घोखतां घोखतां सेठां नै है ज्यूं रा ज्यूं च्यारूं ठाया याद व्हैगा हा। सेठांणी नै यूं रा यूं बताय दिया। सगळा ठाया सुणनै पैला तौ सेठांणी मुळकी। पछै कह्यौ : कीं डर री बात कोनीं। साव सुभट ठाया है। हांकरतां पाधरा पूग जावौला। पैला निरांत सूं रोटी जीमलौ, पछै म्हैं थांनै आं ठिकांणा रौ म्यांनौ बताय दूंला! मोट्यार लुगाई री अकल नै पूग नीं सकै, जद इज तौ मिनख घर रै बारै अस्टपौर कळाप करै अर लुगाई घर में बैठी घर री सोभा बधावै।

ब्याळू करयां पछै सेठांणी वां ठायां री म्यांनौ समझावण लागी। मगसा पड़ता दीवा री बाट काढ़तां बोली — हथाळी में मेंहदी कुरीजै। इण वास्तै हाथ में घरवाळी रै बारणै मेंहदी रूंख्योड़ी है। लूम्बड़ा नाळेर री टोपसी रै मांय काचौ गोंटौ व्है, इण वास्तै घर में घरवाळी रै बारणै नाळेर रौ रूंख है। मूंडा में दांत व्हिया करै। इणरौ औ म्यांनौ के मूंडा में घरवाळी रै दांत रै चूड़ा री हाट है।

और या अनाज एक साथ उठाकर लाया नहीं गया।

सेठ ने खुशी खुशी नये व्यापार की सारी बात बताई कि सिर पर दिन चढ़ा तब तक बढ़िया बरकत हुई। पर दिन अस्त होने पर चार बहुए बचा हुआ सारा माल तो ले गईं, दिया कुछ भी नहीं। और जो पते-ठिकाने बताये, वे उनके कुछ भी पल्ले नहीं पड़े।

बार बार रटते रटते सेठ को यों के यों चारों ठिकाने याद हो गये। सेठानी को उसी रूप में बता दिये। सभी ठिकाने सुनने पर पहिले तो सेठानी मुस्कराई। फिर कहा — कोई डर की बात नहीं। बिलकुल स्पष्ट ठिकाने हैं। सीधे पहुंच जाओगे। पहिले आराम से खाना खालो, फिर मैं इन ठिकानों का अर्थ समझा दूंगी। पुरुष औरत की अक्ल को नहीं पहुंच सकता, जभी तो वह घर के बाहर आठों पहर प्रपंच करता है और औरत घर में बैठी घर की शोभा बढ़ाती है।

रात का भोजन करने के बाद सेठानी उन ठिकानों का अर्थ समझाने लगी। धूमिल होते दीपक की बाती को बाहर निकालती हुई बोली—हथेली में मेंहदी अंकित होती है, इस कारण हाथ में घरवाली के द्वार पर मेंहदी का पौधा है। नारियल की सख्त पर्त के भीतर कच्चा गोला होता है, इस कारण घर में घर वाली के द्वार पर नारियल का वृक्ष है। मुंह में दांत होते हैं। इसका यह अर्थ हुआ कि मुंह में घर वाली के दांत के चूड़े की दुकान है।

पछै सेठ रै उणियारा सांम्हो देखती सेठांणी पूछ्यौ — अबै चौथोड़ ठिकांणा रौ म्यांनौ तौ थें ई समझग्या व्हौला।

सेठ गाबड़ हिलावता बोल्या — म्हारै तौ कीं समझ बैठी नीं।

तद सेठांणी बोली — इत्ती बात ई समझ नीं बैठै, इण कारण ई तौ थांनै मोट्यार री जूंण मिळी।

पछै मुळकती थकी कैवण लागी—गांधी रै अन्तर री सौरम पाखती रा घर में ई पूगै। इण वास्तै गांधी रै अड़ौअड़ पाखती रौ घर चौथोड़ी लुगाई रौ है। आं च्यारूं जणियां रा दांम खरा। धंधा में बरगत चोखी व्ही।

तड़कै सेठ वां च्यांरू ठिकांणै गियौ। जातां ई अजेज उगराई व्हैगी। किणी रौ ई घर सोधण में नीं तौ फोड़ा पड्या अर नीं गोता ई खाया। मांगतां पांण दांम संभळाय दिया। भोळौ सेठ राजी राजी हाट कांनी वहीर व्हियौ। सोचण लागौ के साचांणी लुगायां री अक्कल रौ तौ पार ई नीं!

फिर सेठ के चेहरे की ओर देखते हुए सेठानी ने कहा—अब तो तुम चौथे ठिकाने का मायना समझ ही गये होगे।

सेठ ने गर्दन हिलाते हुए कहा— मेरे तो कुछ भी समझ में नहीं आया।

तब सेठानी बोली—इतनी-सी बात भी समझ नहीं पड़ती, इसी कारण ही तो तुम्हें पुरुष की योनि मिली।

फिर मुस्कराती हुई कहने लगी—गांधी के इत्र-फुलेल की सुगंध पास के घर में भी पहुंचती है। इस का यह अर्थ हुआ कि गांधी के घर से सटा हुआ पहिला मकान उस चौथी औरत का है। इन चारों औरतों के दाम खरे। इस धंधे में तो बरकत अच्छी हुई।

सवेरे सेठ उन चारों ठिकानों पर गया। जाते ही निर्विलम्ब पैसे हाथ लग गये। किसी का भी घर ढूंढ़ने में न तो कोई दिक्कत हुई और न व्यर्थ गोते ही पड़े। मांगते ही दाम मिल गये। भोला सेठ खुशी खुशी दुकान की तरफ रवाना हुआ। सोचने लगा कि सचमुच औरतों की अक्ल का तो पार ही नहीं!

बेटौ सीझै!

अेक नावण रै घरै पांवणा आया। मां-बाप बारै गियोड़ा हा, फगत छोरी घरै ही। रसोई में बैठी सीधौ करती। हेलौ सुण बारणै आई। पांवणा पूछ्यौ—ब्याईजी अर ब्याणजी

बेटा उबल रहा है!

एक नायन के घर पाहुने आये। मां-बाप बाहर गये हुए थे, केवल लड़की घर पर थी। रसोई बना रही थी। आवाज सुनकर दरवाजे पर आई। पाहुनों ने पूछा— समधी

घरै कोमीं कांई ?

छोरी माथौ हिलाय होठां ई होठां में बोली—ऊं, हूं !

'सिध गिया ?'

छोरी ठीसर सुर में बोली—मां तौ गी है, अेक रा दो करण नै अर जीसा गिया समंदर रा झाग ढाबण नै । बाप बळै अर बेटौ सीझै । आप थोड़ी ताळ सुस्तावौ जित्तै रोव्यां व्हे जासी । जीमनै पधारज्यौ ।

छोरी री गूढ़ बातां सुणनै पांवणा रै लिलाड़ में सळ पड़ग्या । घणौ ई माथौ खपायौ, पण कीं समझ बैठी नीं । कह्यौ—आं बातां रौ सुभट म्यांनौ बतावै तौ इण ग्वाड़ी पांणी पीवां, नींतर म्हें तौ निरणा ई वळ जास्यां ।

छोरी दूधिया सुर में बोली — म्हारी मां तौ गी है जापौ जिणावण नै अर जीसा गिया छांन छावण नै । कैर सीझै अर केरड़ा रौ ईंधण बळै । अबै तौ जीमनै पधारौला !

और समधिन घर पर नहीं हैं क्या ?

लड़की ने सिर हिलाते हुए धीरे से कहा—ऊं, हूं ।

'कहां गये ?'

लड़की ने गम्भीर स्वर में कहा — मां तो गई है, एक के दो करने और पिताजी गये हैं समुद्र के झागों को रोकने । बाप जल रहा है और बेटा उबल रहा है । आप कुछ देर के लिए आराम करिये, तब तक खाना पक जायेगा । खाकर जाइयेगा ।

लड़की की गहरी बातें सुनकर पाहुनों के ललाट में सलवटें उभर आईं । काफी मगज-मारी की, पर कुछ भी समझ में नहीं आया । बोले– इन बातों का स्पष्ट अर्थ बताये तो इस घर में पानी पीयें, नहीं तो भूखे प्यासे ही लौट जायेंगे ।

लड़की ने दूध-से स्वर में कहा—मां तो गई है बच्चा जनवाने । पिताजी गये हैं झोंपड़ी छाने के लिए । कैर उबल रहे हैं और कैर का ईंधन जल रहा है । अब तो खाकर जाइयेगा ।

नीं रौ म्यांनौ हां

पाड़ौसण नायण रै घरै आय उणरी छोरी नै पूछ्यौ के उणरी मां कठै गी अर कणाक पाछी आवैला ।

तद छोरी कह्यौ — म्हारी मां तौ गी हैं वेमाता री खोड़ खुड़ावण नै । आसी जणा

नहीं का अर्थ हां

पड़ोसिन ने नाइन के घर आकर उसकी बेटी से पूछा कि उसकी मां कहां नई और कब तक वापिस आयेगी ।

तब लड़की ने कहा—मेरी मां तो गई है विधाता की नकल करने के लिए । आयेगी

तौ कोनीं आवै अर नीं आसी जणा आ जावैला।

पाड़ौसण छोरी रा बोल तौ सुभट सुण्या, पर उणरी समझ में अेक ई बात नीं आई। गुद्दी लारै खाज खिणती पूछ्यौ — बाया, व्है जकी बात म्हनै साफ बता, आडियां मत पूछ, जरूरी कांम आई हूं।

तद छोरी होठां माथै मुळक नचावती बोली — म्हारी मां तौ गी है साम्हलै गांव जापौ सुवारण नै। आधेटै नंदी आडी आवै। जे नंदी आयगी तौ कोनीं आवै अर नीं आसी तौ आ जावैला!

तब तो नहीं आयेगी और नहीं आयेगी तो आ जायेगी।

पड़ोसिन ने लड़की के बोल तो स्पष्ट सुने, पर उसकी समझ में एक भी बात नहीं आई। गर्दन के पीछे खाज खिनते हुए पूछा— बिटिया, मुझे साफ साफ समझा, यों पहेलियां मत पूछ, मैं जरूरी काम से आई हूं।

तब लड़की ने अधरों पर मुस्कराहट नचाते हुए जवाब दिया—मेरी मां सामने वाले गांव बच्चा जनवाने गई है। बीच में नदी आती है। यदि नदी आ गई तो वह नहीं आयेगी और यदि नहीं आई तो वह आ जायेगी।

बेटौ किण रौ ?

अेक बांणिया रौ बेटौ परणीज्यां रै तेरह दिन पछै ई मंगळीक मौरत कढ़ाय बिणज रै बधावा सारू अळगै दिसावर सिधावण रौ मतौ करयौ तौ उणरी बींदणी लाज रौ घूंघटौ अळगौ लेय दाझता सुर में बोली— घर में नीं सास, सुसरा, नीं नणद अर नीं देवर-जेठ। पछै म्हनै किणरै भरोसै निपट अकेली छोड़नै जावौ।

सेठ इचरज करतौ बोल्यौ— भरोसै फेर किण रै ? अबूझ टाबर तौ हौ कोनीं जकौ हवेली में डर लागै।

बींदणी बिचाळै ई बोली— अबूझ टाबर व्हैती तौ किणी बात रौ डर नीं हौ! भलां

बेटा किसका ?

एक बनिये के बेटे ने शादी के तेरह दिन बाद ही शुभ मुहुर्त्त निकलवा कर व्यापार की वृद्धि के लिए दूर विदेश में जाने का निश्चय किया तो उसकी दुल्हिन ने लज्जा का अवगुंठन दूर हटा कर विदग्ध स्वर में कहा— घर में न तो सास-श्वसुर, न ननद और न देवर-जेठ। फिर मुझे किसके भरोसे निपट अकेली छोड़कर जा रहे हैं।

सेठ अचरज करते हुए बोले—भरोसे फिर किसके ? अबोध बालिका तो हो नहीं जो हवेली में डर लगे।

दुल्हिन बीच ही में बोली — अबोध बालिका होती तो किसी बात का डर नहीं

अे न्यारा रैय कळाप करण रा दिन है ! यूं अधर-बंब में छिटकाय सिधावौ तौ पैला हथ-ळेवौ ई क्यूं जोड़्यौ ?

सेठ कह्यौ– पण थांरै तोटौ कांई बात रौ ? तिमंजली हवेली , धान सूं भखारचां भरी, तिजोरी में अमोलक हीरा-मोती, अण-गिण गैणौ-गांठौ ! हींगळू ढोल्यै सुख सूं नेमम सूवौ अर मछरां करौ !

धणी सूं कंड़ौ चोज ! सेवट बींदणी दरजै लाचार होय नीं कंवण जोग बातां ई सुभट कैय दरसाई , पण सेठ किणी भाव नीं मांन्यौ । बांणियौ बिणज सूं मूंडौ फेरलै तौ सात पीढ़्यां रै दाग लागै । सोना-चांदी री माया आगै बापड़ा ढोल्या री माया रौ कांई ठरकौ ।

बींदणी साज-मांद री बात करी तद वौ कह्यौ के हवेली री पूठ लारै ई अड़ौअड़ उणरै बाळगोठिया सुनार रौ घर है ! पुख्ता भुळावण दियोड़ी के वौ सेठांणी रै कह्या नै लोपै नीं। अड़िये-बड़िये कंड़ौ ई अबखौ कांम पड़ैला तौ वौ सार देवैला । वड़ा साचा मित बिरला लाधै ।

सेठांणी घणौ वाद करयौ तौ वौ सेंमूंडै दो तीन वळा सोनार नै घरवाळी री भुळा-वण दे दी ।

धणी रै सिधावतां ई बींदणी रौ रूं रूं काळिंदर रै उनमांन फुफकारा मारण लागौ । कीकर सांयत वापरै ! आटौ औसणतां उणनै कांई भूंडी सूझी के कळकळती दाळ री देगची

था । क्या ये दूर रहकर झंझट करने के दिन हैं ? यों निराश्रित छोड़कर जा रहे हैं तो पहले पाणिग्रहण क्यों किया था ?

सेठ ने कहा—लेकिन तुम्हारे कमी किस बात की है ? तिमंजली हवेली, अनाज से तहखाने भरे, तिजोरी में अमूल्य हीरे-मोती, अगणित गहना । सुरंगे पलंग पर सुख से सोओ और मौज करो ।

पति से कैसी शंका ? आखिर बहू ने अत्यंत विवश होकर नहीं कहने योग्य बातें भी स्पष्ट कह सुनाई; पर सेठ तो किसी भी शर्त पर नहीं माना । बनिया व्यापार से मुंह मोड़ले तो उसकी सात पीढ़ियों पर दाग लगता है । सोने-चांदी की माया के सामने बिचारे पलंग की माया का क्या जोर ।

बहू ने बीमार पड़ने की बात चलाई तब उसने कहा कि हवेली के पीछे ही सटा हुआ उसके अजीज दोस्त सोनार का घर है । पूरी भुलावन दी हुई है कि वह सेठानी के कहे को नही टाले । वक्त बेवक्त कैसा भी टेढ़ा काम पड़ेगा तो वह सलटा देगा । वैसे सच्चे मित्र मुश्किल से मिलते हैं ।

सेठानी ने बहुत हठ किया तो उसने दो तीन बार सोनार के सामने ही घरवाली की भुलावन देदी ।

पति के विदा होते ही बहू का रोम रोम काले सांप की नाई फुफकारें भरने लगा । कैसे शान्ति मिले ! आटा गूंदते गूंदते उसे क्या बुरी सूझी कि देगची में उफनती

वेवणी में उंधाय दी । चूल्हा में पांणी खळकावतां ई उणरै हिवड़ा रा खीरा चेतन व्हैगा । माळिया री आडी खोल ढोल्या माथै पसवाड़ा पलटण लागी तौ च्यारूं पागां अर च्यारूं इसां-ऊपळा भिमरचोड़ा काळिंदर री गळाई फुण मारण लागा । नसा में गळिज्योड़ी, चितबावळी होय वा सोनार रै डागळै उतरी । निसंक माळियै री आडी मचेड़ियौ ।

सोनार नींद सूं भिभकनै हळफळायौ होय पूछ्यौ– कुण व्है ई ?

आवाज सुणीजी– आधी रात रा दूजौ कुण व्है सकै ।

वौ तौ सुणतां ई बोली पिछांण ली । माथौ ठणक्यौ ! अटकतौ अटकतौ नीठ बोल्यौ : रात रा आडौ नीं खोलूं । औ तौ मित साथै घात व्हैला ।

'अै आडा सूरज नै उडिक्या नीं करै ! पछै थांरा मित तौ म्हारै सैंमूंडै भुळावण देय गिया हा के थे म्हारै कह्या नै टाळौला नीं !'

तठा उपरान्त रात रौ अंधारौ आपरै तारां जड़िया हाथ सूं मतै ई आगळ खोली, मेड़ी में आपरै मतै ई घी रा दीवा भुपग्या । मधरौ अंधारौ, मधरौ चांनणौ ! ढोल्या रै च्यारूं पागां चार चांद इमरत बरसावण लागा !

उण रात पछै तौ मेड़ी री उण आगळ नै सूरज रौ ई संकौ मिटग्यौ । दिन रा ई मतै खुल जाती । मेड़ी में मतै ई अंधारौ भुप

दाल को नीचे पटक दी । जलते चूल्हे में पानी उंड़ेलते ही उसके हृदय में अंगारे दहकने लगे । ऊपर के कमरे का दरवाजा खोल पलंग पर करवटें बदलने लगी तो चारों पाये व चारों ईस-उपले छिड़े हुए सांप की नांई फन मारने लगे । नशे में उन्मत्त, पगली सी वह सोनार की छत पर उतरी । बेधड़क दरवाजा खटखटाया ।

सोनार ने नींद से भिभकते हुए अकचका कर पूछा—कौन है ?

आवाज सुनाई दी–आधी रात के समय दूसरा कौन हो सकता है ?

उसने तो सुनते ही बोली पहिचान ली । सिर भन्ना गया । अटकता अटकता मुश्किल से बोला—रात को दरवाजा नहीं खोलूंगा । यह तो मित्र के साथ दगा होगा ।

'ये दरवाजे सूरज का इंतजार नहीं किया करते । फिर तुम्हारे मित्र ने मेरे सामने तुम्हें बार बार यह भुलावन दी थी कि तुम मेरे किसी भी कहे को टालोगे नहीं ।'

तत्पश्चात् रात के अंधियारे ने अपने तारे-जड़ित हाथों से स्वयं अर्गला खोली । कमरे में स्वयमेव ही घी के दीपक प्रज्वलित हो उठे । हलका अंधेरा और हलका ही प्रकाश ! पलंग के चारों पायों पर चार चांद अमृत बरसाने लगे ।

उस रात के बाद कमरे की अर्गला को सूर्य की हिचक भी मिट गई । दिन को भी स्वयमेव खुल जाती । कमरे में स्वयमेव अंधेरा

जातो !

पैलड़ी रात ई ढोल्या री मंसा पूरीज्यां सेठांणी रै आसा मंडी ! नवमैं महिनैं उणरी कूख सूं जांणै चांद रौ ई जलम व्हियौ ! बीज रौ चांद बधै ज्यूं औ कूख रौ चांद ई बधण लागौ । गुडाळयां चालनैं थड़ी करण लागौ । रमण लागौ । बोलण लागौ अर दौड़ण लागौ !

सेठां नैं सिधायां चार बरस बीतग्या । उठी वै दिसावरां में सोना री माया घणी ई बधाई अर अठी सेठांणी ढोल्या री माया बधावण में ई कीं खांमी राखी नीं ।

अणचींत्या सिधाया, उणी भांत अेक दिन सेठ अणचींत्या ई आपरी हवेली रै बारणै ऊंट भेकायौ । सूरज मथारै चढ़ियोड़ौ हौ । सेठांणी खुद री हवेली रै तिपड़ै चांद रौ इमरत पीवती ही । अणछक कांनां ऊंट रौ अरड़ावणौ सुण्यौ । जांणै तोप दागी ।

सेठांणी रौ बेटौ चौक में रमतौ हौ । असैंधा मिनख नैं हवेली रौ आडौ भचेड़तां देख्यौ तौ दौड़नैं पाखती आयौ । पूछ्यौ — किणनैं बूझौ ? कांई कांम है ?

सेठ जवाब नीं देयनैं पाछौ उणनैं ई सवाल बूझ्यौ — थूं कुण है ?

छोरौ इचरज करतौ बोल्यौ — आ म्हारी इज तौ हवेली है ? पण थें किणनैं बूझौ आ बात तौ बताई कोनीं ।

सेठ सवाल बूझणियां छोरा रै उणियार। सांम्ही टुग टुग जोवण लागा । चार

प्रज्वलित हो उठता ।

पहली रात ही पलंग की चाह पूर्ण होते ही सेठानी के आशा ठहरी । नवमे महीने उसकी कोख से मानो प्रत्यक्ष चांद ही का जन्म हुआ । द्वितिया का चांद जिस तरह बढ़ता है उसी भांति कोख का वह चांद भी बढ़ने लगा । खेलने लगा । बोलने लगा और दौड़ने लगा ।

सेठ को गये चार वर्ष बीत गये । उधर उसने विदेश में सोने की माया खूब ही बढ़ाई और इधर सेठानी ने पलंग की माया बढ़ाने में भी कोई कसर बाकी नहीं रखी ।

जिस तरह अकस्मात् ही वह व्यापार के लिए रवाना हुआ, उसी तरह आज अकस्मात् ही उसने घर के सामने ऊंट भेकाया । सूरज सिर पर था । सेठानी हवेली के कमरे में चांद का अमृत पी रही थी । सहसा उसे ऊंट की आवाज सुनाई दी । मानो तोप दगी हो ।

सेठानी का बेटा चौक में खेल रहा था । किसी अपरिचित को हवेली का दरवाजा खटखटाते हुए देखा तो दौड़कर पास आया । पूछा : किससे मिलना चाहते हो ? काम क्या है ?

सेठ ने जवाब के बदले वापिस उसे ही सवाल पूछा — तू कौन है ?

लड़के ने अचरज करते हुए कहा — यह मेरी तो हवेली है । पर तुम किसे पूछ रहे हो, यह बात तो बताई ही नहीं ।

सेठ सवाल करने वाले लड़के की शक्ल को कुछ समय तक एक टक देखते रहे । चार

बरसां पैली रो अेक रूपाळो उणियारो वांरी आंख्यां सांम्ही झब झब पळकण लागो ! मां सूं बेटा रो उणियारो हूबोहूब मिळै। पण सेठांणी कोई समंचार क्यूं नीं दिया ? अेड़ा हरख री बात वा लुकाई क्यूं ?

सेठ उणनै खोळा में लेवता बोल्या—म्हूं इण हवेली रो धणी अर थारो बाप। दिसावर बिणज करण सारू गियो जको चार बरसां सूं पाछो आयो।

आ कैय वै उणरो लाड करण लागा, पण छोरो आड़ो लेय वांरै खोळा सूं हेटै उतरनै न्हाट्यो। के इत्ता में सेठांणी सिरै मोड़ा रो आडो खोल्यो। उणरै सांम्ही परतख सेठ ऊभा। सेठां रै सांम्ही साख्यात सेठांणी ऊभी। अेक छिण वास्तै तो मथारै पळकतो सूरज उणनै तवा रै उनमांन काळो लखायो, पण दूजै ई छिण वा आपो संभाळ लियो। देह रो समूळो करार अेकठ कर मुळकण री चेस्टा करी। लखायो के अेड़ो मुळक तो रोवणा बिचै ई दुखदाई व्है। हंसी रो ओटो छिळकावती बोली—डावी आंख फरूकण रा सुगन कदै ई कूड़ा नीं व्है ! पण थें तो म्हनै समचो ई नीं दियो !

सेठ कह्यो—सतवंती लुगायां नै धणी रै आवण री आपै ई ठा पड़ जावै, पछै समचो देवण री जरूरत।

सेठांणी रै काळजै जांणै तीर खुब्यो। अपूठी फुरनै नीठ मूंडा रै भावां नै ओव्या। हवेली रै धणी अर हथळेवा रै परण्या रै आयां

वर्ष पहिले का एक खूबसूरत चेहरा उनकी आंखों के सामने चमकने लगा। मां से बेटे की सूरत कितनी मिलती-जुलती है ! पर सेठानी ने यह खुश-खबरी क्यों नहीं भिजवाई ? ऐसे हर्ष की बात उसने क्यों छिपाकर रखी ?

सेठ उसे गोद में लेते हुए बोले—मैं हूं इस हवेली का मालिक और तेरा बाप ! दूर विदेश में व्यापार करने के लिए गया सो चार साल के बाद वापस लौटा हूं !

यह कहकर वह उसे प्यार करने लगा, पर लड़का रो-धोकर गोद से उतर कर भाग गया। कि इतने में सेठानी ने दरवाजा खोला। सेठ खड़े थे। और सेठ के सामने सेठानी खड़ी थी। केवल पल भर के लिए सिर पर दमकता सूरज उसे तवे के समान काला नजर आया, किन्तु दूसरे ही क्षण वह संभल गई। समूची शक्ति एकत्रित कर मुस्कराने की चेष्टा की। ऐसी मुस्कराहट तो रोने से भी अधिक कष्टप्रद होती है। तो भी उस समय हंसी प्रकट करना जरूरी था। हंसी को छलकाती हुई कहने लगी—बांई आंख फड़कने के शकुन कभी झूठे नहीं होते। पर तुमने तो मुझे कोई खबर ही नहीं दी।

सेठ ने कहा — सती-साध्वी औरतों को पति के आने का स्वयमेव ही पता चल जाता है, फिर सूचना भिजवाने की क्या दरकार !

सेठानी के कलेजे में जैसे तीर चुभा। मुड़ कर बडी मुश्किल से चेहरे को भावों को दबाया। हवेली के स्वामी और हाथ थामने

पछै सेठांणी नै रीत री लोंगटी तौ कूटणी इज पड़ी, पण उणरौ मन पूठ वाळा घर रै मांय भंवरा री गळाई चकारा देवतौ हौ। मन परबारी हाथां रसोई बणाई। गुळ रौ मंगळीक सीरौ बणायौ। पसवाड़ै बैठ बाव ढोळनै धणी री अणूंती सरबरा कीवी। सेठां नै घी गुळ सूं ई सवायौ सीरौ मीठौ लागौ। बरसां उपरांत भोजन रौ अंड़ौ स्वाद आयौ।

ब्याळू सूं निवड़ियां रै उपरांत सेठांणी ढोल्या सारू कीकर आपरै मन परबारी कोडाई व्ही, उणरी माया वा इज जाणै! उण दित माडै वहीर व्हिया धणी रै सांम्ही आज नीं तौ वा कीं आंमनौ ई जतळायौ अर नीं कीं रूसणौ ई करचौ। सोळै सिंणगार करनै ढोल्या री रीत साजण में ई कीं खांमी नीं राखी, पण सेठां नै ढोल्या री तेवड़ सीरा जैड़ी मीठी लागणी तौ अळगी, सांम्ही खारी लागी। माटी री लोथ सूं कीकर रळी रौ आणंद पूरीजै!

ढोल्या सूं हेटै उतर अेक अंड़ौ सवाल पूछ्यौ के जिणरौ पडूतर बिरळी लुगायां आपरा धणी नै दे सकै! सेठांणी नै आळिया-टोळिया करतां देख सेठ कह्यौ—थूं डर मत। अपां महाजन हां। ऊंचा लोग हां। गिवारां री गळाई अंड़ी-वैड़ी बातां माथै कजिया नीं करां। रीस नै ओटणीं जांणां। थनै सोनार री सौगन म्हनै व्ही जकी साची बात बताय दे।

वाले पति के आने पर सेठानी को दिखावटी लीक तो पीटनी ही पड़ी, किन्तु उसका मन पीछे वाले घर के भीतर भौंरे के समान चक्कर काट रहा था! खुद की इच्छा के बावजूद उसने रसोई बनाई। गुड़ का मांगलिक हलुवा बनाया। पास में बैठकर बयार की। पति का सत्कार किया। सेठ को घी-गुड़ डाला उससे भी कहीं अधिक मीठा वह हलुवा लगा। वर्षों बाद ऐसा स्वादिष्ट भोजन मिला।

रात का भोजन सम्पूर्ण करने के बाद सेठानी इच्छा न होते भी कैसे पलग की सज्जा के लिए तैयार हुई, उसकी माया वही जाने। उस दिन जबरदस्ती रवाना हुए पति के सम्मुख आज उसने न तो कृत्रिम गुस्सा ही प्रकट किया और न वह रूठी ही। सोलह श्रृंगार करके उसने पलंग का ढर्रा निभाने में भी कोई कसर नहीं रखी, लेकिन सेठ को सज्जा का सत्कार हलुवे जैसा मीठा लगना तो दूर, उसे उलटा कड़ुवा लगा। मिट्टी की निर्जीव-सी लाश के साथ सहवास का आनंद मिले भी तो कैसे?

पलंग से नीचे उतर कर उसने एक ऐसा सवाल पूछा कि जिसका सच्चा उत्तर बिरली औरतें ही अपने पति को दे सकती हैं। सेठानी को आगा-पीछा करते देख सेठ ने कहा: तू डर मत। अपन महाजन हैं। बड़े लोग हैं। गवारों की तरह ऐसी-वैसी बातों पर टटा-फिसाद नहीं करते। क्रोध को दबाना जानते हैं। तुझे सोनार की कसम जो भी हुआ, मुझे सच बता दे।

सेठांणी रैं रूं रूं में जांणै खीरा चेतन व्हैगा ! गोठिया री कांण राखै के धणी री। धणी व्हैतौ तौ जीवता कंचन नैं छोड माटी रैं सोना रौ लोभ क्यूं करतौ ? आज सोगन दिरावै उणनैं उण दिन दिसावर सिधावतां आ बात सोचणी ही ! सोगन री मरजादा राखण सारू धणी नैं ई साची बात बतावणी पड़ैला !

साथण नैं सुणावै ज्यूं आपरा धणी नैं साची बात बताय दी। कीं चोज नीं राख्यौ। बड़ा इचरज री बात के सेठ ई सगळी बात इण भांत सुणी, जांणै किणी दूजी लुगाई रैं मूंडा सूं आ वारता सुणै। माया रौ लोभ अर बिणज री समझ अैड़ी इज व्हिया करै, इण में अजोगती कीं बात नीं !

उणीज ठीमर अर ठाडा सुर में सेठ आपरा मित सोनार नैं कह्यौ — थूं म्हारौ बाळ-गोठ्यौ। थनैं भाई सूं वत्तौ जांण्यौ ! थूं औ घात कीकर करयौ ?

सोनार ई सोच्यौ के मांडणा उघड़णा हा जकौ उघड़ग्या, अबै छिपला खावण में कीं सार नीं। निसंक जबाब दियौ— लुगाई सूं वत्तौ मित नीं व्हिया करै। जद वा घात करणा में नीं चूकी पछै म्हारी कांई जिनात ! अर थें तौ सेंमूंडै भुळावण देयनैं गिया हा के म्हैं सेठांणी रैं कह्या नैं नीं टाळूं। म्हैं तौ बरजणा में पाछ नीं राखी, पण वा नीं मांनी जिणरौ तौ म्हैं ई कांई करूं ? म्हनैं दोसण देवणौ बिरथा है।

सेठानी के रोम रोम में अंगारे से दहक उठे। प्रेमी की मर्यादा रखे या पति की। पति होता तो उस दिन जीवित कंचन-काया को छोड़ कर मिट्टी के सोने का लोभ क्यों करता ? आज यह कसम दिलाने वाले को उस दिन विदा होते समय यह बात सोचनी थी। शपथ की मर्यादा निबाहने के लिये अब तो सच्ची बात बतानी ही पड़ेगी।

किसी सहेली को कह रही हो उसी तरह अपने पति को सारी बात बता दी। बड़े आश्चर्य की बात कि सेठ ने भी सारी बात उसी तरह सुनी जैसे किसी अन्य औरत के मुंह से यह दास्तान सुन रहा हो। माया का लोभ और व्यापार की तीक्ष्ण वुद्धि ऐसी ही हुआ करती है, इसमें कुछ भी अनहोनी बात नहीं।

उसी गंभीर व ठण्डे स्वर में सेठ ने अपने दोस्त सोनार से कहा — तू मेरा बचपन का घनिष्ठ मित्र है। तुझे भाई से भी बढ़कर माना। तूने यह घात कैसे किया ?

सोनार ने सोचा कि जब सारी बातें खुलकर सामने आ गई है तो अब आनाकानी करने में कुछ सार नहीं। निर्भय होकर जवाब दिया : पत्नी से बढ़कर मित्र नहीं हुआ करता। जब वह भी घात करने में नहीं चूकी तो मेरी क्या हस्ती। और तुमने तो रूबरू भुलावन दी थी कि मैं सेठानी के किसी भी कहे की न टालूं। मैंने तो उसे समझाने में कोई कमी नहीं रखी, किन्तु वह न मानी जिसका तो मैं ही क्या करूं। मुझे दोष देना वृथा है।

सेठ अैड़ी समझदारी री बात करैला, सोनार नै सपना में ई इणरौ बेरौ नीं हो । बोल्या — दोसण किणी में नीं काढूं । नीं सेठांणी में अर नीं थांमें । म्हैं तौ म्हांमें ई दोसण नीं मांनूं ! व्ही जकौ तौ व्ही , पण अबै अपां में रांझौ नीं पड़ै तौ सावळ । थारै अंस रौ व्हैतां थकां ई बेटा रौ बाप म्हैं बाजूंला । म्हारौ बेटौ म्हनै सूंप दै । चार बरसां रौ बेटौ चार बरसां पैली बिणज करणौ सीखैला ।

सोनार देख्यौ के जद सगळी बात चौड़ै व्हैगी तौ पछै असली बात सारू क्यूं संकौ राखूं । कह्यौ— जद बेटौ म्हारौ है तौ कोई दूजौ इणरौ बाप क्यूं बाजै ? म्हैं जीवतौ बैठौ, अबै तौ मरचां ई इण टाबर नै नीं सूंपू । मां बिचै ई बेटा माथै बाप रौ हक वत्तौ व्है । सगळी बातां में लोभ करणौ आछौ कोनीं !

पण सेठ किणी भाव आपरौ लोभ नीं छोड्यौ । नीं सोनार ई नीचौ न्हाकी । रांझौ अळूझियौ पण अळूझियौ । सेवट सोनार अेक बात सारू हांमळ भरी के सेठांणी न्याव करै सौ कबूल । दोनूं जणा उणरै पाखती गिया । आप आपरौ हक जतायौ । सगळी बातां सुणनै सेठांणी री तौ अकल ई चकरीजगी । कदास दुनियां थरपिवां पछै ई किणी लुगाई नै अैड़ौ न्याव निवेड़ण रौ मौकौ नीं आयौ व्हैला ।

आरण में सिळग्यां कैड़ा ई जूंना लोह

सेठ ऐसी समझदारी की बात करेगा , सोनार ने स्वप्न में भी इसकी कल्पना नहीं की थी । बोला — मैं किसी में भी दोष नहीं निकालता । न सेठानी में और न तुझमें । मैं तो स्वयं को भी दोषी नहीं ठहराता । हो गई सो हो गई, किन्तु अब अपन दोनों में कोई झगड़ा न हो तो अच्छा । तेरे अंश से पैदा होने पर भी बेटे का बाप तो मैं ही कहलाऊंगा । मेरा बेटा मुझे सौंप दे । चार वर्ष का बेटा चार साल पहिले व्यापार करना सीखेगा ।

सोनार ने यह देखा कि जब सारा भेद प्रकट हो गया है तो असली तथ्य को क्यों छिपाये रखू । बोला —जब बेटा मेरे अंश से पैदा हुआ है तो कोई दूसरा इसका बाप क्यों कहलाये ? मैं जब तक जिन्दा हूं , इस बच्चे को मरने के दम तक नहीं छोड़ूंगा । मां से भी बढ़कर पिता का पुत्र पर अधिकार होता है । सभी बातों में लोभ करना अच्छा नहीं ।

लेकिन सेठ ने किसी कीमत पर अपना लोभ नहीं छोड़ा । न सोनार ने ही कोई बात मानी । झगड़ा तो काफी उलझ गया । आखिर सोनार एक बात के लिए रजामंद हुआ कि सेठानी इसका जो भी न्याय करेगी वह उसे मंजूर होगा । दोनों उसके पास गये । अपना अपना हक जतलाया । सारी बातें सुनकर सेठानी की तो बुद्धि ही चकरा गई । शायद सृष्टि की रचना के बाद किसी भी औरत को ऐसा न्याय करने का मौका नहीं मिला होगा !

भट्टी में जलने पर कैसे ही पुराने लोहे

रौ काट भसम व्है जावै, उणी भांत औ न्याव झेल्यां सेठांणी रै जूंना संस्कारां रौ काट बळनै भसम व्हैगौ। कूड़ी लाज-सरम अळगी वगाय कैवण लागी — सेठ तौ म्हारा धणी है। सोनार म्हारौ वाहेलौ है। जद दोनां नै ई म्हारै हाथां औ न्याव निवेड़णा री बात कैवतां, आप आपरौ हक जतळावतां थोड़ी घणी ई लाज नीं आई तौ पछै म्हैं ई लाज रौ दिखावटी बेबलौ क्यूं राखूं ? अबै म्हनै किणरौ आंकस !

पछै धणी रै सांम्ही देखनै कैवण लागी—थे माया रा लोभी लुगाई री वेह साथै ई फाटकौ करणा में चूकौ नीं। पछै थांनै किणी लुगाई सूं परणीजण रौ ई हक कांई ! बेटा माथै हक जतावणिया इण भांत दिसावर नीं सिधाया करै। म्हैं मांनती तौ थांरौ ढाकौ ढक जातौ। नीं व्हैतां थकां ई थे इणरा बाप बाजता। पण अबै तौ कीं बात छांनै नीं री तौ पछै म्हैं थांनै म्हारा धणी ई क्यूं मांनूं ? जद म्हैं धणी ई नीं मांनूं तौ पछै बेटा रा बाप बाजण में कीं आंणी-जांणी नीं।

तठा उपरांत उणी निसंक भाव सूं वा सोनार रै सांम्ही देखनै कैवण लागी — अपां तीनूं ई जांणा के बेटौ थांरै अंस रौ है। म्हनै खुद भगवांन ई पूछै तौ म्हैं सपना में ई इण साची बात सारू नीं नटूं। पण म्हारै बेटा माथै बाप रौ हक जतावणियौ उणरी मां नै घर री धणियांणी मांनै तौ म्हे इण रांभा रौ साचौ न्याव कर सकूं।

का जंग भस्म हो जाता है, उसी तरह यह न्याय झेलने के बाद सेठानी के पुराने संस्कारों का जंग भी जलकर भस्म हो गया। झूठी शर्म-हया को दूर फेंक कर वह कहने लगी — सेठजी तो मेरे पति हैं। सोनार मेरा प्रेमी है। इस बात का अपना अपना अधिकार जतलाते हुए, यह न्याय मेरे सुपुर्द करते हुए, जब दोनों को भी कोई शर्म नहीं आई तो फिर मैं ही क्यों लज्जा का दिखावटी मुखौटा लगाये रहूं। अब मुझ पर किसका अंकुश !

फिर पति की ओर देखकर कहने लगी— तुम माया के लोभी औरत के साथ सट्टा करने में भी नहीं हिचकते। फिर तुम्हें किसी औरत को ब्याहने का हक ही क्या है ? पुत्र पर हक जतलाने वाले यों विदेश नहीं जाया करते। मेरे चाहने पर तुम्हारा मुलम्मा कायम रह सकता था। न होने पर भी तुम ही इसके पिता कहलाते। अब कुछ भी छिपा नहीं रहा तो फिर तुम्हें अपना पति ही क्यों मानूं ? यदि मैं तुम्हें स्वामी नहीं मानती तो फिर इस पुत्र के पिता कहलाने में भी कोई तथ्य नहीं।

तत्पश्चात् उसी निशंक भाव से वह सोनार की तरफ देखकर कहने लगी—अपन तीनों ही जानते हैं कि यह बेटा तुम्हारे अंश का है। स्वयं ईश्वर भी पूछे तो मैं स्वप्न में भी इस बात से इन्कार नहीं करूंगी। पर मेरे पुत्र पर बाप का अधिकार जतलाने वाला मुझे घर की मालकिन मानने को तैयार हो तो मैं इस झगड़े का सच्चा न्याय कर सकती हूं।

आ बात सुणतां ई सोनार रौ मूंडौ तौ थाप खायग्यौ। जांणं कोई कंवळी उणरं गळा सूं अमोलक हार झपटनं उड़गी व्है। पगां री आंगळियां रै सांम्ही नीचं भाळतौ कैवण लागौ—बेटौ तौ म्हारा अंस रौ है जकौ म्हारौ इज रैवैला। मरयां ई किणी नै नीं सूंपूं। पण उणरी मां नै घर री धणियांणी बणाऊं अंड़ौ बावळौ म्हैं कोनीं। जकौ आपरै धणी रौ ई नेम नीं पाळयौ, वा म्हारा सूं कद प्रीत निभावैला। ढोल्या री अंड़ी डेळीचूक लुगाई रौ डेंगरौ म्हैं गळै नीं बांधूं। अं तौ वगत वगत रा दाव है।

यह बात सुनते ही सोनार का मुंह उतर गया। जैसे कोई चील उसके गले से अमूल्य हार झपट कर आकाश में उड़ गई हो। पैर की अंगुलियों की तरफ नीचे देखता हुआ कहने लगा—बेटा तो मेरे अंश का है सो मेरा ही रहेगा। मरने पर भी दूसरे के हवाले नहीं करूंगा। लेकिन उसकी मां को घर की मालकिन बनाऊं, ऐसा बुद्धू मैं नहीं। जो अपने पति के साथ भी सच्ची नहीं रही, वह मेरे साथ क्या प्रीति निबाहेगी। पलंग की ऐसी भूखी औरत का फंदा अपने गले में क्यों डालूं? ये तो वक्त बक्त के दांव हैं।

सांम्ही ऊभा वाहेला रै मूंडा सूं आखी बात सुण्यां ई सेठांणी नै औ विस्वास नीं व्हियौ के कोई जीवतौ मिनख अंड़ा बोल उलाक सकै। विस्वास करै जंड़ी बात नीं व्हैतां थकां ई उणनै माडै विस्वास करणौ पड़यौ। अंड़ा विस्वास सूं माड़ौ दुनियां में दूजौ कोंई दुख नीं व्है।

सामने खड़े प्रेमी के मुंह से सारी बात स्पष्ट सुनने पर भी सेठानी को यह विश्वास नहीं हुआ कि कोई जीवित मनुष्य ये बोल उगल सकता है! विश्वास करे जैसी बात नहीं होने पर भी उसे जबरदस्ती विश्वास करना पड़ा। ऐसे विश्वास से बदतर इस दुनिया में दूसरा कोई दुख नहीं है।

दोनूं जणा न्याव करावण सारू सेठांणी रै पाखती आया हा, पण वौ रांझौ तौ वत्तौ अळूझग्यौ। सेठांणी कह्यौ — कूख सूं जलमियोड़ौ टाबर जीवै जित्तै मां री खोळौ नीं छोड़ सकै। बेटौ म्हारौ है अर म्हारौ इज रैवैला।

वे दोनों न्याय कराने के लिए सेठानी के पास आये थे, किन्तु यह झगड़ा तो और अधिक उलझ गया। सेठानी ने कहा—कोख से पैदा हुआ बच्चा जीवन पर्यन्त मां की गोद नहीं छोड़ सकता। बेटा मेरा है और मेरा ही रहेगा।

लाज-बायरी लुगाई रै मूंडा सूं अं नीमण बोल सुणनै दोनूं मोट्यारां रै करार रै जांणं स्यार लागी। इणरौ साचौ न्याव नीं व्है जित्तै माठ नीं झेलैला।

ऐसी निर्लज्ज औरत के मुंह से ये पुख्ता बोल सुनकर दोनों पुरुषों के शौर्य पर जैसे कोड़ा लगा हो। जब तक इसका सच्चा न्याय नहीं होगा वे तब तक सब्र नहीं करेंगे।

देस रा धणी राजा रै सिवाय औ न्याव कुण निवेड़ सकै ! तीनूं जणा दरबार में जाय फरियाद करी। राजाजी न्याव रा सिंघासण माथै बिराज्या। दीवांण कह्यौ — व्ही जकी साची बात बतावौ, राजाजी दूध रौ दूध अर पांणी रौ पांणी कर देवैला। इण राज रै न्याव रौ देवता ई ईसकौ करै।

सेठ नै पूछ्यौ तौ वौ कैवण लागौ — अंदाता, आपनै मुद्दा री बात बतावूं। कुठौड़ पीड़ अर सुसरौजी वैद ! कांई फरियाद करू ! म्हारै आंगणा रै थांणै रुप्योड़ी वेलड़ी वधतां वधतां इत्ती वधी के उणरौ तांतौ पड़ौसी सुनार रा घर में पसरग्यौ। संजोग री बात के सुनार रै घर वाळा तांता में फळ लाग्यौ। वौ तोड़ेनै फळ खायग्यौ। इण बात रौ म्हैं कीं उजर नीं करू, पण फळ रा बीज तौ पाछा म्हारै हाथ लागणा चाहीजै। बीजां रौ हकदार तौ म्हैं हूं। अंदाता, इण में कीं कूड़ व्हे तौ फरमावौ सौ डंड भरूं।

सुभट वारता नै धणी सांमी में समझाई तौ सेठांणी उणी लहजा में कैवण लागी — निव-निवायौ दूध जावणी में उथामियौ जद म्हनै ठा पड़ी के घरै जावण कोमीं। म्हैं जावण लेवण सारु सोनार रै घरै गी। जावण लायनै दूध जमायौ। म्हैं नीं घालूं जित्तै उणरौ हक तौ छाछ में ई कोनीं, पण वौ तौ माखण अर झिसरी में हक जतावै। औ कठारौ न्याव !

पछै सोनार री बारी आई। कैवण

देश के स्वामी राजा के सिवाय इसका न्याय कौन कर सकता था ! तीनों ने दरबार में जाकर फरियाद की। राजाजी न्याय के सिंहासन पर बैठे। दीवान ने कहा— जो हुई सो सच्ची बात बतादो, राजाजी दूध का दूध और पानी का पानी कर देंगे। इस राज्य के न्याय से देवता भी ईर्ष्या करते हैं।

सेठ को पूछा तो वह कहने लगा — अन्नदाता, आपको मुद्दे की बात बताऊं। कुठौड़ दर्द और श्वसुरजी वैद्य। क्या फरियाद करूं ! मेरे आंगन में बोई हुई बेल इतनी बढ़ी कि उसका तांता पड़ौसी सोनार के घर तक फैल गया। संयोग की बात कि सोनार के घरवाले तांते में फल लगा। वह उसे तोड़ कर खा गया तो कोई बात नहीं। इस बात का मुझे कोई उज्र नहीं, पर फल के बीज तो वापिस मेरे हाथ लगने चाहिये। बीज पर अधिकार तो मेरा है। अन्नदाता, इसमें कोई भी बात झूठ हो तो मैं कैसा भी दंड भुगतने को तैयार हूं।

स्पष्ट बात न कह कर जब पति ने इशारे में समझाने की चेष्टा की तो सेठानी भी उसी लहजे में कहने लगी— सुहाता गरम दूध बरतन में जमाने लगी तो मुझे पता चला कि घर में जावन नहीं है। मैं जावन लेने के लिए सोनार के घर गई। जावन लाकर दूध जमाया। यदि मैं नहीं डालू तो उसका हक छाछ में भी नहीं है, लेकिन वह तो मक्खन और घी पर भी अधिकार जतलाता है। यह कहां का न्याय !

फिर सोनार की बारी आई। कहने

लागी–अंदाता, म्हारै पाखती अेक अमोलक मोती हो। पण संजोग री बात के उण जोग रखणनै म्हारै पाखती डब्बी नीं हीं। म्हैं मानूं के सेठांणी म्हनै मोती रखण सारू डब्बी दी। पण डब्बी साटै वा मोती री हक जतावै, औ कठारौ न्याव !

तीनां री आ अद्भुत फरियाद सुणनै राजाजी धुराधुर सगळी परधै री अकल चकरीजगी। बातां तौ तीनूं ई साची दीसै, पछै कांई न्याव निवेड़ै ! सगळा दरबारी हार थाक्या पण कीं बात समझ में नीं आई। औ न्याव नीं निवेड़्यौ तौ सगळा राज री सेखी निकळ जावैला।

राजकंवरी झिरोखा में बैठी तीनां री फरियाद सुणै ही। राजाजी नै गताघम में अळूझिया देख वांरै माखती आई। अर वा साचौ न्याव निबेड़ियौ। बोली — थें तीनूं जणा सांनो सांनी में ई आप आपरी फरियाद करी। सांनी रै समचै म्हैं साची बात रौ मरम समझगी। मोट्यार इणरौ न्याव नीं निवेड़ सकै। साची बात नीं फळ री है, नीं मोती री अर नीं जावण री। पछै आं सांनियां रै ओळूं-दोळूं माथौ पचावणा में कीं सार नीं। साचांणी किणी दिन बेलड़ो रै तांता री अर अमोलक मोती री बात पजै जद पाछा इण दरबार में हाजर व्हैजौ—म्हैं सेठां नै बीज री ठौड़ आखौ फळ ई दिराय दूंला अर सोनार नै उणरौ मोती। डब्बो साटै मोती कदै ई नीं दिरीजैला। पण रांझा रा बेटा माथै

लगा– अन्नदाता, मेरे पास एक अमूल्य मोती था। पर संयोग की बात उसके योग्य मेरे पास वैसी डिबिया नहीं थी। मानता हूं कि सेठानी ने मुझे मोती रखने के लिए डिबिया दी। पर डिबिया के बदले वह मोती पर अधिकार जताये तो यह कहां का न्याय ?

तीनों की यह अद्भुत फरियाद सुनकर राजाजी के साथ समस्त दरबारियों की अक्ल चकरा गई। बातें तो तीनों की सच्ची प्रतीत हो रही हैं, फिर क्या न्याय किया जाय ! सभी दरबारी हार गये पर कुछ भी बात समझ में नहीं आई। यदि यह न्याय नहीं किया तो सारे राज्य की खिल्ली उड़ जायेगी।

राजकुमारी झरोखे में बैठी तीनों की फरियाद सुन रही थी। राजाजी को असमंजस में देख वह उनके पास आई। और उसने ही सच्चा न्याय किया। कहने लगी — तुम तीनों ने इशारे इशारे में अपनी अपनी फरियाद सुनाई। केवल इशारे के जरिये मैं सच्ची बात का मर्म समझ गई। पुरुष इसका न्याय नहीं कर सकते। सच्ची बात न फल की है, न मोती की और न जावन की। फिर इन संकेतों के इर्द-गिर्द मगजपच्ची करने में क्या सार ! सचमुच किसी दिन बेल के तांते और अमूल्य मोती की समस्या उत्पन्न हो तो तुम फिर कभी दरबार में हाजिर होना, मैं सेठ को बीज के बदले फल भी दिलवा दूंगी और सोनार को उसका मोती। डिबिया की एवज में मोती कोई भी नहीं दिलवायेगा। किन्तु

फगत सेठांणी रौ हक है, जै इण में कीं चीं-चपड़ करी तौ खालड़ी में लूंण भरायां बिना नीं छोड़ूंला। थां दोनां रा लखण ओळख लिया, माजना सूं घरै जाय मां नै उणरौ बेटौ सूंप दौ।

इस झगड़े के पुत्र पर केवल सेठानी का हक है, यदि इसमें हील-हुज्जत की तो चमड़ी में नमक भरवाये बिना नहीं छोड़ूंगी। तुम दोनों के लच्छन पहिचान लिये, सीधे घर जाकर मां को उसका बेटा सौंप दो।



कथात्मक पहेली—एक टिप्पणी

लोक-कथाओं के वैविध्य में प्रहेलिकात्मक कथा-रूप को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। ऐसी कथाओं के अंत में एक समस्या उपस्थित की जाती है, जिसके दो या उससे अधिक निदान प्राप्त होते हैं। कथा के ही मुख्य पात्र को उस समस्या का उत्तर देना पड़ता है और उत्तर के साथ ही कथा समाप्त हो जाती है। बैताल-पच्चीसी की कथाओं का कलापूर्ण और सुन्दर गठन इसी शैली में हुआ है। राजस्थान के जन-जीवन में भी ऐसी प्रहेलिकात्मक कथाओं की कमी नहीं है। चौबोली एक ऐसी ही कथा है।

अपनी बात को स्पष्ट करने की दृष्टि से एक कथा का संक्षिप्त उदाहरण देना उचित होगा। एक समय चार मित्र यात्रा पर निकले। रात्रि को पहरा देने की दृष्टि से सबसे पहिले खाती बैठा। उसने एक लकड़ी से स्त्री की पुतली बना डाली। फिर दर्जी पहरे पर आया उसने पुतली को वस्त्र पहिना दिये। फिर सुनार आया उसने गहने बनाकर पहिना दिये। बाद में ब्राह्मण का पहरा था उसने उसमें प्राण संचारित कर दिये। सुन्दर पुतली

से निर्मित सुन्दर स्त्री से विवाह के लिए चारों मित्र तैयार थे। अब कौन उसका पति हो सकता था ? यह समस्या उपस्थित होती है। खाती विधाता के स्थान पर था, दर्जी भाई के स्थान पर और ब्राह्मण पिता के स्थान पर रहा। सुनार चूंकि गहना घड़ता है और सामान्य पति के कर्त्तव्य को निभाता है अतः वही पति बन सकता है।

इस एक कथा के संकेत द्वारा पाठक सहज ही ऐसी अनेकानेक कथाओं को याद कर सकते हैं। वस्तुतः इस प्रकार की सभी कथाओं में एक घटना के माध्यम से प्रहेलिकात्मक समस्या उत्पन्न की जाती है।

किन्तु इसी परंपरा में आने वाली कुछ अन्य प्रकार की कथाए भी हमारे सामने आती हैं। इन कथात्मक पहेलियों का प्रयोजन ठीक वही होता है जो एक सामान्य एवं सहज पहेली में निहित रहता है अर्थात् प्रश्न एवं उत्तर के साथ कथा का तत्व कम और पहेलियों का गुफन अधिक। ऐसी कथाओं का नामकरण क्या हो ? यह भी एक समस्या है। प्रथम प्रकार की कथा में घटना एवं पात्र तत्व न केवल महत्वपूर्ण है किन्तु उनके द्वारा घटित परिस्थिति में ही विशिष्ट समस्या का जन्म होता है। जब कि दूसरी प्रकार की कथा में घटना एवं पात्र, पहेली को कहने की सुविधा के लिए ही सर्जित किये जाते हैं। इस सूक्ष्म विभेद के कारण दोनों प्रकार की कथाओं में वैभिन्न्य आ जाता है। भिन्नता केवल सतही है किन्तु ठीक अपनी सृजनात्मक प्रेरणा के मूल में ही विभक्त है। प्रथम पहेलिकात्मक कथा में कथा को कहने का तत्व मुख्य है—जब कि दूसरी में पहेली पूछना ही प्रमुख उद्देश्य है। अन्य शब्दों में कहें तो पहली कथा में पहेली को शैली का कथा-सौन्दर्य के लिए उपयोग किया गया है किन्तु दूसरी प्रकार की पहेली के पूर्ण तत्वों ने अपने सौन्दर्य को बढ़ाने के लिए कथात्मक अंश का सहारा लिया है। पहली स्थिति में पहेली कथा का विशेषण है और दूसरे प्रकार में कथा पहेली का विशेषण है।

इस अंक में चार कथात्मक पहेलियों को प्रकाशित किया जा रहा है। चारों कथाओं को पढ़ कर सहज ही इस निर्णय पर पहुंचा जा सकता है कि पहेली की गूढ़ भाषा में बात-चीत करने के फलस्वरूप ही ऐसी कथाओं का निर्माण हुआ है। पहेलियों के बीच से कथांश को हटा देने के बाद जो कुछ बच रहेगा—वह शुद्ध पहेली ही होगी।

ऐसी कथात्मक पहेलियों का राजस्थान के जन-जीवन में एक विशिष्ट प्रयोजन पूर्ण उपयोग भी है। विवाह अथवा मुकलावे के अवसर पर, वर जब अपने ससुराल में होता है तो उसकी सालियां, सालों की पत्नियां, वधू की सहेलियां आदि मिलकर पहेलियां पूछती हैं। ऐसी कुछ पहेलियों के गेय रूपों को लोक संस्कृति में प्रकाशित किया जा चुका है। उसी क्रम

में यह जानकारी भी मिली कि कथात्मक पहेली को पूछने का रिवाज भी इसी अवसर पर प्रचलित है। एक विशिष्ट कथा तो निश्चय ही उसी अवसर की है जिसमें हाथ में घर, मुंह में घर, घर में घर एवं घर के पास घर की बात कही गई है।

विवाह के अवसर पर पहेली का अंत कथा के साथ ही नहीं हो जाता। कथा के अनुसार चार एक समान सज्जित लड़कियां चार थालियों में क्रमशः मेंहदी, चूड़ा, नारियल एवं इत्र की शीशी लेकर उपस्थित होती हैं। वर के सामने प्रश्न है कि वह इन थालियों वाली चारों लड़कियों में से अपनी वधू का चयन करले। मेंहदी का अर्थ है कि लड़की के मेंहदी लग चुकी अर्थात् विवाहित है। चूड़े का अर्थ है उसको चूड़ा पहिना दिया गया, वह भी विवाहित है। नारियल का अर्थ है कि वह गर्भवती है, अतः वह भी विवाहित है। वस्तुतः इत्र की शीशी वाली ही उसकी पत्नी है। यह चयन का क्रम नाटकीय रूप से प्रस्तुत किया जाता है।

अभी तक जो सूचनाएं संग्रहीत की जा सकी हैं—उनसे यही ज्ञात हो पाया है कि इसी अवसर पर वधू-पक्ष की विभिन्न महिलाएं कुछ स्वांग लाकर पहेलियां भी पूछा करती हैं। स्वांग का रूप क्या है और उसके साथ पहेली किस प्रकार एक नाट्य-तत्व के साथ जुड़ गई है, यह पक्ष भी संभवतया बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो।

इस अंक में प्रकाशित अन्य कथात्मक पहेलियों का गठन भी उपमा, रूपक और अन्य कल्पना मिश्रित अभिव्यक्तियों के साथ हुआ है। ऐसी कथात्मक पहेलियों का संग्रह अभी तक लोक साहित्य के अध्ययनों में नहीं आ पाया है और इसीलिए इनकी अभी बहुत कुछ जानकारी भविष्य के गर्भ में ही माननी चाहिये।

कोमल कोठारी

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

शोध, सन्दर्भ एवं दुर्लभ्य महत्वपूर्ण ग्रंथों का
राजस्थान पुरातन ग्रंथमाला के अंतर्गत प्रकाशन

प्रकाशित ग्रंथों की सूची

राजस्थानी - हिन्दी

प्रकाशन नाम	सम्पादक	मूल्य — रुपये.
कान्हड़दे प्रबंध	प्रा० के० बी व्यास	१२. २५
क्यामखां - रासा	डा० दशरथ शर्मा अगरचंद और भंवरलाल नाहटा	४. ७५
लावा - रासा	श्री महताब चन्द खारेड़	३. ७५
बांकीदास री ख्यात	श्री नरोत्तमदास स्वामी	५. ५०
राजस्थानी साहित्यसंग्रह भाग १	श्री नरोत्तमदास स्वामी	२. २५
राजस्थानी साहित्यसंग्रह भाग २	डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	२. ७५
कवीन्द्र - कल्पलता	रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत	२. ००
जुगल विलास	रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत	१. ७५
भगत - माळ	श्री उदयराज उज्जवल	१. ७५
राजस्थान पुरातत्त्व मंदिर के हस्त-लिखित ग्रंथों की सूची भाग १	पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य	७. ५०
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान हस्त-लिखित ग्रंथों की सूची भाग २	श्री गोपालनारायण बहुरा	१२. ००
राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथ सूची भाग १	पद्मश्री मुनि जिनविजय, पुरातत्त्वाचार्य	४. ५०
राजस्थानी हस्तलिखित ग्रंथ सूची भाग २	डा० पुरुषोत्तमलाल मेनारिया	२. ७५
स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण ग्रंथ संग्रह सूची	श्री गोपालनारायण बहुरा	६. २५
मुहता नैणसी री ख्यात भाग १	श्री बदरीप्रसाद साकरिया	८. ५०
मुहता नैणसी री ख्यात भाग २	श्री बदरीप्रसाद साकरिया	६. ५०
मुहता नैणसी री ख्यात भाग ३	श्री बदरीप्रसाद साकरिया	८. ००
मुहता नैणसी री ख्यात भाग ४	श्री बदरीप्रसाद साकरिया	८. ७५
राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग ३	श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी	५. ५०
सूरजप्रकाश भाग १	श्री सीताराम लाळस	८. ००
सूरजप्रकाश भाग २	श्री सीताराम लाळस	६. ५०
सूरजप्रकाश भाग ३	श्री सीताराम लाळस	६. ७५
नेहतरंग	श्री रामप्रसाद दाधिच	४. ००
मत्स्य प्रदेश की हिन्दी साहित्य को देन	डा० मोतीलाल गुप्त	७. ००

पुस्तक विक्रेताओं को २५ प्रतिशत कमीशन दिया जाता है

[राजस्थान सरकार द्वारा प्रसारित]

सार्वजनिक संपर्क कार्यालय द्वारा प्रसारित डी. ५५१ । ६७ बी. १६७५६ बी.

शोध-पत्रिका

सम्पादक : डॉ. देवीलाल पालीवाल

यह त्रैमासिक पत्रिका सन् १९४७ से निरन्तर साहित्यिक ऐतिहासिक एवं पुरातात्विक क्षेत्र में अनुसंधान का महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। अद्यावधि इस में अनेक महत्वपूर्ण शोध-निबंध, ताम्र-पत्र, प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थ तथा अन्य प्रकार की मूल्यवान् शोध-सामग्री प्रकाशित हुई है।

एक प्रति : तीन रुपये
वार्षिक : दस रुपये

सम्पर्क :

साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ,
[उदयपुर राजस्थान]

लोक साहित्य

सम्पादक : डॉ. रामप्रसाद दाधीच

लोक साहित्य के वैज्ञानिक अध्ययन और शोध की हिन्दी में महत्वपूर्ण पत्रिका

वार्षिक शुल्क ८ रुपये
अध्यापकों एवं छात्रों के लिए ६ रुपये

सम्पर्क :

लोक साहित्य केन्द्र, सरदारपुरा
१ ए, जोधपुर [राजस्थान]

हिन्दी नवलेखन की सशक्त मासिकी

लहर

सम्पादक : प्रकाश जैन, मनमोहिनी

नियमित हिन्दी पाठकों के समक्ष कहानियों, कविताओं के अतिरिक्त समसामयिक घटनाओं-समस्याओं पर विचारयुक्त सामग्री प्रस्तुत करती रही है जिसके विशेषांक स्थायी महत्व के रहे हैं

एक प्रति : एक रुपया
वार्षिक : दस रुपया

सम्पर्क :

महात्मा गांधी मार्ग,
पो. बॉ. ८२, अजमेर

अभिनव विचारों का साहित्यिक मासिक

वातायन

साहित्यिक मासिक

प्रति माह
सृजन के सभी पक्ष आप पढ़ेंगे.
समसामयिक साहित्यिक समस्याओं पर गंभीर चिन्तन प्रधान निबन्ध.
साहित्येत्तर समस्याओं पर लेख.
पुस्तकों की सम्यक समालोचना.
एव अन्य स्थायी स्तम्भ.

एक प्रति : एक रुपया पचीस पैसे
वार्षिक : बारह रुपये

सम्पर्क :

५, डागा बिल्डिंग
बीकानेर [राजस्थान]

डाक पंजियक जे. संख्या ५६४



अन्तर्राष्ट्रीय लोक कथा साहित्य
की अभूतपूर्व परम्परा में

बातां री फुलवाड़ी

कुल बीस भागों में प्रकाशित करने की योजना।

नौ बृहत भाग प्रकाशित
प्रति भाग का मूल्य पन्द्रह रुपये

रूपायन संस्थान

जनवरी ५)




लोक संस्कृति

चित्र सज्जा	सांनि गोस्वामी
मुद्रक	रूपायन प्रेस
प्रकाशक	रूपायन संस्थान, बोरुन्दा
	बरास्ता — पीपाड़ [जोधपुर]
मूल्य	एक प्रति १ रुपया
	वार्षिक १२ रुपया

वर्ष ८ अंक ७

संपादक
कोमल कोठारी , विजयदान देथा

कथा , गीत , गाथा , कहावत , मुहावरा , धर्म , देवी-देवता , त्यौहार , नाट्य , चित्र , मूर्ति आदि लोकात्मक कलाओं का मासिक पत्र

अनुक्रम

संपादकीय

लोकवार्ता एवं सामाजिक मान्यता का प्रश्न

राजस्थान प्रदेश में साहित्यिक कृतित्व का जब कभी लेखा-जोखा होता है तब लोक वार्ता क्षेत्र में चल रहे कार्य को अनजाने में ही अमान्य मान लिया जाता है। लगभग यही स्थिति हिन्दी क्षेत्र में भी है। अन्य भारतीय भाषाओं के सर्वांगीण साहित्यिक विकास में लोक वार्ता-विषयक कार्य को कितनी मान्यता अथवा अमान्यता मिली हुई है, इसकी विशिष्ट जानकारी हमें नहीं है। किन्तु राजस्थान में इस विषय पर जितना गंभीर एवं विपुल कार्य हो रहा है, उसे देखते हुए यह महसूस करना कि इस साहित्यिक विधा के प्रति हमारे साहित्यिक चिन्तित एवं जागरूक नहीं हैं—संभवतया गलत नहीं होगा।

राजस्थान के प्रत्येक साहित्यिक क्षेत्र से लोक वार्ता संबंधी कार्य का श्री गणेश हो चुका है। प्रदेश के प्रत्येक पांच नये प्रकाशनों में एक प्रकाशन लोक साहित्य विषयक अवश्य मिल जाता है। इतना ही नहीं, विश्व-विद्यालयों के शोध छात्रों का यदि सर्वाधिक प्रिय विषय कोई बन गया है तो वह लोक वार्ता विषयक है अथवा उसकी विभिन्न विधाओं के इर्द-गिर्द है। यह प्रसन्नता का विषय है कि राजस्थान के जोधपुर एवं उदयपुर के दो विश्व-विद्यालयों ने लोकवार्ता को एम. ए. की कक्षा में वैकल्पिक विषय चुन लिया है।

इस पृष्ठभूमि का अचेतन प्रभाव तो सभी प्रबुद्ध साहित्यकारों पर है किन्तु उनके मन में एक गंभीर संशय भी घर किये हुए है। क्या संकलन का कार्य अथवा सुनकर लिख लेने का कार्य साहित्यिक कृतित्व की श्रेणी में आ सकता है ? कृतित्व का सहज अर्थ तो है कि व्यक्ति की स्वतःस्फूर्त प्रेरणा से अनुरंजित होकर कुछ भाव वल्लरियां पुष्पित हो जायें। एक निपट कल्पना-लोक का सृजन ही साहित्यिक सृजन का दावेदार है। सही है कि सृजनात्मक साहित्य की यही मान्यता उचित है। लेकिन साहित्य में आलोचना-समालोचना का स्थान भी तो है।

साहित्य के कितने ही निबन्धकारों ने गंभीर प्रयत्न करके अथवा भावावेश से रंगी हुई शैली में आलोचना-समालोचना को भी 'सृजनात्मक' श्रेणी में लेने का उपक्रम किया है। उनका प्रयत्न सफल हुआ है या नहीं, किन्तु यह स्पष्ट है कि साहित्य की संज्ञा निश्चित ही तथा-कथित 'शुद्ध कृतित्व' की संकीर्णता से कहीं अधिक व्यापक एवं व्याप्त है।

वस्तुत: इसी व्यापक मान्यता के आधार पर किसी भी साहित्य के विद्यार्थी के लिए लोक वार्ता संबंधी कार्य को साहित्य के चौके से बाहर निकालना तो संभव नहीं रहता। लेकिन वह इस बारे में निश्चित ही बेचैन रहता है कि यह संकलन का कार्य, यह परम्परा का पिष्टपेषण—यह सब क्या साहित्य है, क्यों साहित्य है और क्यों उसे नवीन-समाज की जरूरत बना कर थोपा जा रहा है। इसी मानसिक द्वैत की मन:स्थिति में कभी वह लोक-वार्ता को साहित्यिक विधा का अंग मान लेता है और कभी एकदम उससे इन्कार कर देता है।

उस द्वैतात्मक स्थिति का प्रतिफलन साहित्यिक संस्थाओं के कार्य-कलापों में सहज ही देखा जा सकता है। उदाहरण स्वरूप राजस्थान साहित्य अकादमी को लिया जाय। इस अकादमी ने अपने प्रकाशनों में लोक साहित्य विषयक ग्रंथों को स्वीकार किया है, इसी प्रकार अपने सेमीनार्स के चुने हुए विषयों में लोक वार्ता की एक दो विधाओं पर विचार विमर्श करने का अवसर भी दिया है। अपनी साहित्यिक उप-समितियों के माध्यम से लोक वार्ता विषयक कार्य को गति दिलाने के लिए यदा-कदा निर्णय भी लिये हैं। इस स्वीकृति का स्पष्ट अर्थ यही माना जा सकता है कि राजस्थान साहित्य अकादमी ने लोक वार्ता विषयक कार्य को साहित्य की एक विधा के रूप में मान्यता प्रदान की है। किंतु जब यह प्रश्न आता है कि लोकवार्ता के साहित्यिक पक्ष पर कार्य करने वाली संस्थाओं को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए तो यहां दुविधा की स्थिति बन जाती है। इसी प्रकार जब तथा-कथित पारितोषिक के माध्यम के द्वारा राजस्थान की साहित्यिक गतिविधि का मूल्यांकन करने की स्थिति आती है तो लोक वार्ता के कार्य को चौके से बाहर कर दिया जाता है।

इस मानसिक ऊहापोह की गहराई में जाने के बाद सहज ही ज्ञात होता है कि लोक-वार्ता के विषय पर सामान्य साहित्यकारों का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं है। उनकी समझ है कि मौखिक साहित्यिक परंपरा के संकलन में न प्रतिभा की आवश्यकता है और न व्यवस्थित, तर्कबद्ध विवेचन अथवा लेखन योग्यता की आवश्यकता है। जो सुना, उसे ठीक वैसा ही लिख दिया। वस्तुत: स्थिति ऐसी नहीं है। स्थिति तो यह है कि लोक वार्ता विषयक क्षेत्र में कार्य करने के लिए गंभीर अनुशासन, व्यापक सामाजिक ज्ञान, विस्तृत पठन-पाठन और विवेक-पूर्ण मानस की अविच्छेद्य आवश्यकता है। इन योग्यताओं के साथ ही लेखन की अपरिमित

शक्ति का होना भी अनिवार्य है। हमें समझना यह पड़ेगा कि अन्ततः लोकवार्ता संबंधी-विधाओं में कौनसे ऐसे तत्व हैं जो लेखक के मन और प्रतिभा को भी मुखरित होने का अवसर प्रदान करते हैं। ऐसी विधाओं को स्वतंत्र रूप से साहित्यिक मान्यता दी जानी चाहिए। उदाहरण स्वरूप राजस्थान के लोक कथा साहित्य को लिया जाय। यह सही है कि समाज में लोक कथाओं का व्यापक मौखिक प्रचार है। कथा की घटना को सुन लेने के बाद, जब उसे लिखने का क्रम प्रारंभ होता है तो निश्चय है कि लेखक सहज लिपिकर्ता ही नहीं रह सकता। बोल कर कही गई कथा को लिखित रूप में प्रस्तुत करते समय, अपने रूपात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम-परिवर्तन के कारण महत्वपूर्ण अन्तर उपस्थित हो जाता है। क्योंकि कथ्य भाषा तथा वाक्यावली एवं लिखित भाषा तथा उसका वाक्य-विन्यास अपने आप में एकदम भिन्न प्रकार की अभिव्यक्तियों की कामना करते हैं। यही तथ्य लोक गीतों में हमें प्राप्त नहीं होता, क्योंकि हम वहां केवल मौखिक रूप से याद पंक्तियों को ज्यों का त्यों लिखने के लिए बाध्य हैं। यही स्थिति कहावत, पहेली, गाथा अथवा अन्य पद्य-बद्ध विषयों पर भी लागू है। लेकिन मौखिक गद्यात्मक परम्परा को सुरक्षित रखने के प्रयास में संकलन कर्ता को 'लेखक' का कर्तव्य भी पूर्णतया निभाना पड़ता है। इधर, पद्यात्मक लोक साहित्य के संकलन कर्ता की योग्यता एवं प्रतिभा को साहित्यिक मान्यता प्रदान करने के मापदंड भी स्थिर किये जा सकते है।

सामाजिक मान्यता के क्षेत्र में इस प्रश्न का उठाया जाना अनेक कारणों से आवश्यक है। एक ओर जहां आलोचना के क्षेत्र में अनेक नवीनतम विषयों को मान्यता मिलती जा रही है जो क्षणिकतम आधुनिक साहित्यिक आन्दोलनों को मंडित-खंडित करने के लिए इस जगत में प्रवेश करते हैं। दूसरी ओर उन गतिविधियों की तरफ संकेत करना भी आवश्यक-सा है जिनका संबंध प्राचीन हस्तलिखित ग्रंथों के संपादन से है। इन ग्रंथ-संपादनों के नाम पर राजस्थाम ने तो एक दर्जन से भी अधिक विद्वानों को जन्म दे दिया है। सौ दो सौ पृष्ठों का एक प्राचीन ग्रंथ, उसकी पांच-छह प्रतियां, शुद्ध-अशुद्ध उनकी नकलें और पाठभेद के फुटनोट्स के बाद डेढ़-दो पृष्ठ की भूमिका लिखकर कितने ही विद्वान राजस्थान के साहित्य—समाज पर मंडरा रहे हैं। उनकी योग्यता-प्रतिभा का यदि कोई मापदंड हो सकता है और उन्हें सामाजिक रूप से समादृत किया जा सकता है तो निश्चय है कि मौखिक साहित्य के क्षेत्र में कार्य करने वाले के परिश्रम एवं योग्यता की उनसे तुलना ही नही की जा सकती। इतना ही क्यों कहें, लोक वार्ता का कार्य करने वाला वस्तुतः आधुनिकतम जीवन में प्रचलित लोक साहित्यिक अनुभूतियों का ही तो संकलन करता है—उनका प्रभाव जितना सीधा आधुनिक [ग्राम्य] जीवन पर पड़ता है, अतः उसकी उपयोगिया का भी कोई पार नहीं है।

इसी प्रकार केन्द्रीय सरकार की विभिन्न योजनाओं में भी मौखिक परम्परा को संग्रहीत करने की कोई योजना नहीं है। भारत सरकार जिस प्रकार हस्तलिखित ग्रंथों एवं अनुपलब्ध प्रकाशित ग्रंथों के मुद्रण एवं पुनर्मुद्रण के लिए जो आर्थिक सहायता प्रदान करती है—ठीक वही सहायता लोक वार्ता संबंधी कार्य को भी दी जा सकती है। इतना ही नहीं, भारत सरकार एवं राज्य सरकारों की अनेक योजनाओं में भी इस विषय के कार्य को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है। लोक वार्ता का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष यह है कि जहां यह विषय परम्परा की गहराई में गया हुआ है, ठीक उतना ही वर्तमान उपलब्धियों का भी आधार है। जन-जीवन में व्याप्त संस्कृति का मूलाधार भी इसी साहित्यिक विधा में प्राप्त हो सकता है। जनतंत्रीय समाज प्रणाली यदि किसी भी साहित्य की खोज-बीन में रुचि ले सकती है तो वह रुचि लोक संस्कृति की मान्यताओं में ही निहित है। लोक मानस का जो औसत भाव-जगत है और जिसे समुन्नत एवं संपन्न बनाने की हम कल्पना करना चाहते हैं, उसके लिए भी यही विषय एक मात्र उपाय है।

चाहे समाज-शास्त्री हो, चाहे मनोविज्ञान का विद्वान हो और चाहे राजनीति का विद्यार्थी हो—सबके लिए लोक-मानस को समझना, उसके गठन की प्रक्रिया को आत्मसात करना एवं उसके लिए भावी सुखद समाज की कल्पना करने के लिए आवश्यक है कि वह लोकाभिमुखी सांस्कृतिक मूल्यों की खोज-बीन करे और उसी मानसोदधि से भावात्मक रत्नों को प्राप्त करे।

इन तथ्यों के उपरान्त, एक विराट सत्य की ओर भी आँखें खोल कर देखना होगा। राजस्थान के लोक साहित्य के अध्ययन-संकलन का अर्थ है—राजस्थानी भाषा का सतत प्रयोग और उसकी अतुल्य शक्ति का दर्शन। जो सामाजिक संस्थाएं प्रादेशिक संस्कृति एवं साहित्यिक उपलब्धियों को मान्यता देने वाली हैं—वे इस पक्ष से अपनी दृष्टि नहीं हटा सकती हैं। इसी तथ्य के साथ एक ओर बात भी जुड़ी हुई है और वह है राजस्थानी भाषा के पुनरुत्थान की समस्या। लोक बार्ता-विषयक संग्रह एवं अध्ययन ही वे आधार प्रदान करते हैं जो एक साहित्यिक भाषा का निर्माण करने में सक्षम हैं।

हमारा यह मानना है कि सामाजिक संस्थाओं द्वारा मान्यता अथवा अमान्यता के कारण विषय की गभीरता न कम होती है और न ज्यादा। लेकिन यदि मान्यता मिलती है तो उस क्षेत्र के कार्य को एक गति, एक दिशा और एक प्रेरणा मिलती है। बड़ी से बड़ी संस्था यदि समाज में कुछ कर भी सकती है तो एक ऐसे ही वातावरण को बनाने में इतना ही अकिंचन सहयोग मात्र दे सकती है।

बावली मां

एक जाट की मां मरी तो उसने गांव के पंडितजी को उसके फूल डालने के लिए गंगाजी रवाना किया। हरद्वार से साठ मील इस तरफ पंडितजी का ससुराल था। तीन चार वर्षों से ससुराल जाने का काम नहीं पड़ा। और काम पड़ता तो भी इतनी दूर जाने में खर्चा लगता था। चौधरन के फूल गंगाजी में डालने का यह अवसर आया तो वे कहते ही मान गये। पर उनके मन में कुटिलता थी। जाट से हरद्वार का पूरा किराया लेकर वे अपने ससुराल में ही मौज करना चाहते थे। बुढ़िया के फूलों को ससुराल के तालाब में चुपचाप पटक देंगे। किसी को क्या पता चलेगा ?

पंडितजी ने जो सोचा वही किया। जाट से ठेट हरद्वार का आने-जाने का खर्चा लेकर वे तो सीधे अपने ससुराल चले गये। वहां आठ दस दिन आराम से रहे। खर्चे में से अच्छे खासे पैसे बचा लिए। दिनों की गिनती करके वे वापिस उसी हिसाब से गांव पहुंच गये। जाट ने अपनी मां के पीछे व्यय करने में कोई कमी नहीं रखी। गंगाजली का आयोजन कर सारी जात को जिमाया। बढ़िया मौसर किया।

कई दिन बीतने के बाद जाट को खबर पड़ी कि पंडितजी ने तो ठग लिया। ठेट हरद्वार तो गये ही नहीं। ससुराल से ही लौट आये। वहां के तालाब में फूल डालकर झूठे ही गंगाजी का नाम ले लिया।

यह बात जाट को बेहद बुरी लगी। पण्डितजी को उलहना देता हुआ बोला—पण्डितजी, मैंने आपको खास अपने घर का समझ कर अपनी मां के फूल सौंपे थे। पर मुझे रात को सपना आया। सपने में मेरी मां ने आकर

कहा कि पण्डितजी ने अपने ससुराल की तलैया में ही मेरे फूल गिरा दिये, गंगाजी में डाले ही नहीं। गंगाजी में फूल विसर्जित किये विना मेरी गति नहीं होगी। अब कैसे ही करके मुझे गंगाजी पहुंचाओ। गंगाजी पहुंचाये बिना तुम्हारा सारा खर्चा-खाता व्यर्थ जायेगा।

जाट की बात सुनते ही पंडितजी ने कहा--चौधरी मुझे तो तेरी मां एकदम बेवकूफ ही लगी। मेरे ससुराल से इतना उलटा रास्ता चल कर वापिस इस गांव क्या खाने आई थी? वहीं से सीधी गंगाजी पहुंच जाती तो उसे कौन रोकता था? तेरा खर्चा-खाता भी अर्थ लग जाता और उसकी भी गति हो जाती। पर पागल औरतों का कोई क्या करे! भटकती भटकती इधर न आकर उधर ही चली जाती तो क्या जोर पड़ता? गंगाजी तो उधर से एकदम पास ही है।

पण्डितजी का जवाब सुनकर जाट भी शर्मिन्दा हो गया।

समझी रे भैया समझी!

एक बनियानी को शाम पड़ने के बाद हाजत हुई तो वह थोड़ी दूर पर अपने बाड़े में ही निपटने के लिए चली गई। बाड़े से वापिस लौटते समय एक चोर ने उसे घेर लिया। बनियानी गहनों से पीली-जर्द हो रही थी। चोर को तो जैसे अनसोचा खजाना हाथ लग गया। औरत की जात, जोर से धमकाते ही सारा गहना उतार कर अभी सौंप देगी!

चोर के धमकाते ही बनियानी मुस्कराती हुई बोली—पगले, थोड़ा धीरे बोल। मुझे डराने की जरूरत नहीं। इतने से गहनों से पागल मत हो। तेरी हिम्मत हो तो मुझे भी अपने साथ ले चल। घर में दो छबड़ी भरे गहने और पड़े हैं। मुझे युक्ति लगाकर वे भी लाने दे। अपन दोनों के तो सारी उम्र खाये

खतम नहीं होंगे। मेरे तकदीर का तू आज ठीक मिला। चिल्ला मत, सेठजी को पता चल गया तो आफत हो जायेगी। घर का सारा गहना मेरे हाथों से रखा हुआ है। आधी रात ढलने पर मैं यहां वापस सारा गहना लेकर आ जाऊंगी। बोल तेरी क्या मंशा है ? तू कहे तो ऐसी ही चली चलूं और तू कहे तो सारा-माल मत्ता लेकर चलें ?

चोर ने सोचा कि आज तो प्रत्यक्ष लक्ष्मी तुष्ठमान हुई है। ऐसा मौका तो फिर कभी जीवन में हाथ नहीं आने का। धीरे से उसके कान में फुस-फुसा कर बोला— मैं तो तू कहे वैसे करने को तैयार हूं। इसी बाड़े में बैठा राह देखूंगा। कैसी होशियारी से सारा काम करती है !

बनियानी बोली—इक्कीस आना तो मैं ही अपने आप ही आई रहूंगी। पर शायद ऐसा ही कोई विघ्न पड़ जाय तो तू सामने की खिड़की के नीचे खड़ा होकर धीमे धीमे आवाज दे लेना। मेरा नाम समझी है। मैं खिड़की में से गहनों की गठड़ी गिरा दूंगी। माल-ताल तुझे सौंपने के बाद मैं कोई बहाना बना कर बाड़े में आ जाऊंगी। पूरी सावधानी रखना। बाड़े में ठीक तरह छिपे हुए रहना, कोई देख न ले। मेरा नाम समझी है, याद रखना। काफी देर हो गई, अब मैं जाती हूं।

बनियानी तो ऐसा कहकर निश्चिंतता से अपनी हवेली में चली गई और चोर बाड़े में छिप कर बैठ गया। आज उसके मन में खुशी का पार नहीं था। वह बैठे बैठे मन में मंसूबे बांधने लगा कि घर जाते ही एक पक्की हवेली बनाऊंगा। समझी को किसी बात की तकलीफ नहीं रहनी चाहिए। उसे बहुत सुखी रखूंगा। इस प्रकार वह दो मंजिल की हवेली बनाता रहा और समझी की राह देखता रहा। हवेली तो पांच बार बनकर सम्पूर्ण हो गई, पर समझी वापिस नहीं लौटी। उसकी हिदायत के अनुसार वह तीन घड़ी बाद खिड़की के नीचे जाकर धीरे धीरे आवाज देने लगा—समझी, ओ समझी।

इतने में झरोखे की खिड़की खुली। समझी बाहर मुंह निकाल कर बोली : समझी रे भैया समझी। न ज्यादा खाना और न बेवक्त बाहर जाना। अब तू कुछ समझा हो तो चुपचाप बाड़े से बाहर चला जा वर्ना बहुत पछतायेगा।

चोर के मनसूबों की सारी हवेली ढह गई। वह शर्मिन्दा होकर वहां से भागा, जैसे हवेली उसी पर गिर रही हो।

राई का भाव

सेठजी के गुदगुदी करते हुए सेठानी ने कहा—सुनते नहीं हो ! यह कोई नींद है कि तामजाम! सोते सोते निश्चिन्त घोर खींच रहे हो । मुझे तो यह अचरज होता है कि तुम्हें इतनी नींद कैसे आ जाती है । सारी रात मेरी आंख में तो झपकी भी नहीं आई । पिछले साल उस थानिया सुथार ने रामदेवजी के यहां पैदल जाकर मनोती मनाई तो देखो उसकी पत्नी के गर्भ रह गया । हम भी अगले मेले में रामसापीर के पैदल धोक देने को चलेंगे ।

सेठ ने मिलती मारी — हां जरूर जरूर । एक जम्हाई लेकर सेठजी ने पलकें उघाड़ी तो क्या देखते हैं, कि सामने छत की दीवार से सटकर एक चोर नीचे उतर रहा है । यदि वे चिल्ला पड़ें तो पड़ोसियों से पहिले चोर को सुनाई दे जाय ! पड़ोसी आवें तब तक तो यह वापिस भाग जाय । या बेकार में मारे जांय । अगर हल्ला करते ही वह दोनों का गला घोंट दे तो !

यह सोचकर सेठजी तो निश्चिन्त पलंग पर सोते रहे । रामसापीर को धोक देने की बात का रुख मोड़ कर वे सेठानी से घर गृहस्थ की बातें करने लगे । चोरों के यह परखी हुई बात है कि आधी रात ढलने पर सेठ-सेठानी धन माल और जेवर-गहनों की बातें किया करते हैं । वह ठीक तरह से युक्ति-पूर्वक धीरे-धीरे चल कर उनकी बातें सुनने के लिए तिबारे के कोने में छिपकर खड़ा हो गया ।

सेठ कहने लगे—हैं जी, राई की वे दोनों बोरियां तहखाने में ठीक तरह संभाल कर ताला लगा दिया क्या ? सेठानी ने कहा — मैं तो बिल्कुल ही भूल गई । मुझे तो आजकल ध्यान ही नहीं रहता । वे तो बाहर वाले चौक में वैसी की वैसी पड़ी हैं ।

सेठजी झल्ला कर कहने लगे—मैंने शाम को कितनी बार तुम्हें कहा था कि

राई का भाव तो चांदी से भी ज्यादा महंगा हो गया। रुपये तोले के खरीददार हैं पर बेचने वाले नहीं मिलते। निजोरी में रखने लायक कीमती चीज तुमने खुले चौक में रख दी ? अब मैं तुम्हारे आगे कहां जाऊं ? तुम्हें तो सिर्फ एक घुन लगी है। दस बार कह दिया कि अगले साल रामदेवजी के पैदल धोक देने को चले चलेंगे। कुछ तो जो ठिकाने रखो। बच्चा होना, न होना तो कर्मों के वशीभूत है। सवेरे उठते ही सबसे पहले राई का जाब्ता करना। एक भी राई बाहर नहीं गिर जाय। परसों तक तोले के भाव बेच कर छुट्टी करूंगा। तुम्हारे भरोसे तो ये पैरों में यों ही बिखरेंगी।

सेठानी ने कहा—तुम कहो तो अभी ठिकाने कर दूं।

सेठ नम्रता से बोले—अभी कौन कहता है ? पर सवेरा होने से पहले सारे काम छोड़ कर पहले राई का जाब्ता जरूर कर लेना।

चोर ने मन में सोचा कि अब तो राई को ठिकाने करने की मन में ही रहेगी। मैं इसी वक्त ठिकाने कर दूंगा। उसने सोचा कि आज तो अन्धे के हाथ बटेर लगी। क्यों दूसरी जगह सिर-पच्ची करूं ? रुपये तोले के भाव की ये दो बोरी राई तो निहाल कर देगी।

चोर तो मनचाही बात सुनते ही धीरे धीरे वहां से रवाना हुआ। सेठ ने भी उसे वापिस छत पर चढ़ते देख लिया। आज की आफत तो टली।

सेठ सेठानी सवेरे उठ कर देखते इससे पहिले ही राई के बोरे तो ठिकाने लग गये। चोर ने तो सचमुच एक राई भी पीछे नहीं छोड़ी।

दूसरे दिन सूरज उगते ही चोर तो राई की बड़ी गांठ बांध कर सारे बाजार में घूमने लगा — राई लो, राई लो ! पर राई को कौन पूछता ! तब वह खुद चला कर दूकानदार के पास गया और सौदा करने लगा। उन सब ने एक रुपये मन का भाव बताया। चोर ने समझा कि लुच्चे बनिये मुझे लूटना चाहते हैं या इन्हें राई के भावों का ठीक तरह पता नहीं है। यह सौदा तो रात वाले सेठ से ही पटेगा।

सेठ घर से रवाना हुए तो चोर भी उनके पीछे पीछे लुकता छिपता चलता रहा। सेठ दूकान पर बैठे तो थोड़ी देर बाद वह वहां पहुंचा। पूछा — सेठ, राई लेते हो क्या ? मेरे पास दो एक बोरी बढ़िया माल है।

सेठ समझ गये कि है तो वही चोर। राई उठाये इतनी देर भटका होगा, पर कहीं बात नहीं बनती देख मेरे आने की राह देख रहा था। बोले — लेने देने का तो हमारा धन्धा ही है। बोल, क्या भाव देगा ?

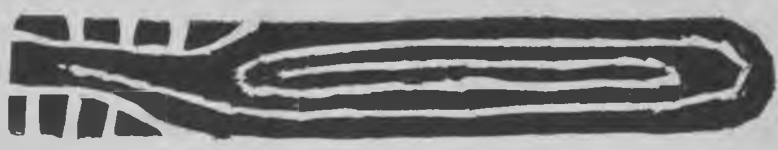
चोर ने कहा — राई के भावों की तेजी तो आपसे छिपी हुई नहीं है। आपको पोसाता हो वही भाव ठीक लगा लीजिए।

तब सेठ ने कहा— बाजार का भाव तो रुपये मन का है। तू दस जगह पूछताछ करले, यह तो तेरे घर की दूकान है। तेरे से कोई सस्ती थोड़े ही लेऊंगा।

चोर को भाव सुनकर बेहद आश्चर्य हुआ। हक्का - बक्का होकर पूछा : भाव तो राई का बहुत तेज सुना था। रुपये तोले में लेने वाले हैं, पर बेचने वाले नहीं। आप तो मुझे अनजान समझ कर लूट रहे हैं।

सेठ मुस्कराते हुए बोले— पागल, राई का वह भाव तो रात के साथ ही चला गया। अब दिन के भाव होंगे वे रहेंगे। तू अभी तक रात के भावों के भरोसे ही है क्या ? पर तू क्यों सोच करता है ? तुझे तो जिस भाव भी बिके फोकट का ही नफा है। तूने कौन से गांठ के दाम खर्चे किये हैं ?

चोर शर्मिन्दा होकर चुपचाप वहां से रवाना हो गया। सेठ ने भी ज्यादा बात बढ़ाना ठीक नहीं समझा। चुप रहे। चार पांच रुपयों के लिए कौन चोरों से बैर बांधे ?



बनिये की मूंछ !

एक बनिया सजधज कर रौब व शान के साथ सरे बाजार से जा रहा था। भीनमाल के हरे चौवे की उम्दा जूतियां, मलमल की महीन धोती, बन्द गले का कोट, चुनड़ी के फेंटे का राठौड़ी पेच झुकाये, गुटनों तक छिनगा और हाथ में चांदी के पोले की पतली छड़ी लिये वह ठाट से अपने मार्ग चलता रहा। रास्ते में एक

अफीमची ठाकुर सामने मिल गया। फटी जूतियां, मैली सी धोती, बेडौल कुर्ता, लीर लीर फटा हुआ एक फेंटा सिर पर लपेटा हुआ। पर दोनों हाथों में तलवारें दो। ठाकुर बेहद अक्खड़ और गंवार था। रास्ते चलते ही झगड़ा कर लेता। बिना बात किसी से झगड़ा करना तो उसके बांये हाथ का खेल था।

ठाकुर अफीमची और शक्तिहीन होते हुए भी दो तलवारें इसलिए रखता था कि सामने लड़ने वाला यदि निहत्था हो तो उस पर वार नहीं करना। अपनी एक तलवार उसे थमा देता, फिर लड़ाई करता। निहत्थे पर वार करना राजपूत का धर्म नहीं है। इस आन को निभाने के लिए दो तलवारें रखना जरूरी था।

बनिये की अक्खड़ देखी तो ठाकुर को बहुत अखरी। और इस सजधज के साथ बिच्छू के डंक सी, तीखी और मुड़ी हुई, बांकी, बट दी हुई मूंछें देखीं तो उसके एड़ी से चोटी तक आग लग गई। और अपना यह मलिन वेष? ठाकुर के गुस्से की सीमा न रही।

बनिये को जोर से धमका कर आवाज दी—ए लेड, इधर मर! तेरी यह कलफ एक पलक में झाड़ दूंगा।

बनिये बिचारे ने सोचा कि अचानक यह आफत कहां से आ पड़ी। यदि अनसुना करके टल भी जाऊं तो यह अंटीला ठाकुर सारी उम्र पीछा नहीं छोड़ेगा। यह किसी के समझाये मानने वाला भी नहीं। किसी तरह मीठा बोल कर पिण्ड छुड़ालूं तो ठीक रहे। रास्ते चलते नाराज होता हो ऐसी बात तो कभी सुनी नहीं। डरता डरता ठाकुर के पास गया और नमस्कार करके बोला—ठाकुर साहब, जै माताजी की। फरमाइये क्या हुकम है?

उसकी मूंछों पर दूसरी बार ठीक तरह नजर पड़ते ही ठाकुर के शरीर पर तो जैसे सौ सौ बिच्छुओं ने एक साथ डंक मारा। क्रोध में लाल होकर उल्टा-सीधा बोलने लगे— जात का तो बनिया और वेष राठौड़ी? उस पर ये अनियारी मूंछें! बता, तूने ऐसी अंटीली मूंछें रखी तो रखी ही कैसे? तेरी यह आंट अभी मिटा दूंगा। तलवार का एक झटका लगा तो मूंछों सहित यह यह सिर धूल में लोटता पैरों में कुचला जायेगा। है किस होश में?

उन दिनों ठाकुर लोगों का ही जोर था। उनका ही राज और उनकी ही तलवार! कौन रोके उनको और वे किसके रोके रुकें! बनिये को गुस्सा तो बहुत आया पर इन मूर्ख जानवरों से कौन भिड़े! तो भी वह थोड़ा सा ताना मारता बोला— ठाकुर साहब, कपड़े तो मैंने अपने घर के पहिने हैं और इन

मूछों में किसकी भागीदारी ?

ठाकुर साहब के इतना धीरज कहां ! जैसे भरी बन्दूक का घोड़ा दबा दिया । पैर पटकते हुए बोले— आज तो मेरे हाथ से तेरी मौत है । बिल्ली लांघ कर आया दिखता है । ऐसी ही अंटीली मूछों का मालिक है तो आजा, दो दो हाथ करलें । मूछें तो तलवारों की ताकत पर अच्छी लगती हैं । कल तो हर कोई मूछ रख लेगा ? ले, तलवार पकड़ । मूछों के बट देने वाले हाथों की कुछ करामात दिखा ।

यह कह कर ठाकुर ने म्यान सहित तलवार का उस बनिये के पेट एक में घोदा दिया । ठाकुर को नशा पूरा चढ़ा हुआ था । बनिये ने सोचा कि आज तो राह चलते बुरे फसे । ठाकुर फिर अंट-संट बकने लगा और उसने एक तलवार बनिये को जबरदस्ती पकड़ा दी । उसने खुद अपनी तलवार म्यान से निकाल कर बनिये को ललकारा ।

बनिया कलम से तो गला काट सकता है पर उसने तलवार कब हाथ में पकड़ी । जबरदस्ती थमा दी तो उसे झेलनी पड़ी । ठाकुर आज तो मारे बिना नहीं छोड़ेगा । उसने कांपते हुए कहा — ठाकुर साहब, एक बात मेरी भी सुनिये ।

ठाकुर ने कहा— बोल, जल्दी बोल, क्या चाहता है ?

बनिये ने कहा—मैं बनिये की जात आपका क्या सामना कर सकता हूं । हुकुम दिया तो तलवार झेलनी पडी । मेरे साथ घात होने पर मुझे तो मरना पड़ेगा ही । मेरे मरने के बाद सारे घरवाले रोयेंगे, बिसुरेंगे । घरवालों को पूरी तकलीफ उठानी पड़ेगी । और यदि ठीकरी ने घड़ा फोड़ दिया और आप झटका लगने से स्वर्ग सिधार गये तो आपके घरवाले सारे जीवन तकलीफ पायेंगे । आपके नाम को रोयेंगे । लड़ाई तो हम दोनों की है । घरवालों ने क्या बिगाड़ा है ? अपने मरने के बाद वे क्यों दुख पावें ? पहले हम लोग अपने घर जाकर सारे घरवालों को मार डालें तो पीछे दुख पाने वाला कोई नहीं रहेगा । घर-वालों के मरने के बाद मैं लड़ने को तैयार हूं । फरमाइये, आपकी क्या मर्जी है ?

कुछ तो नशे की लहर और कुछ ठाकुर का अंटीला स्वभाव ! वह आज तलवार के हाथ दिखाकर बनिये को नीचा दिखाना चाहता था । फिर कभी यों ठाकुर के सामने मूछों के बट देगा ? मूंछें नीची न करा दूं तो मेरी जात पर जूती । बनिये की बात सुनते ही ठाकुर को पसन्द आ गई । वह तो नंगी तलवार लेकर सीधा अपने घर गया । भली सोची न बुरी, उसने तो सारे घरवालों को

तलवार से काट डाला। सब का सफाया कर दिया।

ठाकुर खुश खुश वापिस आया। बनिया वहां पहले ही तैयार बैठा था। ठाकुर ने कहा—मैं तो सारे घरवालों को ठंडा रख आया हूं। अब वे, मेरे मरने पर दुख नहीं पायेंगे। जा, तू भी अपने घरवालों से सलट ले।

बनिये ने हाथ जोड़ कर कहा — आपके धमकाते ही मेरी अक्ल ठिकाने आ गई। आपकी धमकी किसी तलवार से क्या कम है। बनिये की मूंछ का क्या, ऊंची नहीं नीची ही सही। आपके हुकम की तामील नहीं करूं तो मुझे इस संसार में रहना है कि नहीं।

यह कह कर उसने अपने हाथों से अपनी दोनों मूंछें बिल्कुल नीची करलीं। कहा—मुझे तो आज ही पता चला कि मूंछों के तेवर तो तलवार के जोर पर ही शोभा देते हैं। यह तो आप जैसे सरदारों को ही फबती हैं। आप कहें तो अब कभी मूंछें ऊंची नहीं करूंगा। अब तो आप खुश ?

अफीमची ठाकुर ने खंखार कर कहा — अब बहुत खुश। मेरे होते कोई अंटीली मूंछें रखे तो मुझे गुस्सा नहीं आयेगा, तू ही बता ?

बनिये ने कहा — हुकम, आप सच कहते हैं। यह आंट और ये मूंछें तो आप लोगों को ही शोभा देती हैं।

सुन्दर कौन ?

एक बार धन की देवी लक्ष्मी और दारिद्रय की देवी में परस्पर विवाद हो गया। लक्ष्मी ने कहा मैं बड़ी और दरिद्रता की देवी ने कहा कि मैं बड़ी। लक्ष्मी का कहना था कि वह सबको धन देती है, माया सौंपती है, आनन्द और

हर्ष के सारे साज जुटाती है। इस दुनिया का सारा कारोबार, सारी खटपट और सारी दौड़-धूप लक्ष्मी का अभिनन्दन करने के लिए ही हुआ करती है। रात दिन सारा संसार उसका स्मरण करता है, उसकी माला जपता है। उसकी बराबरी बेचारी दरिद्रता की देवी कैसे कर सकती है ! कहां राजा भोज और कहां गंगला तेली ! अमावस की काली रात, पूनम की चांदनी से कैसे होड़ लगा सकती है ! दरिद्रता की देवी का कहना था कि उसके कारण ही लक्ष्मी की पूजा होती है। यदि वह दुनिया में नहीं होती तो लक्ष्मी का मान जूती जितना भी नहीं होता। लक्ष्मी की सारी कद्र दारिद्रय की देवी के पीछे है। दोनों में ठनी पर ठनी ! अब इसका निपटारा कैसे हो ?

अन्त में आपसी वाद-विवाद की झड़पों से पूरी तरह तंग होकर दोनों देवियां इस बात के लिए राजी हो गईं कि किसी बनिये से इसका फैसला करवा लिया जाय। लक्ष्मी को तो इस बात का सोलह आना विश्वास था कि बनिया मर जाय तो भी दारिद्रय की देवी को बड़ा नहीं बता सकता। यदि वह उसका ठिकाना छोड़ दे तो वह कनकन का हो जाय। दारिद्रय की देवी को भी यह सोलह आना विश्वास था कि यदि वह बनिये के यहां जमकर डेरा जमा दे तो वह भिखारी हो जाय। उसके कोप से डरता बनिया मरने पर भी लक्ष्मी का पक्ष नहीं लेगा। दोनों देवियों ने राजी-खुशी बनिये को पंच बना लिया।

दोनों देवियां पूरा बनाव सिंगार करके एक बनिये के घर पहुंची। बनिया शाम के समय अपनी दूकान बन्द करके आ रहा था। कमर में रुपयों का तोड़ा बंधा हुआ था। राजी राजी अपने घर आया तो क्या देखता है कि दो देवियां बैठी उसकी राह देख रही हैं। उसने हाथ जोड़ कर दोनों का अभिवादन किया। कहा—आज, गरीब की झोंपड़ी में कैसे पधारना हुआ। आपने क्यों तकलीफ उठाई। मुझे समाचार भेज देते तो मैं उसी वक्त आपकी हाजरी में उपस्थित हो जाता।

लक्ष्मी बोली—हम दोनों में विवाद हो गया है। हमने राजी-खुशी तुम्हें अपना पंच बनाया है। तुम्हें यह झगड़ा निपटाना पड़ेगा।

बनिया बेहद चालाक था। सुनते ही समझ गया कि इनका विवाद निपटाने पर तो खुद के मुसीबत हो जायेगी। पर मना करने से दोनों नाराज हो जायेंगी ! नाराज किये भी काम चल नहीं सकता। आज तो बुरे फंसे। तो भी उसने मन की बात मन में ही दबाये रखी। बोला—और कोई हुकम हो तो फरमाइये। मुझ में इतनी योग्यता कहां, जो आपके विवाद का निर्णय करूं।

इस बार दारिद्रय की देवी बोली— ना ना, हमें तुम पर सोलह आना भरोसा है। हम दोनों में आज पूरी ठन गई है कि कौन किससे बड़ी है। लक्ष्मी कहती है कि वह बड़ी और मैं कहती हूं कि मैं बड़ी। अब तेरे पर बात छोड़ी है कि तू कहेगा वही पत्थर की लकीर होगी। अब फुर्ती से हमारा झंझट निपटा दे।

बात सुनते ही बनिया तो पशोपेश में पड़ गया। किसको नाराज करे! यदि लक्ष्मी की सराहना करे तो दरिद्रता की देवी कोप करती है और अगर दरिद्रता की देवी को सराहता है तो लक्ष्मी कोप करती है। इधर पड़े तो कुआ और उधर पड़े तो खाई। मन में सोचा कि यह कर्कशा, लक्ष्मी का क्या मुकाबला कर सकती है। पर मन की बात होठों तक लाने से तो सत्यानाश हो जायेगा। यदि दरिद्रता की देवी ने कोप कर लिया तो फिर लक्ष्मी भी कुछ नहीं कर सकेगी।

थोड़ी देर सोचने के बाद उसे तुरन्त एक उपाय सूझ गया। कहा—आपके हुकम की तामील तो मुझे करनी ही पड़ेगी। फिर उसने लक्ष्मी की ओर हाथ का इशारा करके कहा—आप थोड़ी दूर चलिए। मैं आप दोनों की चाल देख कर निपटारा करूंगा।

बनिये के कहने से लक्ष्मी थोड़ी दूर गई। फिर उसने कहा—'अब आप मेरे सामने चलकर आइये।' लक्ष्मी तो कहते ही नखरे से बनिये की तरफ रवाना हुई। तब बनिया बोला—आप तो घर में आते हुए कितनी अच्छी लगती हैं! घर में आते समय आपके मुख की शोभा के सामने तो सूरज का तेज भी फीका पड़ जाता है। आपकी इस सुन्दर सुषमा का क्या वर्णन करूं। घर में प्रवेश करते ही उजाला हो जाता है।

बनिये की बात सुनकर लक्ष्मी बेहद खुश हुई। तब उसने दारिद्रय की देवी से कहा—'अब आप थोड़ा बाहर पधारने की कृपा करें।' दारिद्रय की देवी तुरन्त पीठ फेर कर नखरे के साथ चलने लगी। तब बनिये ने खुश होकर कहा—आप घर से बाहर जाते समय बहुत अच्छी लगती हैं। बाहर जाते समय आपकी पीठ की शोभा का मेरे से बखान नहीं किया जा सकता। आपकी यह चाल देख कर मन इतना खुश होता हैं कि मैं उसे बता नहीं सकता।

बनिये की बात सुनकर वह भी बेहद खुश हुई। अपनी चाल के गर्व में वह तो चलती ही गई।

बनिये ने इस प्रकार फैसला सुनाकर दोनों को बेहद प्रसन्न कर दिया।

खोई हुई तलवार

एक ठाकुर को रुपयों की जरूरत पड़ी तो वह एक बनिये के पास गया। कहा—सेठ, कुछ तंगी आ गई है। रुपये उधार देने पड़ेंगे।

सेठ ने पूछा—किस चीज पर!

ठाकुर ने कहा—यह मैं पांच हाथ का जिन्दा जागता पहाड़ जैसा आदमी खड़ा हूं। मनुष्य की देह तो लाख रुपयों की कही जाती है। मुझे तो सिर्फ दो सौ रुपये ही चाहिए।

सेठ नम्रता से मुस्कराकर बोला — यों तो आपका घर है, जबरदस्ती ले जा सकते हैं। पर व्यवहार की बात अलग है। व्यवहार से मैं भी पूरा बंधा हुआ हूं। भगवान आपकी लाखों की देह को सलामत रखे, आपकी हजारी उम्र हो। कायदे से तो रुपये धन-माल पर ही दिये जाते हैं। फिर आप जैसा फरमायें वैसा करूं।

ठाकुर ने कहा—सेठ, धन-माल पास होता तो आपकी पेढ़ी पर क्यों आता? धन समझो चाहे माल, मेरे पास तो यह तलवार है, जो आपके पास रख सकता हूं। तंगी आ गई है वर्ना देह गिरने पर भी राजपूत अपनी तलवार गिरवी नहीं रखता। पर समय समय की बात है। लाख रुपयों में भी यह तलवार रेहन नहीं रखना चाहता जो आज दो सौ रुपयों के लिए रखनी पड़ रही है।

सेठ फिर थोड़ा मुस्कराकर बोला— ठाकुर साहब, तलवार की कीमत तो आप जानते हैं, हमें तो इसके नाम से ही डर लगता है। सोने चांदी का पता तो छाया देख कर ही लगालें, पर तलवार और भालों की कीमत हम नहीं आंक सकते। इस तलवार की कीमत पांच रुपये बतायें तो भी जंचती है और लाख रुपये फरमायें तो भी माननी पड़ेगी। और ठाकुर साहब, बनिये के घर

में तलवार लटकती शोभा नहीं देती। यह धन तो आप लोगों के यहां ही सुन्दर लगता है। कहीं कोई बच्चा शैतानी करता लगा बैठे तो और भी मुश्किल हो जाय।

ठाकुर समझ गया कि सेठ तलवार पर रुपये नहीं देना चाहता। तो भी उसे गुस्सा नहीं आया। उसके मन में कपट था। आठ दस रुपयों की तलवार के वह दो सौ रुपये झाड़ना चाहता था। उसकी इच्छा थी कि सेठ के पास से तलवार पर दो सौ रुपये लेकर फिर कभी नहीं छुड़ानी। टालमटोल करते रहना। अन्त में दुखी होकर सेठ अपने मन से खयाल ही निकाल देगा। रुपये भी नहीं लौटाने और मना भी कभी नहीं करना। यह उसकी चाल थी।

बोला—सेठ, एक नाकुछ पाती को भी अगर राजपूत तलवार कहकर दस हजार में भी गिरवी रखेगा तो उसे वापिस छुड़ाये बिना नहीं रहेगा। यह तो आन की बात है। आप मन में किसी बात की शंका मत लाइये। फिर अगर इस तलवार का तो आज भी मोल करायें तो पांच सौ रुपयों की है। आपको दो सौ से ज्यादा जोखिम नहीं। जब मन करोगे तभी इसके दुगने रुपये तो दौड़ते मिल जायेंगे।

सेठ को वास्तव में तलवारों की परख नहीं थी। ठाकुर की बात पर भरोसा कर लिया। पूरा खरा कर तलवार पर दो सौ रुपये गिन दिये। कहा—आप जबान से कहते हैं तो उसे ही मान लेता हूं, वर्ना मुझे तो इसकी जांच नहीं। यह तलवार आपकी है। वापिस छुड़ाने की चेष्टा रखना। आड़े वक्त आदमी ही आदमी के काम आता है।

सेठ ने तो विश्वास पर रुपये गिन दिये, पर ठाकुर का मन तो जागता था। सच्चा बनने के लिए बोला—सेठ तलवार को ठीक तरह जाब्ते से रखना। ऐसी तलवारें आज कल हाथ ही नहीं आती है। कहीं ऐसा नहीं हो कि तलवार इधर उधर हो जाय!

सेठ ने कहा—ठाकुर साहब, ऐसा कभी हो सकता है! आप छुड़वाने की पूरी लगन रखना।

इस तरह होशियारी करके वह ठाकुर दस रुपयों की पाती पर नगद दो सौ रुपये लेकर खुश खुश रवाना हुआ। मन में सोचा कि आज तो बनिये को खूब फंसाया।

उस दिन के बाद सेठ ने ठाकुर से कई बार ताकीद की पर ठाकुर ने कोई पर्वाह नहीं की। धत्ते दे दे कर बहुत दिन निकाल दिये। अंत में सेठ दुखी

होकर एक सिकलीगर के पास गया। तलवार का मोल करवाया। सिकलीगर तो देखते ही बोला—सेठ, इस पाती की कीमत कराने के लिए आपने क्यों तकलीफ की? यह तो पांच रुपयों से ज्यादा की नहीं।

मोल सुनते ही सेठ का माथा ठनका। ठाकुर तो देखते देखते धोखा कर गया! इस भूल को ठीक तरह सुधारने में ही मर्दानगी है। सेठ ने तो सिकलीगर से आगे बात ही नहीं की और चुपचाप तलवार लेकर अपने घर लौट आया।

चार पांच दिन बाद सेठ ने उस ठाकुर के खास मर्जी के एक नाई से कहा — भैया, अब क्या करूं, उम्र में कभी गलती नहीं हुई, वह हो गई। ठाकुर साहब तलवार पर दो सौ रुपये उधार ले गए थे। रुपयों की तो कोई बात नहीं, मैं राजी खुशी सब्र कर लूंगा, पर ठाकुर की तलवार खो गई। घर का कोना कोना छान मारा, पर तलवार नहीं मिली। ठाकुर ने तलवार का मोल एक हजार रुपये बताया था। अब बता, यह झगड़ा कैसे निपटेगा? दो सौ रुपये वापिस न आवें तो कोई बात नहीं, पर ठाकुर जरूर झगड़ा करेंगे। अब तू ही बता, क्या उपाय करूं? अभी तीन चार दिन और अच्छी तरह ढूंढूंगा, तब तक तू ठाकुर साहब से कहना मत। खास घर का आदमी समझ कर सिर्फ तुझसे सलाह की है ताकि कोई झंझट खड़ा हो जाय तो तू मेरी मदद करे। तलवार खो गई वह तो खो गई।

ऐसी बात सुनने के बाद नाई को खटाब कहां? वह तो सीधा ठाकुर के पास पहुंचा। सारी बात नमक मिर्च लगाकर बता दी। बोला—ठाकुर साहब, कमाल का मौका आया है। इस बार बनिया शिकंजे में फसा है! आसानी से मत छोड़ देना।

ठाकुर साहब खुश होकर बोले— अब तू बात छोड़! ऐसा मौका छोड़ दूं, तू मुझे इतना पागल समझता है क्या? तू देखता रह कैसा हाथ बताता हूं।

नाई मुंह लगा हुआ था। बोला— थोड़ा बहुत हिस्सा तो गुलाम को भी मिलना चाहिए।

ठाकुर ने कहा—पहले मुझे तो हत्था मारने दे। तुझे दूर थोड़े ही रखूंगा।

नाई ने पूरा समझा कर कहा— अब इसमें ढील मत करिये। कहीं तलवार मिल गई तो सारा खेल बिगड़ जायेगा।

ठाकुर तो दूसरे दिन सवेरे ही इधर उधर से मांग कर ब्याज सहित दो सौ रुपये तोड़े में रख कर सेठ की हवेली पहुंचे। मिलते ही बोले— बहुत दिन हो गये इसलिए माफी मांगता हूं। छोटी बात की ज्यादा परवाह की नहीं। ये

आपके ब्याज सहित रुपये लीजिए ।

सेठ मुंह उतार कर बोला — ठाकुर साहब आपके रुपये कहां जाते हैं। पर तलवार ठिकाने नहीं रही। बहुत ढूंढ़ी तो भी मिली नहीं, अब आप कहें वैसा करूं !

ठाकुर के तो मनचाही बात हो गई। बोले—सेठ, तलवार तो इतने दिन रखी, वह मेरा जी जानता है। घर की बात थी इसलिए पर्वाह नहीं की। तलवार तो मुझे आज ही सौंपनी पड़ेगी।

सेठ ने कहा—ठाकुर साहब, आप थोड़ा तो विचार करिये कि मैं तलवार का क्या करूं ! कहीं इधर उधर हो गई है। आप चार पांच दिन सुस्ताइये। मैं एक बार और ठीक तरह से ढूंढ़ लूं। रुपये आपके दूध के धोये हैं। आप रुपये वापिस ले पधारें। तलवार मिलते ही मैं आपको समाचार भेज दूंगा।

ठाकुर ने तो फिर जल्दी मचाई। तोड़ा खोल कर सेठ के सामने फेंकते हुए बोले— ये आपके रुपये संभालिये और मेरी तलवार मुझे सौंपिये। अब तो मुझे एक पल का भी धीरज नहीं होता। ऐसी तलवार अब मुझे पांच हजार रुपयों में भी हाथ नहीं आयेगी। हजार बरसों पुरानी, पुरखों के हाथ की यह एक ही निशानी थी। मैंने आपको कितना सचेत किया था पर आपने तो गजब कर दिया।

हाथ में तोड़ा लेकर सेठ ने कहा — तलवार मिलना तो मुश्किल है, पर देखता हूं, एक बार और ढूंढ़ लूं। आप थोड़ा धीरज रख कर बैठिये। इतने दिन खटाव रखा तो थोड़ी देर और सही।

रुपयों का तोड़ा अपने कब्जे में करके सेठ धीरे धीरे हवेली में गये। रुपये गिन कर तिजोरी के हवाले किये। तलवार तो एकदम ठिकाने पड़ी ही थी। एक हाथ में खाली तोड़ा और दूसरे हाथ में ठाकुर साहब के पूर्वजों की वह अमोलक तलवार लेकर आये। खुश होकर मुस्कराते हुए कहने लगे — आखिर आपके और मेरे तकदीर तेज थे जो तलवार मिल गई। नहीं तो गजब हो जाता। मैं तो रुपये देकर भी पिण्ड छुड़ा लेता पर आपके हाथ तलवार कैसे आती। यह लीजिए आपकी तलवार। अब इसे पूरे जाब्ते से रखना। भले आदमी, इतनी पुरानी तलवार कोई गिरवी रखता है। खैर, यह तो घर की बात थी। अब कहीं जाकर पांच दिनों बाद मेरे जी में जी आया है। मेरे तो तकदीर फूटे हुए ही थे, पर आपके भाग्य ने काम निकाला।

तलवार देखते ही ठाकुर का तो जैसे अंश ही निकल गया। तलवार हाथ

में क्या झेली जैसे अपना सिर ही अपने हाथ में झेल लिया। ठाकुर साहब के पैरों के नीचे से जमीन खिसक गई। तलवार ने तो सारे मनसूबे काट डाले ! पर अब उपाय भी क्या है ! ठाकुर से तो वापिस बोला ही नहीं गया। चुपचाप मुंह लटका कर खाली तोड़ा और अपनी तलवार लेकर वहां से रवाना हुए। सेठ ने रवाना होते वक्त फिर सावधान किया—ठाकुर साहब, अब तो इस तलवार को जाब्ते से रखना। आपसे ज्यादा इसकी कीमत और कौन जानता है ?

विवाह के नये फेरे

संयोग की बात ऐसी बनी कि इधर तो एक चोर एक सेठ के चौक में आया और उधर सेठ पानी पीने के लिए जागे। चोर ने सेठ को देखा सो तो देखा ही, पर साथ ही सेठ की नजर भी चोर पर पड़ गई। तो भी सेठ ने यह मालूम नहीं होने दिया कि उन्होंने चोर को देख लिया है। जान कर भी अनजान बने रहे। चोर एक खम्भे के पीछे छिप गया।

सेठ आराम से पानी पीकर अपने पलंग पर जाकर बैठ गये। चोर खम्भे के पीछे छिपा हुआ खड़ा रहा। सेठ ने दो तीन आवाजें देकर सेठानी को जगाया। पैर का अंगूठा दबाते हुए बोले—आज तो मेरे दिमाग में एक गजब का फितूर मचा है। सुनोगी तो तुम्हें हंसी आ जायेगी। अपने विवाह को बीस बरस तो हो गये होंगे ? बीस बरसों पहिले खाये हुए फेरे पुराने पड़ गये। राम जाने मेरे क्या जंची कि फेरे फिर से नये करलें। संकोचवश मैंने तुम्हें अपने मन की बात बताई नहीं। फेरे वापिस नये करने की मेरे तो आज पूरी जंच गई।

सेठानी इशारा समझ गई, तो भी अनजान बन कर बोली—मत करो पगली पगली बातें ! सिर में सफेदी आ गई तो भी अभी तक बच्चों की सी बातें करते हो ! लड़का जीता रहता तो आज उसके फेरे खाने की उम्र हो जाती। फेरे खाने की मन में आई है तो अकेले ही खालो, मेरे सामने ऐसी बेवकूफी की बातें मत किया करो।

सेठ हठ करते हुए बोले—तुम राजी होओ चाहे नाराज, मैं तो बिल्कुल ही भूल गया कि फेरे कैसे खाये थे। तुम्हें याद हो तो हो। बीच बीच में फेरे नये कर लेते तो आज यह चूक क्यों पड़ती !

सेठानी ने कहा—तुम्हारी जिद्द के आगे मेरा तो कोई जोर नहीं चलता। पर पड़ौसियों के सामने कभी ऐसी पागलपन की बात मत करना। लो, नये फेरे खाने हों तो झट खालो।

चोर उसी तरह खम्भे के पीछे चुपचाप छिपा हुआ खड़ा रहा। सेठ सेठानी की बातें सुनकर उसने मन में सोचा कि ऐसा भोला सेठ तो संसार में ढूंढ़े नहीं मिलेगा। नादान की तरह कैसी भोली बातें करता है ?

मटकी के पास पानी खींचने का डोल और रस्सी पड़ी थी। सेठ डोल खोल-कर रस्सी ले आये। एक सिरा सेठानी को पकड़ाकर कहा—मुझे सचमुच के फेरे तो खाने नहीं हैं। वापिस याद करने हैं, सो इस रस्सी से याद हो जायेंगे। लो, तुम इसका सिरा झेलो।

यह कह कर सेठ उसी खम्भे के पास गये। अंधेरी रात थी और चोर के काले कपड़े पहने हुए थे। उसने सोचा कि सेठ ने अभी तक मुझे देखा नहीं है। फेरे खाने के बाद दोनों सेठ सेठानी सो जायेंगे तब मैं आराम से चोरी कर लूंगा। इसलिए वह मजबूती से खम्भे के चिपक कर खड़ा हो गया।

सेठ थोड़ा नीचे झुककर खम्भे के चारों ओर घूमने लगा। दोनों पति-पत्नी नीची नजर करके खम्भे के चारों ओर फेरे खाने लगे। चोर की तरफ तो उन्होंने देखा ही नहीं। चोर ने भी सोचा कि दो पगले एक ही जगह इकट्ठे हो गये सो ठीक हुआ वर्ना दो घर डूब जाते। बूढ़े जर्जर होने चले हैं और कैसे बच्चों जैसे तमाशे करते हैं !

तीन फेरों के बाद सेठानी ने कहा—लो, अब मुझे पीछे आने दो। लेकिन सेठ तो धीरे धीरे उसी तरह चलते ही रहे। हंस कर जवाब दिया—मुझे तो फेरे रटने हैं सो रट रहा हूं। पिछले फेरे तो वापिस खुलने से रहे।

सात फेरों के बाद भी वे झटका देकर फेरे खाते ही गये। चोर को एडी से

लेकर गले तक आंटों में लपेट लिया। उसके हाथ पैर खूब मजबूती से बंध गये। फिर मजबूत गांठें देकर उसे कस दिया। चोर ने सोचा कि सोने के बाद वह रस्सी खोल कर अपना काम कर लेगा।

सेठ, सेठानी को खम्भे के पास बिठा कर खुद छत पर चढ़ गया। जोर से आवाज देकर पुकारा ––पड़ौसियों, सुन लेना कान खोल कर, मैं चोरी करने के लिए आ रहा हूं। जाब्ता करना हो, वह कर लेना। तीन चार बार इसी प्रकार आवाजें दीं। चौथी बार एक अक्खड़ पड़ोसी ने आवाज सुन कर कहा––सेठ, चोरी करोगे तो सिर में अगणित जूते पड़ेंगे। तब सेठ ने जवाब दिया–– चोरी करने से जूते पड़ते हों तो आइये, चोर मेरे घर में बंधा हुआ तैयार है।

सारे अड़ौसी - पड़ौसी जूते और लाठियां लेकर आये। सेठ ने चोर को दिखा कर कहा––चोरों के जूते पड़ते हों तो यह कोरा कैसे जा सकता है! अब मत चूकना।

चोर तो बंधा हुआ था। उससे तो आगे पीछे हिला तक नहीं गया। पड़ौसियों ने धमाधम पीटना शुरू किया सो उसका कचूमर निकाल दिया। वह तो सेठ के नये फेरे खाने की बात को जिन्दगी भर नहीं भूलेगा।

भूत का कटोरा

एक सेठानी कुए पर पानी सींचने गई। उसने डोली फेंक कर ऊपर खींची तो डोली खाली की खाली। उसने सोचा कि यह क्या बात हुई? डोली भरती क्यों नहीं? डोली भरने की आवाज सुनाई देती है पर अन्दर पानी क्यों नहीं आत! उसने झुककर अन्दर झांका तो उसे एक आदमी की झपकी पड़ी। बोली––यह अन्दर कौन बैठा है? मेरी डोलियां खाली क्यों करता है?

वह भूत था। बोला—यह तो मैं भूत हूं। कुए की चरखी चर चर बहुत करती है, इससे मुझे नींद नहीं आती। मैं अपने हाथों से इस पर गाय का घी लगाना चाहता हूं। तू मुझे एक कटोरा भर कर घी ला दे।

सेठानी ने कहा—घी तो कटोरे की जगह घड़ा भर कर ला दूं। पर फिर भी तू डोलियां खाली करे तो? मुझे वचन दे कि आज के बाद कभी मेरी डोलियां खाली नहीं करेगा और मेरा दूसरा कोई नुक्सान नहीं करेगा।

भूत खुश होकर बोला — तू मुझे कटोरे की जगह घड़ा भर कर घी लाने को तैयार हुई इससे में बेहद खुश हुआ। तू घी नहीं लायेगी तो भी मैं तेरा कुछ नुक्सान नहीं करूंगा। मैं तुझे पक्का वचन देता हूं। तू मुझे चौथे पांचवे दिन चरखी पर लगाने के लिए घी का कटोरा डोली में डाल कर पहुंचा दिया कर।

सेठानी ने सोचा कि अब तो यह वचनों में बंध गया। घी नहीं लाऊं तो भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ेगा। फिर फालतू यह लाग क्यों लगाऊं? वापिस भूत को ठगूं तब तारीफ है। उसने कहा—'घी तो मेरे यहां बहुत है, पर लाने के लिए बर्तन नहीं। तू मुझे हीरे मोती का एक कटोरा ला दे तो मैं तुझे रोज घी पहुंचा दूंगी।' भूत ने उसे एक हीरे मोती का अमूल्य कटोरा सौंप दिया। सेठानी ने कटोरा ला कर अपने घर में ठीक तरह संभाल कर रख दिया। पर घी लाना तो दूर उसने तो वापिस घी की बात ही नहीं चलाई। भूत रोज घी मांगता और सेठानी पछता कर रोज कहती—देखो, मेरा भी कैसा भूलने का स्वभाव हो गया है। रोज घी घी रटती हूं तो भी समय पर भूल जाती हूं। कल जरूर लाऊंगी।

भूत को गाय का घी खाने का बेहद शौक था। यह रोज सेठानी को याद दलाता। पर सेठानी टालमटोल करती रही। अन्त में एक दिन हार कर भूत बोला — सेठानी, तेरे घी से तो मेरा पेट भर गया, अब महरबानी करके मेरा कटोरा तो वापिस ला।

सेठानी ने हंस कर जवाब दिया—आज नहीं कल ला दूंगी।

भूत ने कहा—तेरे इस कल का भी अन्त नहीं। कौन जाने कब आयेगा?

सेठानी बोली — तेरे में ऐसी करामात हो तो तू आज के बाद इस कल को वापिस मत आने दे। जिस दिन तू यह काम कर देगा, उसी दिन मैं तुझे छलछलाता कटोरा घी का भर कर ला दूंगी।

भूत ने कहा—यह तो मेरे वश की बात नहीं।

सेठानी ने भी जवाब दिया—जब यह तेरे वश की बात नहीं तो घी लाना मेरे वश की भी बात नहीं। तेरा कटोरा ठिकाने पड़ा है। तू चिन्ता मत कर।

रूई की चोरी

एक चोर एक बनिये के यहां चोरी करने के लिए गया। बनिये के रूई का धन्धा था। चोर को इस बात का पता था कि रूई बखारी में पड़ी रहती है। उसने सोचा कि अगर रूई की एक बड़ी गांठ बांध लूं तो किसी को कानोकान भनक भी नहीं पड़ेगी और अपना काम भी बन जायेगा। सर्दी के दिन होने से घरवाले तो अन्दर कमरे में सोते होंगे।

वह धीरे धीरे चलकर बखारी के बिल्कुल पास पहुंच गया। बखारी में एक ओर एक भैंस खड़ी जुगाली कर रही थी। उसने भैंस के पास ही रूई बांधने के लिए अपना चद्दर बिछाया। पर बिछाते ही उस चद्दर को तो कोई वहां से खींच ले गया। चोर ने समझा कि भैंस खा गई होगी। कोई बात नहीं। वह चद्दर को पूरी तरह खायेगी तब तक अपने फेंटे को बिछाकर उसमें ठीक तरह रूई भरलूं। उसने दो तीन तह करके अपना फेंटा फिर उसी जगह बिछा दिया। रूई को बांहों में भर कर लाया तब तक तो फिर किसी ने उसके फेंटे को खींच लिया। चोर ने सोचा कि फेंटा भी भैंस खा गई। अब क्या उपाय करे! बिछाने के लिए वही एक जगह थी। रूई के लोभ में चद्दर और फेंटा खो दिया। इनके नुक्सान की कसर तो निकालनी ही पड़ेगी। रात का समय है— कौन देखता है! उसने अपनी धोती खोल कर बिछा दी। उसका इरादा था कि खूब दबा दबा कर बहुत सारी रूई भर लेगा। पर ज्यों ही ढेर सारी रूई भर कर वह धोती पर धरने लगा कि इतने में फिर किसी ने उसकी धोती खिसका ली। बिचारा एकदम नंगा वहां खड़ा रहा। रूई के लोभ में शरीर पर पहने हुए कपड़े भी खो दिये। यह भैंस है कि डाइन? कपड़े तो आंखों देखे नहीं छोड़ती! चारे की जगह कहीं यह रूई तो नहीं खाती है?

वह सोच करता हुआ पशोपेश में खड़ा था कि उसे बच्चे की बोली

सुनाई दी—दादाजी, मुझे एक नई कहानी सुनाइये।

दादाजी ने उसे डांटते हुए जवाब दिया—इन कहानियों के पीछे तुझे न रात को सोते चैन पड़ती है और न दिन में जागते। यह भी कोई बात है? मुझे घड़ी आध घड़ी ठीक तरह सोने तक नहीं देता।

पर दादाजी तो चोर के आते ही जग गये थे। उन्होंने ही अपने हाथों से उसके कपड़े खींचे थे। रूई की निगरानी रखने के लिए वे बखारी में ही सोते थे और कहानियां सुनने के लिए उनका पोता भी उनके साथ वहीं सोता था। उन्होंने कहा—सिर्फ एक कहानी सुनाऊंगा। फिर सो जाना। बाद में मुझे परेशान किया तो बिल्ली को आवाज दे दूंगा।

बच्चे ने कहा—एक कहानी सुनते ही मुझे नींद आ जायेगी। आप बिल्ली को मत बुलाना।

तब दादाजी ने कहानी कहना शुरू किया—तो रामजी भले दिन दें। मैं खुद एक बार एक सेठ के घर चोरी करने गया। उस सेठ के रूई का धन्धा था। मैं रूई की गांठ भरकर उचकाना चाहता था। मुझे इस बात का पूरा पता था कि रूई बखारी में पड़ी है। मैं धीरे धीरे चलता हुआ उस बखारी के पास पहुंचा। मैंने रूई की गांठ बांधने के लिए अपनी चद्दर बिछाई। बखारी के एक कोनें में वहीं भैंस बंधी हुई थी। उस भैंस में बहुत बुरी आदत थी कि वह कपड़े को तो देखे नहीं छोड़ती थी। वह एक ही निवाले में एक पूरा का पूरा कपड़ा निगल जाती। मैंने नीचे चद्दर बिछाया तो वह मेरा चद्दर खा गई। फिर मैंने अपने फेंटे की दो तीन तहें करके नीचे बिछाया तो वह उस फेंटे को भी खा गई। फेंटे के बाद मैंने अपनी धोती खोल कर बिछाई तो वह डाइन मेरी धोती ही निगल गई। मैं क्या जोर करता! बिल्कुल नंग-धड़ंग होकर वहीं खड़े खड़े सोचता रहा कि अब क्या उपाय करूं।

इतने में बच्चे ने पूछा—तो दादाजी, सारे कपड़े उतारने के बाद आप नंग-धड़ंग कैसे दिखाई दिये?

तब दादाजी ने दिया जला कर उस चोर की तरफ इशारा करके कहा—बेटा, मैं बिल्कुल इसके जैसा ही दिखाई देता था।

चोर तो शर्मिन्दा होकर नंगा ही वहां से भाग खड़ा हुआ। बिचारे को बनिये के घर से रूई की चोरी आखिर इस भाव पड़ी!

बराबर हिस्सा

एक सेठ के घर में सेंध लगा कर चार चोर घुसे और घर की एक एक चीज उचकाली। हजारों रुपयों की अनसोची माया हाथ लग गई। चारों चोर बाहर के कमरे में बैठ कर हिस्सा बांटने लगे कि सेठ की नींद खुल गई। पर केवल नींद खुलने से क्या होता है? शैतान चोरों से कौन लड़ाई करे! माल और जान दोनों का खतरा! दिमाग लगा कर कोई उपाय सोचना पड़ेगा।

सेठ धीरे धीरे चल कर खुद ही उस बैठक के कमरे में जा पहुंचे। चोर हक्के बक्के होकर धन-माल समेटने लगे तब तक सेठ ने कहा—तुम्हारे ही फायदे के लिए आया हूं। मुझ से रंचमात्र भी डरने की जरूरत नहीं। मैं तो खुद कई दिनों से यही चाहता था। मेरे बेटे कपूत निकल गये। सारी उम्र झूठ सच करके उनके उनके लिए रात दिन कमाई की, उसका यह फल निकला कि बुढ़ापे में आज मुझे ही मारते हैं! बासी रोटी का टुकड़ा खाना भी मेरे हाथ नहीं रहा! अब उनको खबर पड़ेगी कि कमाई करना कितना मुश्किल होता है! तकलीफ भोगेंगे, तब उनकी अक्ल ठिकाने आयेगी। तुमने आज बिल्कुल मेरी मनचाही कर दी। कपूतों को यही फल मिलना चाहिए। मैं खुद अपने हाथों से तुम्हारा हिस्सा बांट कर निपटा दूं वर्ना तुम लोग आपस में झगड़ा-टंटा करोगे। यह माया बेहद कलहकारिणी हुआ करती है।

चोरों को सेठ की बात पर पूरा भरोसा हो गया। चारों ने कहा कि उनका उचित हिस्सा बांट दिया जाय तो वे उम्र भर सेठ के गुण गायेंगे।

सेठ मुस्कराते हुए बोले—तुम लोग मेरे क्या गुण गाओगे, मैं तुम्हारे गुण गाऊंगा। कमीनों को अब पता चलेगा कि बाप को मारने का क्या फल मिलता है?

यह कहकर सेठ हाथ में तकड़ी लेकर निश्चितता से चोरों का हिस्सा बांटने के लिए बैठे। तकड़ी के दोनों पलड़ों में पहले सोना और गहना भर कर वे जोर से बोले—

घड़ी लगा दूं तेजा हो
सोजतिया सरदारा हो

सेठ को जोर से बोलते सुन कर चोर डर गये। कहा—आप थोड़ा धीरे बोलिए ; कोई जग जायेगा।

तब सेठ ने कहा—अब मेरे बैठे तुम क्यों डरते हो। कमाई मेरी की हुई है, किसी के बाप की नहीं। मैं राजी खुशी अपने धन का बंटवारा करूं तो मुझे रोकने वाला कौन? तुम किसी बात की चिन्ता मत करो।

इस प्रकार समझा कर सेठ ने तो फिर जोर से बोलना शुरू किया—

घड़ी लगा दूं तेजा हो
सोजतिया सरदारा हो

सेठ के तीन बेटे थे। एक का नाम तेजा, एक का सोजतिया और एक का नाम सरदारा था। वे पास वाले नोहरे में सो रहे थे। सेठ उनके नाम की आवाजें मार मार कर उनको जगाना चाहते थे।

चार पांच बार सेठ ने आवाज दी तो वे तीनों जग गये और भाग कर सीधे उसी कमरे के बाहर आ खड़े हुए। जल्दी मचाते हुए दरवाजा खटखटाया। चोरों ने डर कर पूछा — कौन है?

सेठ ने उसी लापरवाही से जवाब दिया — और कौन, मेरे वे कमीने लड़के ही होंगे। पर तुम परवाह मत करो। नीचे के तहखाने में छिप जाओ। मैं सारा धनमाल छिपा कर फिर तुम्हारे हवाले कर दूंगा। अब फुर्ती करो।

चारों चोर तहखाने का दरवाजा खोल कर अन्दर घुस गये। चारों के अन्दर घुसते ही सेठ ने कुण्डा लगा कर ताला अटका दिया। फिर बैठक का दरवाजा खोला। कहा—यह भी कोई नींद है? आवाजें दे दे कर परेशान हो गया। आज तो कालीधार डूब जाते। चार चोरों ने घर में सेंध लगा कर सब कुछ बटोर लिया था। मैं अकेला क्या क्या करता! बडी चतुराई से उनको तहखाने में बंद कर दिया है। जाओ, पड़ोसियों को बुला कर लाओ। सभी लाठी-डंडे लेकर आयें। चारों जवान पट्ठे हैं। अब जाओ, यों खड़े खड़े मेरा मुंह क्या देख रहे हो? फुर्ती करो।

बेटों के हल्ला मचाते ही सारे पड़ोसी इकट्ठे हो गये। तहखाना खोल कर खूब अच्छी तरह पिटाई करने लगे तो सेठ ने कहा — भाइयों, सब की बराबर पिटाई करना, कम ज्यादा नहीं। देखो, इस बात का विशेष ध्यान रखना, क्योंकि मैंने इनसे बराबर बंटवारे का वादा किया है।

कोमल कोठारी

[राजस्थान के लोक वाद्यों पर क्रमिक रूप से लेख छापे जा रहे हैं। दिसंबर, ६७ में डंडिया, घुंघरू, रमझोल एवं भोपों के बड़े घुंघरू; जनवरी, ६८ में घंटा, घंटी, टिकोर, थाली, झालर एवं घड़ियाल; अप्रेल ६८, में मंजीरा, ताल, झांझ एवं सितम्बर, ६८ में घोरालिया एवं मोरचंग; अक्टूबर व नवम्बर, ६८ में चौंपिया, चूड़ियां, करताल, रायगिड़गिड़ी, पत्थर की चपटियां और तिकोन पर लिखा जा चुका है। इन निबन्धों में वाद्यों के राजस्थान में प्रचलन पर ही मुख्य ध्यान रखा गया है। उनके ऐतिहासिक एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप को केवल पृष्ठभूमि के रूप में ही स्वीकृत किया गया है।]

श्री मंडल

श्री मंडल एक ऐसा लोक वाद्य है जो अपने आप में अनेक समस्याओं को उत्पन्न करता हैं। अपने वादन एवं बनावट के रूप में यह घन वाद्य है। अर्थात् ध्वन्यात्मक पदार्थ द्वारा निर्मित एवं आघात के द्वारा बजाया जाता है। किन्तु इस वाद्य का प्रयोजन अन्य घन-वाद्यों की भांति केवल लयात्मकता प्रदान करना नहीं है। राजस्थान के घन वाद्यों को एक साथ देखने पर सहज ही ज्ञात हो जाता है कि विभिन्न प्रकार के काष्ठ अथवा धातुओं के पारस्परिक आघात के द्वारा सांगीतिक लय रूप को प्राप्त किया जाता है। ऐसे वाद्य चाहे मंजीरा, ताल, झांझ एवं चौंपिये जैसे धातु-वाद्य हों अथवा डंडा, राय-गिड़गिड़ी जैसे काष्ठ वाद्य हों। इन घन-वाद्यों की निर्मिति में जो स्वर उनकी बनावट में स्थिर हो जाता है उसी के आधार पर लयात्मक ध्वनियों का संचरण किया जाता है। इसी प्रकार के वाद्यों में झालर, घंटा, थाली एवं घड़ियाल जैसे स्वतंत्र लयात्मक वाद्यों को भी हम भली प्रकार देख चुके हैं।

वस्तुतः एक से अधिक झालरों या घंटों के स्वरात्मक प्रयोग के द्वारा श्री मंडल का निर्माण हुआ है। अर्थात् श्री मंडल में आठ, तेरह अथवा सोलह झालरों अथवा घंटों का प्रयोग किया

जाता है और यह सभी घंट विभिन्न स्वरों की ध्वनि देने वाले होते है। इन घंटों को मोगरी युक्त लकड़ी से आघातित करके धुन बजाने का प्रयत्न किया जाता है।

वाद्य का यह वादन-स्वरूप श्री मंडल को सामान्य लय देने वाले वाद्यों से पृथक कर देता है। क्योंकि इसका प्रमुख प्रयोजन स्वरात्मक धुन-वादन है। इस दृष्टि से यह वाद्य, आधुनिक भारतीय वाद्य-वादन प्रणाली में 'तरंग' शैली का माना जायेगा।

गत कुछ वर्षों से 'तरंग' शब्द का प्रयोग विशिष्टतया होने लगा है। सर्व प्रमुख जिस तरंग वाद्य ने अपना सांगीतिक रूप ग्रहण किया—वह रहा है—जल तरंग। विभिन्न आकार के चीनी के प्यालों में पानी भरने के बाद, उनमें स्वर-सप्तक की स्थिति कायम की जाती है और फिर बांस की पतली खपच्चियों के द्वारा आघात करके रागात्मक गत अथवा धुन का वादन किया जाता है। इसी शैली पर काष्ठ-तरंग, नल-तरंग, काच-तरंग आदि वाद्यों का प्रयोग भी प्रारंभ हुआ। ये सभी तरंगें अपनी बनावट एवं वादन रूप में घन-वाद्यों की प्रक्रिया पर आधारित हैं। अन्तर केवल वहीं उपस्थित होता है जब ये तरंगें स्वरात्मक संगीत की अवतारणा करने के लिए प्रयोग में आने लगती हैं।

वस्तुतः भारतीय संगीत क्षेत्र में एवं गत शताब्दी से पश्चिमीय क्षेत्र में वाद्यों के जो चार प्रमुख वर्गीकरण [घन, अवनद्ध, सुषिर एवं तत] स्वीकार किये गये हैं—उनमें 'तरंग' नाम से अभिहित किये जाने वाले वाद्य एक नवीन समस्या ही की ओर इंगित करते हैं। इस वर्गीकरण के सामने समस्या यह है कि सामान्य घन वाद्य तो लयात्मकता का ही आधार ग्रहण करते हैं—जब कि 'तरंग' कल्पना उन्हें सांगीतिक स्वर स्थापना की ओर ले जाती है। यह स्थिति केवल घन वाद्यों के साथ ही हो सो बात भी नहीं है। वाद्य क्षेत्र में 'तबला तरंग' नामक वाद्य की भी कल्पना की गई और उसका वादन भी किया गया। तबला एक अवनद्ध वाद्य है और उसका प्रयोजन भी लय एवं ताल है। उसका स्वरात्मक प्रयोग उसे निश्चय ही अवनद्ध वाद्य की सामान्य कल्पना से बाहर निकाल देता है। यह एक 'तरंग' वाद्य के अवनद्ध वाद्यों में प्रवेश का उदाहरण है। यदि इसी क्रम को तत-वाद्यों पर भी आरोपित करें तो यह समस्या निश्चय ही महत्वपूर्ण बन कर सामने आती है।

तत-वाद्यों में कुछ वाद्य निश्चय ही प्राप्त हैं जिनका वादन-विधान 'तरंग' श्रेणी के साथ जोड़ा जा सकता है। ये वाद्य हैं संतूर एवं कानून। इन वाद्यों में विभिन्न स्वरों पर मिलाई गई तंत्रियों को आघात के द्वारा बजाया जाता है। सहज तंत्री होने से ही उन्हें सामान्य तत वाद्यों के साथ रखने के लोभ को रोकना बहुत मुश्किल है लेकिन यदि हम घन एवं अवनद्ध वाद्यों पर आधारित तरंग वाद्यों की सांगीतिक एकता को देखने का उपक्रम करें तो निश्चय